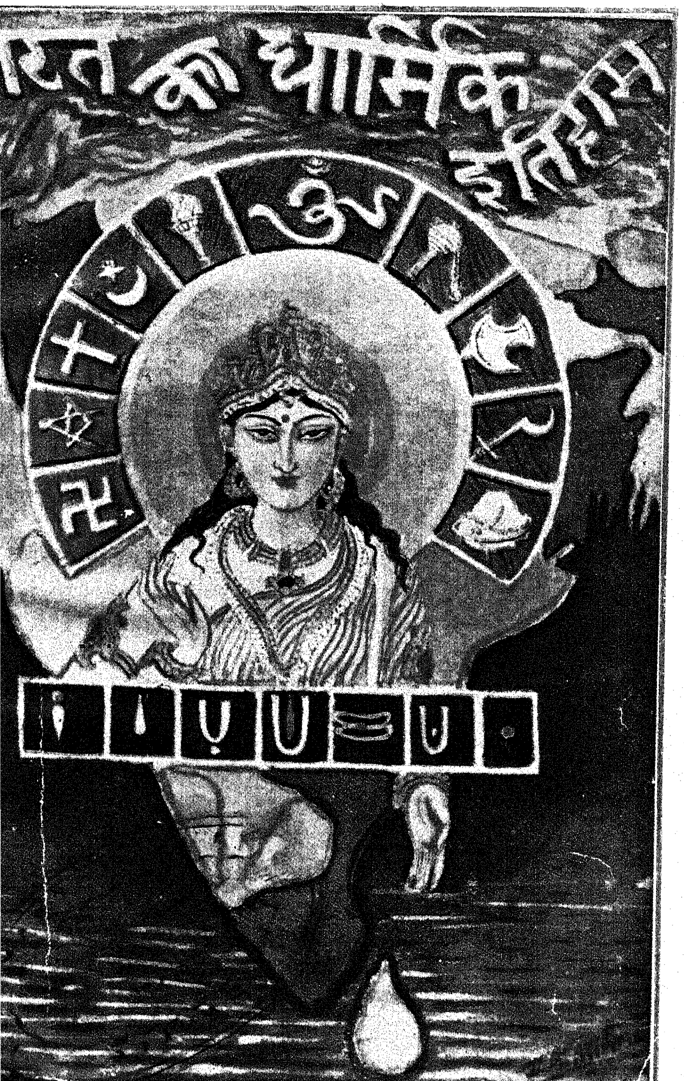


रिखबदास वाहिती।

ॐ

भारतका धार्मिक इतिहास

लेखक :—

वेथर निवासी—

पण्डित शिवशङ्कर मिश्र

प्रकाशक:—

रिखबदास बाहिती,

प्रोप्राइटर:—"दुर्गा प्रेस" और

आर० डी० बाहिती एण्ड को०,

नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता।

—::०::—

द्वितीय वार

मूल्य ३)
रेशमी३॥)

प्रकाशक:—
रिखबदास बाहिती,
आर० डी० बाहिती एण्ड को०,
नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता ।

मुद्रक—
महादेवप्रसाद सेठ,
"बालकृष्ण प्रेस"
नं० ३६, शंकरघोस लेन
कलकत्ता ।

भूमिका

धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः ।
यस्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥

(म० भा० कर्ण पर्व)

धृ धातु—धारण करनेसे ही धर्म शब्द बना है। धर्मसे ही सब प्रजा बंधी हुई है। जिससे सब प्रजाका धारण होता है, वही धर्म है—यह निश्चय किया गया है।

इसमें सन्देह नहीं, कि बात बहुत ही ठीक है। हमारा धर्म वास्तवमें वही है, जिससे हमारा धारण हो, समस्त प्रजाका धारण हो, लोकोन्नति होती रहे। इसी बातको लक्ष्यमें रखकर हमारे धर्माचार्योंने, धार्मिक तत्वोंका निरूपण किया है और साथ ही इस बातपर पूरा पूरा ध्यान रखा है, कि समाज-रचनाकी शृंखला किसी तरह न टूटने पावे। बल्कि यहाँतक इस विषय पर जोर दिया है, कि धर्म द्वारा ही सब कुछ प्राप्त हो सकता है, बिना धर्मके कुछ हो ही नहीं सकता, धर्महीन समाजकी वही अवस्था हो जाती है, जो मझधारमें पड़ी हुई नावकी होती है। इसलिये संसारके सभी कर्म धर्मपूर्वक करनेकी आज्ञा दी गयी है।

मानव प्रकृति दुर्बल है। उसमें कामनाओंका समावेश होकर

विराट भयानक रूप धारण करना एक सहज सी बात है। येही कामनायें उत्तरोत्तर कलेवर वढ़ाकर मनुष्यको लक्ष्य-भ्रष्ट कर सकती हैं। अतः उन कामनाओंका रूप बढ़ने न पावे, उनकी गति नियमित रहे अथवा प्रकृतिके धर्मको नियमित करनेके लिये, एक ऐसे पदार्थकी परम आवश्यकता है, जो अपने नियन्त्रण द्वारा, मनुष्यको समाज-शृंखलाको नष्ट करनेवाले दुराचारोंसे रोकता रहे। इसीलिये, धर्मकी सृष्टि हुई। इसीसे धार्मिक नियम ऐसे बनाये गये, जो लोक-हितकर हों, लोक-उन्नतिकर हों, और मानव-समाजका जिनसे मङ्गल-साधन हो सके।

परन्तु जब हम नित्य व्यवहारमें इस शब्दको लाते हैं, तब इसका अर्थ, केवल पारलौकिक सुख-साधनका मार्ग हो जाता है अथवा धर्म शब्दकी ध्वनि कानमें पड़ते ही इस बातका विचार मनमें उत्पन्न हो जाता है, कि धर्म वही पदार्थ है, जिसके द्वारा हम स्वर्ग प्राप्त कर सकते , ईश्वरको प्राप्तकर सकते हैं अथवा पारलौकिक सुखकी अन्तिम सीमा मोक्षपदको प्राप्त कर सकते हैं। अथवा यदि हम किसीसे यह प्रश्न कर बैठते हैं, कि तुम्हारा धर्म क्या है, तो तुरन्त ही वह समझ लेता है, कि यहूदी, ईसाई, इस्लाम अथवा अन्य किसी धर्मके सम्बन्धमें यह प्रश्न हो रहा है। और हमें वही उत्तर देना चाहिये। धर्म सूत्रोंसे भी यही भाव उत्पन्न होता है, कि धर्म वही हैं, जिससे पारलौकिक सुख प्राप्त हो सकें अथवा वैदिक कर्मकाण्ड भाग, यज्ञ भाग इत्यादि पर ध्यान जा पहुंचता है। सारांश यह कि, धर्म शब्दका बड़ा ही व्यापक

अर्थ है। इसकी जैसी व्यापकता है, वैसी ही इसके गूढ़ तत्वोंके समझनेमें कठिनाइयाँ है। इसीलिये, कहा है :—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयोर्विभिन्नाः
नैको ऋषिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्।
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

धर्मशास्त्रके प्रधान ग्रन्थ, श्रुति, स्मृति प्रभृतिमें धर्म-तत्व बताया गया है। अनेक ऋषि-महर्षियोंने अपने अनुभूत धर्म-तत्वोंको, धार्मिक नियमोंको, तथा आचारोंको, इसमें सम्मिलित कर रखा है, पर उन सबमें मत भेद है। कोई ऋषि एक बात कह रहा है, तो कोई दूसरी ही। इस तरह धर्मके असली तत्वतक जा पहुंचना, एक प्रकारसे असम्भव ही है। अब यदि कोई तर्कका आश्रय लेकर, धर्म तत्व तक पहुंचना चाहे, तो वह भी असम्भव है, क्योंकि तर्कतो चंचल है, इसलिये, वास्तवमें धर्म-पथ वही है, जिससे महापुरुषगण अग्रसर हुए हैं।

कुछ भी हो, साधारणतः धर्म शब्दपर ध्यान जाते ही, हमारा पारलौकिक सुखवाद पर ध्यान चला जाता है, और उसीके अन्तर्गत यह बात भी आ जाती है। उस पारलौकिक सुखको प्राप्त करनेके लिये, हमारा कर्त्तव्य क्या है। अब 'धर्म' शब्दका एक अर्थ कर्त्तव्य हो जाता है, साथ ही "नीति" शब्द भी धर्मका उस अवस्थामें अर्थ हो जाता है, जब हम इस बातपर विचार करने

बठते हैं, कि इस संसारमें किस रीतिसे हम रह सकते हैं, जिससे सांसारिक कर्त्तव्यका प्रतिपालन करते हुए, अन्तमें हम अपने लक्ष्य मोक्षपदको प्राप्त कर सकें। यही कारण था कि प्राचीन कालकी सद्नीतियोंका विवेचन जिस ग्रन्थमें है, उसे नीति-प्रवचन न कह-कर धर्म-प्रवचन कहते थे।

इस तरह यह मालूम हो जाता है, कि धर्म शब्दकी व्यापकता इतनी बढी हुई है, कि इसकी तहतक पहुंच जाना, कोई साधारण बात नहीं है। राजधर्म, मित्रधर्म, देशधर्म, जातिधर्म, कुलधर्म—कितनेही नीति-सम्बन्धीय विषय सभी इस धर्ममें ही, सम्मिलित हो जाते हैं। वास्तवमें भारतवासियोंका धर्मसे इतना अधिक सम्बन्ध हो रहा है, वे इस तरह धर्ममें जकड़े हुए हैं, कि उनकी दैनिक कार्यावलीसे लेकर समस्त कामनात्मक, वासनात्मक, सभी कार्य धर्मके अंग हो रहे हैं। परन्तु इन सबपर भी डूबकर विचार करनेसे एक ही बात ध्यानमें आती है। अर्थात हमारा लक्ष्य एक है। उस लक्ष्यको ध्यानमें रखकर ही हम संसारके यावत कर्म करते हैं। राजनीति अथवा राजधर्म ऐसे नियमोंसे बंधा है, जिससे राजा प्रजापालन प्रभृति समस्त कार्य तथा यावत सुख-भोग प्राप्त कर अन्तमें मोक्षपदको पहुंच सकता है। यदि उसमें चूका—न पालनकर सका, तो संसारमें उसकी अपकीर्ति तो अवश्य ही होगी; पर साथ ही उसे नरकगामी होना पड़ेगा। इसी तरह राजासे लेकर रंकतक, गृहस्थ, संन्यासी, प्रभृति सभी उस धर्म-रज्जुमें बंधे हैं; जिससे विचलित होते ही, जिस रज्जुको

तोड़ते ही, उन्हें संसारमें अपमानित, कष्ठित तो होना ही पड़ेगा, साथ ही परलोकके लिये भी नरकका द्वार खुला रहेगा। भारत-वासियोंमें यह भाव इस दृढ़ता, सुन्दरता तथा चतुरतासे भरा गया है, कि उनकी नस-नसमें यह बात अच्छी तरह प्रवेश कर गयी है। स्वर्गके सुख और नरकके दुःख, क्रमसे सुन्दर और भीषण आकार बनाये उनके सामने खड़े रहते हैं। इसी लिये प्रत्येक बिचारको कार्यरूपमें परिणत करते समय, एक वार उनका ध्यान पारलौकिक सुख दुःखपर भी जा पहुंचता है और सांसारिक हानि-लाभके साथ ही उन्हें पारलौकिक हानि-लाभपर भी विचार करना पड़ता है। इसी लिये स्मृतिग्रन्थोंमें "आचार प्रभवो धर्मः" आदि वचन कहे गये हैं। अस्तु, यह निर्विवाद है, कि धर्मका एक अङ्ग पारलौकिक सुखसाधन अवश्य हैं, और जितने धर्माचार्योंने धार्मिक नियम तथा आचार-विचारोंकी सृष्टि की है, उन सबमें भी कुछ अध्यात्म विचार घुसे हुए हैं।

धर्म शब्दकी व्याख्या करते हुए, एक बात और भी दिखायी देती है, अर्थात् "चोदना लक्षणार्थो धर्मः" चोदनाका अर्थ प्रेरणा है। किसी न्यायशील अधिकारीका यह कहना, कि तू अमुक कार्य कर अथवा न कर यह भी धर्मका अर्थ है।

ऊपर हम कह आये हैं, कि धर्म तत्व समझना बड़ा ही कठिन काम , ़धिष्ठिर जैसे सत्यवादी और ज्ञानी भी इस कार्यमें घबरा उठे थे। परशुरामकी बुद्धि चक्कर खा गयी, जनक संशयमें जा पड़े। इसी तरहसे अनेकानेक उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। यह

"चोदना' लक्षणाऽर्थो धर्मः" भी इसी विचारके कारण है, कि धर्म-तत्व शीघ्र समझमें नहीं आते। इतनी अड़चनें आ पड़ती हैं, कि बुद्धि संशयमें जा पड़ती है। जब ऐसी अवस्था आ पड़े तो क्या करना चाहिये। एक तो वही उपाय है—"महाजनो येन गतः स पन्थाः" दूसरा उपाय यह है कि—

अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम।
विरोधिषु महीपाल निश्चित्य गुरु लाघवम्।
न बाधा विद्यते यत्र तं धर्मं समुपाचरेत॥

अर्थात् अनेक आपत्तिके विरुद्ध धर्मोंका तारतम्य देखकर और उनकी लघुता, गुरुता तथा मौकेको अपनी विनयात्मक बुद्धिसे विचार कर, वैसा ही काम करना चाहिये। अस्तु, चाहे धर्मको आधार" कहिये अथवा "धारणात्" मानिये बात एक ही आ पहुंचती है। किसी उपायसे हो, अपने लक्ष्य अर्थात् पारलौकिक सुख या मोक्षपद तक हमें पहुंचना चाहिये और इसी लक्ष्य को लक्ष्यमें रखकर धर्मकी सृष्टि हुई है।

भारतके समस्त धार्मिक ग्रन्थोंपर विचार कर जाइये, वेद, उपवेद, श्रौत, स्मार्त्त ग्रन्थ—सब पर दृष्टि डालिये, ये ही बातें प्रकट होती हैं। वैदिक धर्म वहीं पहुंचनेका उपाय बता रहा है, स्मृतियां वही चिल्ला रही हैं, यहाँ तक कि जितने मत-मतान्तर हैं, उन सबमें, पथ चाहे, किसीने कितने ही निकाले हों, वे सफल हों, या असफल पर लक्ष्य वही है।

पहले ही कह चुके हैं। धर्मकी सूक्ष्म गतिका समझना अति कठिन है। साथ ही विना समझे काम भी नहीं चल सकता। इसीलिये महापुरुष अपने अपने विचारानुसार जो कुछ अन्वेषण और गवेषणाकर वे स्थिर कर सके हैं उसीको जन-समाजके हितार्थ उन्होंने प्रकट किया और जनताको भी वैसी ही शिक्षा देनेकी चेष्टा की। प्रत्येक धर्माचार्यने इसी बातकी चेष्टा की, कि किस तरह सरलता और सुगमता पूर्वक अपने ध्येयतक पहुंच सकते हैं। उस ध्येयतक पहुंचानेका कौन सा सरल पथ है—यह सबको बताया जाये—इसी चेष्टामें उनके विचार और मनके जितने अनुयायी मिल सके, उन्हें साथ ले, उन्होंने अपने मतका प्रचार कर दिया—यही एक एक सम्प्रदाय बना।

इसमें सन्देह नहीं, कि भारतीय जितने धर्माचार्य हो गये हैं और क्राइस्टके विषयमें भी यही मत है, कि उन सबने जो कुछ सीखा, वह वेद तथा श्रौत ग्रन्थोंसे ही सीखा और अपने अपने विचारानुसार उन्हींसे भाव संग्रहकर धर्मोंका प्रचार किया। इस इतिहासमें धर्माचार्योंकी जीवनियाँ पढ़नेसे भी यही बात मालूम होती है और अनेकांशमें यह सत्य मालूम भी होता है। अतः वेद ही सब धर्मोंकी जड़ है—यह कहना भी कोई अत्युक्ति नहीं है। अब रहा आनुषङ्गिक आचारोंपर विचार, सो जहांतक विचार करनेमें आता है, यही मालूम होता है कि समयानुकूल जैसे जैसे आचारकी आवश्यकता थी, वैसा ही आचार-व्यवहार

उन लोगोंने चलाया—यह भी इस ग्रन्थपर आलोचनात्मक दृष्टिसे विचार करनेसे ही मालूम हो जायगा। हमारा कथन तो यह है, कि चाहे किसी धर्म या सम्प्रदायको उठा लीजिये—उसमें प्रधान तत्व एक ही मिलता हैं और वह मोक्ष पद प्राप्ति की चेष्टा है और उसके आनुषङ्गिक आचार अथवा रीति नीति व्यवहार वैसे ही रक्खे गये हैं, जो उस समय जनताकी धारणाके अनुकूल अथवा देशकी परिस्थितिके लिये आवश्यक थे। अस्तु।

भारतका धार्मिक इतिहास बड़ा ही झगड़ेका विषय है, इसका समझना और ठीक ठीक ऐतिहासिक दृष्टिसे प्रामाणिक रूपसे इसके विषयमें कुछ कहना, वैसा ही कठिन है जैसा धर्मकी सूक्ष्म गतिको समझना। मन्वादि निर्मित स्मृति, ब्राह्मण ग्रन्थ, शास्त्र, वेद तथा अन्यान्य धर्म-ग्रन्थोंपर विचारकर धर्मकी सूक्ष्म-गति, किस समय किस सम्प्रदायका क्यों प्रादुर्भाव हुआ; उनके प्रवर्तकोंने क्यों अलग अलग मतका प्रचार किया—उस समय देशकी परिस्थिति कैसी थी—इन सभी बातोंका इस धार्मिक इतिहासमें पूरा पूरा विवेचन होना चाहिए था। इसमें सन्देह नहीं कि लेखकने इसकी चेष्टा की है, परन्तु वे कहाँ तक सफल हो सके हैं, यह हम नहीं कह सकते; क्योंकि वास्तवमें विषय बड़ा ही विवाद ग्रस्त है।

विषय यहाँतक विवाद ग्रस्त है, कि खास खास प्रधान देवताओं तथा धार्मिक कथाओंके निर्माणपर भी जब ध्यान जाता है, तब मनमें एक प्रकारका संशय सा उत्पन्न हो जाता है।

हिन्दू धर्मकी प्रथम अवस्थामें जिस तरह वैदिक धर्म और वैदिक व्यवहारका प्रचार था, उसी तरह पुराण काल अथवा पौराणिक धर्म और व्यवहारमें भी उसका सूत्रपात दिखाई देता है। पहले गायत्री, सविता अर्थात सूर्य देवकी स्तुतिमें सन्निवेशित थी; इसके बाद उसने ब्रह्मगायत्रीका रूप धारण किया।* पुराणके मतसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन देवताओंमें शिव और विष्णु ही प्रधान हैं। यहाँतक कि उन्हें प्रकृत परमेश्वर ही माना है, पर प्रामाणिक उपनिषद् और मनुसंहिता प्रभृतिमें त्रिमूर्तिमें ब्रह्माका ही प्राधान्य दिखाई देता है।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्व विद्याप्रतिष्ठा अथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह॥

देवताओंमें आगे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। वे जगतके कर्त्ता और पालन करने वाले हैं। उन्होंने अथर्व नामक ज्येष्ठ पुत्रको सब विद्याओंका आश्रय-स्वरूप-ब्रह्म-विद्या बताई थी।

तस्मिन्नण्डसे भगवानु पित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरो द्विधा॥

मनुसंहिता।१।१२।

भगवान ब्रह्माने उस अण्डेमें एक वर्षतक वासकर अपने चिन्ता-बलसे उसका दो खण्ड कर डाला।

---

* ऋग्वेद संहिता। ३ म० ६२ सु० १० ऋ०

इन बातोंपर ध्यान देनेसे मालूम होता है, कि पहले ब्रह्माकी पूजा ही अधिक थी, पर क्रमशः उसका लोप हो गया। और शिव तथा, विष्णु की महिमा बढ़ी।

वाजसनेयी संहिता, ऋग्वेद संहिताके दशम मण्डल और शतपथ ब्राह्मणमें पुरुष नामके एक देवताका प्रसङ्ग आया हैं। उससे ही जगतकी और जगतके अन्तर्गत समस्त पदार्थोंकी उत्पति बतायी गयी है। उसमें और मनुसंहिताके सृष्टि प्रकरण में बहुत सा सादृश्य दिखाई देता है।+

विश्वतश्चक्षु विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्व तस्यात्। ऋग्वेद १० म ।८१ सू० ।६ ऋ

चतुर्मुखकमंडलु कूर्म्मादि चिन्हधरो मुक्तः क्रीड़ति। शंकर द्विग्विजय ११ प्रकरण

इन वचनोंपर ध्यान देनेसे मालूम होगा, कि वैदिक पुरुष और ब्रह्मामें कितना अन्तर है।

इस समय ब्रह्माकी पूजा एक प्रकारसे लोप हो गयी है

अब उन्हीं वेदोक्त पुरुष तथा भागवतके विष्णुका मिलान भी ध्यान देने योग्य है।

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्त्रपात्

ऋ० स० १०।१०।१॥

सहस्रोर्वङघ्रि वाह्वक्षः सहस्रानन शीर्षवान्

भागवत २।५।३५

+ शतपथ ब्राह्मण ११।१६।२	मनुसंहिता।१।१।
ऋग्वेद १०म। ६६ सू० ५ ऋ	मनुसंहिता ।१।३२।
ऋग्वेद १०म। ६० सू० ६ऋ	मनुसंहिता १।२०
ऋग्वेद १०म। ६० सू १२ ऋ०	मनुसंहिता १।३१

पुरुषएवेदं सर्व्वं यद्भूतं यच्चभाव्यम

ऋ० १०। १०।२

सर्व्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत्

भागवत २।१।१५

इसी तरह बराबर मिलान करते चले जाइये, बहुत सी बात मिलती जायँगी। इस इतिहासके रचयिताने भी ऐसे ही कुछ भेद दिखाये हैं। जिनसे यह स्पष्ट मालूम होता है, कि वेदमें जिन देवताओंका प्राधान्य दिखाई देता है, उनका क्रमशः लोप हो गया है अथवा दूसरा ही रूप हो गया है।

अब साम्प्रदायिक धर्माचार्यों तथा अन्यान्य महा पुरुषोंका जन्म-काल, उनकी स्थिति तथा उस समय के देशकालकी स्थितिके सम्बन्धमें भी ठीक ठीक पता नहीं लगता है। भगवान शंकराचार्यको हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए पर उनके समय निरूपणमें ही बड़ा अन्तर पड़ जाता है। इतिहास उनका काल सम्बत् ८४५ शक ७१० से सम्बत् ८७७ तक मानते हैं, पर लोकमान्य भगवान बालगङ्गाधर तिलक उनका समय एक सौ वर्ष और भी पीछे मानते हैं। इसी तरह अन्यान्य धर्माचारियोंके समयमें भी अड़चने और अप्रामाणिकता आ पड़ती है।

यद्यपि अड़चनें सभी हैं, परन्तु खोजी भी बड़े जबरदस्त होते हैं। इस समय ग्रन्थकर्त्ता पं० शिवशंकरजी मिश्रने हिन्दी साहित्यके इस अभावको पूर्ण करनेकी जो चेष्टा की है, उससे वे हिन्दी प्रेमी मात्रके धन्यवाद-भाजन हुए हैं। उन्होंने एक जड़ जमा दी है, आगे बृक्ष-पल्लवका होना भी सम्भव है। ग्रन्थकारकी भाँति ही हमें भी आशा है, कि कोई न कोई विद्वान इस कार्यको और भी सुन्दर रूपसे सम्पन्न करने में हाथ बटायेंगे। किमधिकम्,

चन्द्रशेखर पाठक।

वक्तव्य.

मुझे जो कहना था, सो उपसंहारमें मैं कह चुका हूं। विषय जितना ही विवाद-ग्रस्त है, मेरी अज्ञता भी उतनी ही बढ़ी चढ़ी है। अतः इसे एक प्रकारसे अनधिकार चेष्टा ही कहना चाहिये। मैं एक दुस्साहस कर चुका, परिणाम जो होना है, वही होगा।

तथापि एक आशा अवश्य है—इस ग्रन्थका हिन्दीमें अभाव था, इस विषयकी कोई दूसरी पुस्तक थी ही नही, अतः इस चेष्टा के कारण तथा कार्य अपूर्ण रह जानेके कारण यदि इस बातकी आशा करूं, कि भविष्यमें कोई सज्जन इसको पल्लवित करनेकी चेष्टा करेंगे, तो बेजा नहीं। यही आशा है—

बहुत दिनोंसे इस विषयपर कुछ लिखनेकी लालसा थी, पर दरिद्रकी आकांक्षाओंके समान यह लालसा भी मनकी मनमें ही इतने दिनों तक दबी पड़ी थी। इसके बाद जब गुजरातीका "भारतनो धार्मिक इतिहास निकला, तब उसने इस प्रवृत्तिको और भी उत्तेजित कर दिया। यह उसीका फल है।

प्रस्तुत पुस्तक उपर्युक्त पुस्तक तथा "भारतेर उपासक सम्प्रदाय" प्रभृति कई पुस्तकोंके सहारे लिखी गयी है। अतः वास्तवमें यह मेरी कृति नहीं, एक संकलन मात्र है।

अन्तमें जिन महानुभावोंके निर्मित पथका अनुसरणकर

मैं यह ग्रन्थ सम्पूर्णकर सका हूं, उन्हें तथा भूमिका लेखक श्रीमान् पण्डित चन्द्रशेखरजी पाठक तथा प्रकाशक बाबू रिखब-दासजी बाहितीका अत्यन्त कृतज्ञ हूं, जिनकी सम्मिलित कृपाके फल स्वरूप यह पुस्तक हिन्दी-पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करनेमें, मैं समर्थ हो सका हूं।

एक प्रार्थना और भी है—विषय बड़ा गहन ओर जटिल है, यह पहले ही निवेदन कर चुका हूं। अब एक निवेदन यह है, कि किसी धर्म-सम्प्रदाय या मतपंथपर कटाक्ष अथवा पक्षपात प्रकट करनेका मेरा विल्कुल ही विचार नहीं है। केवल उनके मूलतत्व दिखलाकर वर्तमान समयमें प्रचलित धर्म, सम्प्रदाय और मत पंथका दिग्दर्शन कराना ही मेरा उद्देश्य है, कि जिससे यह धार्मिक द्वेषभाव दूर हो जाये। आशा है, यदि इसमें भी कुछ भूलें रह गई हों या कोई दोष आ गया हो तो वे मुझे सूचितकर वाधित करेंगे।

भूलें अनेक होंगी—क्या उनके लिये क्षमा और सूचनाकी आशा कर सकता हूं?

वेथर—उन्नाव
अक्षय तृतीया स० १९८० | भवदीय—
शिवशङ्कर मिश्र।

दूसरा संस्करण.

परमात्माकी असीम दयासे आज इस पुस्तकका दूसरा संस्क-रण साहित्य-स्नेही पाठकोंके सम्मुख रखनेका सुअवसर प्राप्त होता है। इसके प्रथम संस्करणकी प्रतियाँ आशासे भी अधिक शीघ्र बिक गईं और यह प्रमाणित हो गया कि अभी भी भारत-वासियोंमें धार्मिक भाव भरे हैं और उनमें अपने अपने धर्मका असली तत्व जाननेकी इच्छा प्रवल रूपसे जागरित हो रही है। यह बड़ा ही शुभ लक्षण है। अतः आशा होती है, कि सुन्दर भविष्य शान्तिकर ही है।

इसके दूसरे संस्करणमें बहुत कुछ सुधार करने और चित्र आदि बढ़ा देनेकी इच्छा थी, परन्तु दैवदुर्विपादकसे वह मनकी इच्छा मनमें ही रह गयी अतः साधारण संशोधनकर ही यह ग्रन्थ प्रकाशित करना पड़ा। आशा है, पाठक इसके लिये क्षमा करेंगे।

अन्तमें हम श्रीमान् चम्पत रायजी जैन बार-एट-ला को धन्य-वाद दिये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने जैन-धर्मके सम्बन्धमें लिखनेका भार उठाकर हमें चिर वाधित किया है।

भवदीय—

प्रकाशक।

समर्पण

सेवामें

श्रीश्री १०८ श्री स्वामी—

नर्मदानन्दजी ब्रह्मचारी, हठाभ्यासी

गुरु महाराज !

आपकी दी हुई शिक्षा द्वारा ही, मैंने यह पुस्तक आज प्रकाशित की है। इसलिये यह तुच्छ कृति आपको समर्पित करता हूं। कृति की ओर देखकर नहीं, अबोध बालक के प्रेम भावकी ओर देखते हुए इसे स्वीकृत कीजिये।

आपका सेवक—

रिखबदास—

जासूसी ग्रन्थमाला

यदि आपको उत्तमोत्तम

सचित्र जासूसी ग्रन्थ

पढ़नेकी इच्छा हो तो,

।।) प्रवेश फी भेजकर इस

"जासूसी ग्रन्थमाला"

—: के :—

ग्राहक बन जाइये

प्रत्येक पुस्तक पौनी कीमतमें मिलेगी।

निम्नलिखित पुस्तकें निकल चुकी हैं—

शैतानी चक्कर—मूल्य १।।।)

शैतानी लीला या सुनहरा साँप—मूल्य १।।।)

शैतानी जाल या काल रात्रि—मूल्य १।।।)

आर० डी० बाहिती एण्ड कम्पनी,

नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता।

प्रेमोपहार

विषय-सूची

विषय— | पृष्ठ—





ॐ

भारतका धार्मिक इतिहास.

प्रारम्भिक विचार।

सदसस्पति मद्भुतंप्रिय भिन्द्रियस्य काम्यम सनिमेधामयाशिष ॐ स्वाहा ॥

[यजु० अ० ३२ मं० ३]

"सत्याचरणसे ज्ञानकी रक्षा करनेवाले, आश्चर्यजनक गुण कर्म और स्वभाववाले, इन्द्रियोंके अधिपति, जीवकी कामना पूर्ण करनेवाले, एवम् उसके प्रिय, ऐसे सर्वाधार परमात्माकी उपासना द्वारा, मुझे ऐसी उत्तम बुद्धि प्राप्त हो, जिससे सत्या-सत्यका निर्णय हो सके।"

मनुष्य देहकी श्रेष्ठता—परम कृपालु जगन्नियंता परमात्माने इस अखिल संसारका निर्माण किया है। संसारमें अनेक प्रकारके प्राणी और पदार्थ निर्मित किये हैं, परन्तु इन सबमें मनुष्य सबसे श्रेष्ठ प्राणी है। क्योंकि परमात्माने उसे विचार करनेके लिये एक विशेष प्रकारका बुद्धिरूपी बलवान साधन देकर, उसे ज्ञानयुक्त बना दिया है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन—ये चार गुण तो मनुष्य और पशुमें एक ही समान हैं, परन्तु सारासार विचार करनेकी विवेक-शक्ति मनुष्यमें अधिक है, अतएव

जो लोग अपनी बुद्धिका सदुपयोग कर सारासारका विचार नहीं करते, वे पशु समान हैं। यही नीतिकारोंका कथन है। संसारमें मनुष्यत्व महा दुर्लभ है। अतएव मनुष्यको बुद्धिपूर्वक धर्माधर्म्म और कर्त्तव्य अकर्त्तव्यका विचार कर अपने जीवनको सार्थक करना चाहिये।

मनुष्य मात्रका कर्त्तव्य क्या है ?—संसारमें प्राणी मात्र सुख चाहते हैं, कोई भी दुःखकी प्राप्तिकी इच्छा नहीं करता, सबको सुखसे अनुराग और दुःखसे विराग उत्पन्न होता है। अतएव सुख और दुःख क्या है ? इस विषयका ज्ञान होना परमावश्यक है। संसारमें हम जो कुछ देखते, सुनते या जानते हैं, हमारे शरीरमें उसका शुभाशुभ ज्ञान करानेवाली एक इन्द्रिय हैं। इसे चित्त अथवा मन कहते हैं। जब कोई बात चित्त-वृत्तिके अनुकूल होती है, तब हृदयके भीतर और बाहर भी आनन्दका अनुभव होता है—यही सुख है। इसके विपरीत होनेसे मनमें परिताप होता है—यही दुःख है। और भी संक्षेपमें कह सकते हैं, कि जो कुछ हमारे अनुकूल है वह सुख है, जो प्रतिकूल है, वह दुःख है ? सुखकी भी श्रेणियाँ और भेद हैं। कितनीही बातें आरम्भमें अनुकूल ज्ञात होनेपर भी अन्तमें प्रति-कूल प्रतीत होती हैं।

प्राणी मात्रके जीवन, धन, यौवन, और पुत्र कलत्र आदिका कोई भरोसा नहीं है। क्योंकि वह आज है, और कल नहीं। संसारके सभी सुख विकारान्तक हैं—अन्तमें उनमें विकार हो

जाता है। अतएव, वे विषयी किंवा क्षणिक सुख कहे जाते हैं। विषयी किंवा क्षणिक सुख आरम्भमें चाहे जैसा प्रतीत हो, परन्तु उसके अन्तमें दुःख ही होता है, इसलिये विवेक-सम्पन्न ज्ञानी पुरुष, इसे सत्य सुख न कहकर, इसे "सुखाभास" कहते हैं। वे अन्य जीवोंकी भाँति ऐसे सुखोंमें लिप्त न होकर सत्य सुख क्या है और वह कैसे प्राप्त किया जा सकता है, यह जान कर उसे हस्तगत करनेके लिये प्रयत्न करते हैं। तत्वविद् पुरुष-समुदाय सत्य-सुखके रूपकी पृथक कल्पना करते हैं। जो सुख किंवा अनुकूल बात सदा सर्वदा एक ही प्रकारसे अनुभव की जा सके, वही अक्षय सुख है। इसे चाहना, इसे प्राप्त करना, और इसकी खोज करना, यही मनुष्य मात्रका परम कर्त्तव्य है।

अक्षय सुख क्या है ?—सुख और दुःख यह हमारी मनोवृत्तिके ही विकार हैं। यदि यह चित्तवृत्ति वहिर्मुख होनेका स्वभाव छोड़, अन्तर्मुख रह, विकार रहित स्थिर हो जाये अर्थात मन सदा साम्यावस्थामें रह सके, तो परम सन्तोष प्राप्त हो। यही शांन्ति, यही नित्य सुख और यही अक्षय है। जड़ता या मूढ़ताको शान्ति नहीं कहते बल्कि संसारमें शुभाशुभ प्रसंग प्राप्त होने पर, जिस समय जो कुछ जैसा मिले, उसमें विकार रहित हो, निर्वाह कर लेना, उसीमें सन्तुष्ट रहना, ऐसी मनस्थितिको शान्ति समझना चाहिये। यही अक्षय सुख है। शास्त्रकार इसे ही मोक्ष कहते हैं। सबको ऐसा सुख प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा होती

है। अक्षय सुख किंवा मोक्ष-प्राप्तिके लिये मनुष्य मात्रमें जो स्वाभाविक वृत्ति विद्यमान हैं, उसे पूर्ण करने के लिये महत् पुरुषोंने प्रयत्न किया। ऐसा करते समय उनमें अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न हुए और स्वाभाविक ही अनेक शङ्कायें भी हुईं। "मैं क्या हूँ? यह देह क्या है? जगत क्या है? मनुष्य और जगतमें क्या सम्बन्ध है? इन सबका कोई नियंता है या नहीं? ऐसे ही और भी लोक हैं या नहीं? हैं तो वह इसी प्रकारके सुख दुःखादि उभय गुणोंसे युक्त हैं या कुछ दूसरे ही प्रकारके हैं? वर्त्तमान देहके पूर्व ऐसी ही या अन्य प्रकारकी और देह रही होगी या नहीं? पुनः ऐसी या अन्य प्रकारकी देह प्राप्त होगी या नहीं? इस संसारमें कोई जन्मसे सुखी और कोई दुखी होता है—इसका कोई कारण है या नहीं?" इत्यादि, उन्हें शकाएँ हुईं, साथही चेष्टा करनेपर इन शङ्काओंकी निवृत्तिके साधन भी ज्ञात हुए। उन्होंने उन साधनोंमें परम सन्तोष और नित्य सुख समझ, उनको प्राप्त करनेके उपायोंकी योजना की। इन उपायोंको धर्मकी संज्ञा प्राप्त हुई। इस प्रकार धर्मका जो रूप सङ्गठित हुआ, उसे सामान्यतः सनातनधर्म कहना चाहिये।

इस संसारमें अनेक मनुष्य समुदाय हैं। आजकल प्रत्येक समुदायका पृथक पृथक धर्म दृष्टिगोचर होता है, परन्तु नित्य सुख यानी मोक्षकी प्राप्तिही उन सबका सामान्य हेतु किंवा ध्येय है। परम कृपालु परमात्माने, ज्ञान प्राप्त करनेके लिये, मनुष्य मात्रको इन्द्रियां प्रदान की हैं। इससे मनुष्य सब कुछ समझ

सकता है। ईश्वरने प्रत्येक मनुष्यकी इन्द्रियोंमें समान गुणोंकी स्थापना की है। इससे सिद्ध होता है, कि मनुष्य मात्रके लिये सर्वत्र एक समान संगठनकी ईश्वरी प्रेरणा है। जब ऐसा है, तब फिर धर्मके लिये पृथक पृथक प्रेरणा कैसे हो सकती है? ईश्वर प्रेरित मनुष्य मात्रका धर्म तो केवल एक ही है, यद्यपि देशकाल और बुद्धि भेद्के कारण आज अनेक भेद दृष्टि-गोचर हो रहे हैं, किन्तु अक्षय सुख अर्थात् मोक्ष-प्राप्तिका साधन ही केवल उन सबका लक्ष्य-बिन्दु है।

मोक्षका साधन क्या है?—ऐसी गणना की गई है, कि इस समय पृथ्वीपर पृथक पृथक अनेक धर्मोंको मिलाकर ६६००० मतपंथ हैं। इनमेंसे ८०० के करीब भारतमें ※ और शेष अन्य देशोंमें प्रचलित हैं, प्रत्येक धर्म-संप्रदाय किंवा मतपंथका प्रधानहेतु कर्म्म, ज्ञान और भक्ति रूप साधनोंमेंसे एक दो या तीनों के द्वारा मोक्ष-प्राप्तिका मार्ग दिखलाना है। दुनियामें प्रचलित कोई भी धर्म संप्रदाय अथवा मतपंथ इन तीनोंके अतिरिक्त अन्य कोई मोक्षका साधन नहीं बतलाते। अतएव, हम सबसे पुराने धर्मकी खोजकर उसके सहारे इन तीनोंके स्वरूप की रूप-रेखा अंकित करना उचित समझते हैं।

※ आर्योंका निवासस्थान आर्यावर्त्त है। आर्यका शब्दार्थ श्रेष्ठ होता है, नर्मदाके उत्तरका देश आर्यावर्त्त गिना जाता है, दक्षिण देशके सहित आर्यावर्त्तको भारत कहते हैं। भा—ज्ञान+रत प्रेमी, अर्थात ज्ञान प्राप्त करनेमें प्रेम रखनेवाला देश।

सबसे अधिक प्राचीन धर्म वेद है.

इस देशमें जितने आर्य किंवा हिन्दू धर्मके सम्प्रदाय और मतपंथ हैं, वह सब वेदको सबसे अधिक प्राचीन मानते और उसकी श्रेष्ठता स्वीकार करते हैं। साथ ही पृथ्वीपर प्रचलित प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय और मतपंथका मूल भी वेद ही है। यह अब सिद्ध हो चुका है।* (देखो प्रो० मेक्समूलर कृत Physical Religions) थियोसोफीकल सोसाईटीके सुविख्यात और बुद्धिमान सभापति हेनरी उगल्कोटने बम्बई, लाहोर तथा काशी

१सृष्टिके आदि उत्पति-स्थानके लिए बड़ा मतभेद है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक उत्तर ध्रुवके पास बतलाते हैं। बंगालके सुप्रसिद्ध पंडित उमेशचन्द्र विद्यारत्न मंगोलिया कहते हैं। मैक्समूलर और वेबर आदि लेमुरिया कहते हैं। इतिहासकार हण्टर कास्पियन समुद्रके पास मानते हैं, मनुस्मृतिमें कुरुक्षेत्र बतलाया है। बिलासपुरके बी, सी, मजमुदार कहते हैं, कि आर्य लोग कहीं बाहरसे न आये थे परन्तु यहींके आदि निवासी थे। अध्यापक मेकडालनका भी ऐसा ही मत है। सर विलियम जोन्स और सर वाल्टर रेले भी आर्यावर्त्त ही बतलाते हैं, यज्ञेश्वर शास्त्रीने आर्य विद्या सुधाकरमें आर्यावर्त्त ही आर्योंका आदि उत्पत्ति स्थान सिद्ध किया है। मिश्र देशस्थ दरियल बांहरीमें हासतोपकी समाधि और मन्दिरकी दीवारों पर अंकित लेखोंसे ज्ञात होता है, कि वह जिस पवित्र भूमिसे मिश्र देशमें आ बसे थे, वह पवित्र भूमि आर्यावर्त्त ही है। पुराणोंमें जो मिश्र स्थान वर्णित है, वह मिश्र देश ही प्रतीत होता है। डाक्टर अलेकजेण्डर डेलमार कहते हैं कि कोलम्बसने जब अमेरिकाका स्वप्न देखा, उसके बहुत पहिले हिन्दुओंने उसे खोजकर वहाँ उपनिवेशकी स्थापना कर निवास किया था।

इत्यादि शहरोंमें योग्यता पूर्ण प्रभावशाली व्याख्यान देकर बतलाया था, कि अब यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि आर्यावर्त्त ही आदि सृष्टिकी उत्पत्तिका स्थान है और यहींसे मिश्र आदि देशोंमें जन-समुदाय जा बसे थे। हजारों वर्ष पहले, जब यूरोपमें पुस्तकें लिखकर कलाकौशलका प्रचार और विद्यालयोंकी स्थापनापर विचार भी न हुआ था, उस समय आर्य प्रजा और उनके राजा महाराजा, विद्वान, गुणी, बुद्धिमान और सकल-गुण-सम्पन्न तथा कलाकौशलमें सबसे श्रेष्ट पदपर विराजमान थे। उन दिनों वह निर्मित जातियोंमें बँधे हुए न थे, परन्तु सुन्दर आचार, विचार व्यवहार और गुणोंसे उच्चपद प्राप्त कर सकते थे और नीच कर्मों से पतित व पदभ्रष्ट होते थे, इत्यादि। ज़रथोस्ती धर्म भी आर्य धर्मका ही रूपान्तर है और महात्मा ईसाने भी यहींसे धर्म शिक्षा प्राप्त कर क्रिश्चियन धर्मकी स्थापना की थी।+ मि० लोइस जेकोलियटने भरत खण्डकी भूमिको सत्यता, प्रेम, काव्य और शास्त्रोंकी पितृभूमि कहा है—×डी० ओ० ब्राउन भी कहते हैं, कि यदि हम पक्षपात छोड़कर परीक्षा करें तो हमें मान्य करना पड़ेगा,

---

मि० काउण्ट जोर्जस जेर्ना लिखते हैं कि आर्यावर्त्त केवल आर्य धर्मका ही घर नहीं है बल्कि अखिल संसारकी सभ्यताका आदि भण्डार है। इन सब चर्चाओंका सार यह है, कि सृष्टिका आदि उत्पत्ति स्थान आर्यावर्त्त ही होना चाहिये और है भी ऐसा ही। ब्रह्मावर्त्तमें ब्रह्माकी खूँटी गड़ी है, वह हमें सूचित करती है कि ब्रह्मदेवने सर्व प्रथम यहीं सृष्टिकी नींव डाली।

+—बाईबिल इन इण्डिया ×—डेली ट्रिब्यून ता० २०-२-१८८४

कि आर्य लोग ही अखिल संसारके साहित्य, धर्म और सभ्यताके जन्मदाता हैं।

इन बातोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है, कि दुनियाँ भरके तमाम धर्मों में वेद धर्म सबसे प्राचीन और श्रेष्ठ है, इसलिये महर्षि मनु भगवानने भी कहा है—"**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**" अर्थात् संसारमें वेद ही सब धर्मों का मूल है।

वेद किसे कहते हैं और उसमें क्या है ?

परम कृपालु परमात्माने सृष्टिको सुव्यवस्थित रखनेके लिये प्रत्येक विषयको नियम-रज्जुसे बाँध रक्खा है। इन नियमोंको कुदरती कानून या ईश्वरी नियम भी कहें तो अनुचित न होगा। प्रत्येक मनुष्यको कुदरती कानूनका ज्ञान होना कठिन है, अतएव उन नियमोंका उल्लंघन हो जानेपर शिक्षापात्र न होना पड़े, इसलिये महान ऋषि मुनियोंने बुद्धि और परिश्रम द्वारा, अनुभव सिद्ध, उन नियमोंको ढूंढ़कर, जन-हितार्थ वेदरूपमें प्रकाशित कर, अखिल संसारका महान उपकार किया है। वेद कोई पुस्तक-वाचक शब्द नहीं है। बल्कि भिन्न भिन्न ज्ञानी ऋषि मुनियोंके अनुभव सिद्ध आध्यात्मिक नियमोंके संग्रहका नाम वेद है। वेद शब्दमें विद् धातु है। विद् अर्थात् जानना, ज्ञान प्राप्त करना इत्यादि। संसारमें जन्म धारणकर मनुष्यको कौन कौन कर्त्तव्य करना चाहिये, किस प्रकारका आचरण करनेसे भूतमात्रको सुख प्राप्त होकर उनका जन्म सार्थक हो सकता है, ब्रह्म और

जीव क्या है, उनमें परस्पर कैसा सम्बन्ध है, इत्यादि अनेक विद्यायें, जिनको जान लेनेपर, फिर किसी विषयका ज्ञान प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं रहती, ऐसे सर्वोत्तम ज्ञानके भण्डारका नाम वेद है। वेदमें सर्व विद्या बीज रूपसे विद्यमान है।* वेद

---

* वेदमें सर्व विद्या बीज रूपसे विद्यमान है—यह बात आधुनिक समय के आंग्ल शिक्षा प्राप्त और पाश्चिमात्य संस्कार वाले लोगोंको माननेमें संकोच होता है,। वह प्रश्न करते हैं, कि क्या रेल, तार वो वाष्पयन्त्र इत्यादिका भी वेदमें उल्लेख है? उत्तरमें बतलाया जा सकता है कि हां, है। परन्तु वह बीजरूप होनेसे ज्ञात नहीं होता। यदि पाश्चात्य प्रजाकी भांति शोधक बुद्धिसे सप्रयोग प्रयास किया जाय तो तार रेल आदिकी कौन कहे बल्कि पश्चिमके बड़े बड़े विद्वान प्रयत्न करनेपर भी जिनमें निपुणता प्राप्त नहीं कर सके, ऐसी महान विद्यायें हस्तगत हो सकती हैं। रावणके पास पुष्पक विमान था, उससे वह इच्छानुसार प्रवास कर सकता था। अर्जुन तथा कृष्ण अग्निनौकामें बैठकर पाताल गये थे। आर्यगण पक्षी की भाँति उड़ते थे और आकाशमें युद्ध करते थे। अर्जुनने सभा—भवन तैयार कराया था। उसमें जलके बदले स्थल और स्थलके बदले जल दिखाई दे—ऐसी रचना की गई थी। इसके अतिरिक्त वहांपर सूक्ष्म दर्शक और दूर दर्शक यन्त्र, घड़ियां, और गाना गानेवाले यान्त्रिक पक्षियोंकी भी योजना की गई थी। रामचन्द्रजीके शिल्पी नल और नीलने यंत्रोंकी सहायतासे सेतु रचना की थी। ऋग्वेद १—१—२३ में बतलाया है कि "सर्व रोग पानीसे दूर होते हैं" ऋग्वेद १—८—११—१० में तार यंत्रका वर्णन है। ऋग्वेद १—३—६—७ तथा १—३—६—४ में नौका रथ और विमानका वर्णन है। यजुर्वेद २३—६२ में खगोल विषयक वर्णन है। ऋग्वेद ८—२—१०—१ में पृथ्वी सूर्य्यके आस पास फिरती है। तत्सम्बन्धी और यजुर्वेद ३३—४३ में आकर्षण शक्तिका वर्णन किया गया है। इस प्रकार खगोल,

सर्वज्ञताकी मूर्ति है, अतएव वह ईश्वर प्रेरित और अनादि है। वेद मन्त्र पृथक पृथक ऋषियोंके ज्ञानमें प्रतीत हुए हैं —दृष्ट हुए हैं, अतएव वह ऋषि मन्त्रद्रष्टा कहलाते हैं। वेदमें लिखे हुए नियम ईश्वरी नियम हैं, उनमें कदापि उलट-पलट और हेर-फेर नहीं हो सकता। वह आदि अन्त रहित है, इसलिये वह अनादि और नित्य है। यह ईश्वरी नियम स्मृतिगत न हो जायँ और उनका कालान्तरसे लोप न हो जाय, इसलिये ऋषि मुनि उन्हें कण्ठाग्र रखते थे और शिष्योंको सिखाते थे। बादको लिपि-कला प्रचलित होनेपर, पुस्तक रूपमें लिख रक्खे गये। सृष्टि पदार्थकी योग्य योजना, ज्ञानके बिना नहीं हो सकती, अतएव

संगीत, शिल्प और यंत्रादि विद्याओंके अतिरिक्त राजा प्रजाको, पिता पुत्रको, पतिपत्नीको, गुरु शिष्यको, परस्पर किस प्रकार रहना चाहिये, इत्यादि विषयोंका भी उसमें सम्पूर्ण वर्णन है, हमारे देश बन्धुओंमें शोधक बुद्धिका अभाव होनेसे उन विद्याओंका सत्यस्वरूप प्रकाशित नहीं होता। रावण अनेक देवताओंसे काम लेता था। ऐसा वर्णन दृष्टिगोचर होता है। आज भी जलशक्तिसे चक्की व मिलें चलती हैं, अग्नि एवम् वाष्प शक्तिसे मशीने चलती हैं। वस्त्रादिक विविध सामग्रियाँ तैयार होती हैं, मनुष्य व माल असबाब स्थानांतरित होते हैं। विद्युत शक्तिसे संदेश पहुंचाये जाते हैं। इत्यादि रावण भी इसी प्रकार इन शक्तियोंसे काम लेता था। उसने इन्हें वशीभूत कर रक्खा था, क्योंकि यंत्रादि कलामें वह बहुत ही प्रवीण था। इसीसे लंका लक्ष्मीकी मूर्ति बन रही थी, और वह सुवर्ण-भूमि कही जाती थी। रावणने इन विषयोंपर अनेक ग्रन्थ लिखे थे ; परन्तु हनुमान द्वारा लगाई हुई अग्निमें वे भस्मीभूत हो गये। इसके अतिरिक्त उनके ज्ञाता युद्धमें मारे गये और उन विद्याओंका लोप हो गया।

ईश्वरने सर्व प्रथम वेद-ज्ञानको बतलाया है। यह ईश्वरीय ज्ञान अनन्त है। अतः **"अनन्ता वै वेदाः"** ऐसी श्रुति है। यद्यपि ज्ञानके लक्षणसे वेद एक ही है, परन्तु विविध विद्याओंको लेकर उसके ऋक्, यजुष, साम और अथर्वण यह चार भाग हैं। ऋग्वेदमें सृष्ट पदार्थोंका योग्य संस्कार और उपयोग किस प्रकार करना चाहिये, यह बतलाकर सर्व पदार्थके गुणदर्शक परमात्माकी स्तुति की गई है। यजुर्वेदमें संस्कारके लिये आवश्यक व व्यवहार करने योग्य पदार्थोंकी उपयोगिता सिद्ध करके भूत-दया, विद्या और विज्ञानादिकी विधिपूर्वक नियमित क्रियायें करके लोग सुख प्राप्त कर सकें—ऐसा वर्णन है। सामवेदमें सत्य ज्ञान और आनन्द वृत्ति प्राप्त हो ऐसा वृत्तान्त है, और अथर्व वेदमें कृतकर्मका विचार करके संशयकी निवृत्ति हो, यह बात लिखी है।

इतना ही नहीं, यदि वेदोंको मनन किया जाये और उन्हें ठीक ठीक समझा जाये तो मालूम होगा, कि प्राचीनकालके भारत-वासियोंने स्वयं ही अपना इतिहास उनमें सङ्कलन कर रखा है। वेद, स्मृति, पुराण और तन्त्रमें यह इतिहास सन्निवेशित है। वेद संहितामें भारतवर्षीय हिन्दू-धर्मकी आदिम अवस्था, ब्राह्मण और आरण्यक समुदायमें द्वितीय अवस्था, कल्प-सूत्र और स्मृति-संहितामें तृतीय अवस्था और पुराण और तन्त्रमें चतुर्थ अवस्था प्रकटित की गयी है।

यद्यपि वेद चार हैं, पर किसी किसीने पाँच भी माना है। ऋक्, कृष्ण-यजुः, शुक्ल-यजुः, साम और अथर्व्व।

स पुराणान् पंचवेदान् शास्त्राणि विविधानि च।
ज्ञात्वाप्यनात्मवित्तेन नारदोतिशुशोच हि॥

पञ्चदशी ११ परि० १८ श्लोक।

अर्थात् समस्त पुराण, पञ्चवेद और अनेक शास्त्र जानकर भी आत्मतत्व ज्ञानके अभावसे, असन्तुष्ट होकर, नारद अत्यन्त शोकाकुल हो पड़े थे।

प्रत्येक वेद दो भागोंमें विभक्त है। मन्त्र और ब्राह्मण। मन्त्र भाग प्रायः ब्राह्मण भागसे अधिकतर प्राचीन हैं। मन्त्र भिन्न भिन्न रूपसे सङ्कलित होनेके कारण अनेक सांहितायें बन गयी हैं। ऋग्वेद-सांहिता, सामवेद-सांहिता, तैत्तिरीय सांहिता, वाजसनेयि सांहिता और अथर्व-संहिता। साम और ऋग्वेद-सांहितायें पद्यमय हैं। अथर्व और यजुर्वेद सांहिताका कुछ अंश गद्यमय और बाकी पद्यमें हैं। सांहिता-भागका तात्पर्यार्थ, रचना-प्रणाली और व्याकरण घटित वैलक्षण्यको ध्यान देकर देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि संस्कृत भाषामें, वैदिक सांहिताके समान प्राचीन अन्य कोई पुस्तक नहीं है, परन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता, कि ये पाँचों सांहितायें, एक ही समय बनीं, और उनमें एक ही प्रकारका धर्म्म प्रदर्शन किया गया है।

कितने ही शास्त्रोंमें, ऋक्, साम यजुः—ये ही तीनों, वेद त्रयीके नामसे विख्यात हैं।* शास्त्रकारोंका मत है, कि ऋक्,

* ऋग्वेद संहिता १०।९०।९ शतपथ ब्राह्मण ११।मू।८ छान्दग्योपनिषद्। ४।१७।१—२ मनु संहिता १।२३ और ३।१ महाभारत १।१००।६७

साम, यजुः—ये तीन वेद-यज्ञ-निर्वाहार्थ प्रयोजित होते थे, इसी लिये ये तीनों, वेद-त्रयी या त्रयी-विद्या कहलाते थे, परन्तु सामवेद और यजुर्वेद-संहिता, जिस तरह उद्‌गाता और अध्वर्यु ऋत्विकोंके निमित्त सङ्कलित हैं, उसी तरह ऋग्वेद भी केवल होताओंके लिये रचा हुआ नहीं मालूम होता। अथर्व वेद यज्ञके उपयोगी नहीं है, केवल अभिचारादि-सम्पादन कार्यमें ही इसका प्रयोग होता है, इसीलिये, वेद-त्रयीके साथ यह परिगणित नहीं होता।

अथर्व्व-वेदस्य चतुर्थ वेदत्वेऽपि प्रायेणा-भिचारार्थत्वात् यज्ञ-विद्याया मनुपयोगाच्च निर्देशः। तथाहि ऋग्वेदेनैव हौत्रं कुर्व्वन्, यजुर्वेदनाध्वर्य्यवं सामवेदेनोद्‌गात्रं, यदेव त्रय्यै विद्यायै सूक्तन्तेन ब्रह्मत्वमिति, श्रुतेस्त्रयी सम्पाद्यत्वं यज्ञानां ज्ञायते।

मनु संहिता तृतीय अध्याय, प्रथम श्लोककी कल्लूकभट्टकृत टीका।

जो हो, वैदिक धर्म्मकी प्रथम अवस्थाका इतिहास सङ्कलनके विषयमें ऋग्वेद संहिता ही सर्वापेक्षा आदरणीय है। बहुत तरहके यज्ञानुष्ठान हिन्दू जातिका पहला धर्म नहीं है। यह धीरे धीरे बढ़ गया है। साम और यजुर्वेद उत्तर कालमें यज्ञा-नुष्ठानके निमित्त संगृहीत हुए हैं, उसके प्रत्येक मन्त्र और प्रत्येक

शब्द किसी न किसी यज्ञानुष्ठानके लिये विनियोजित हुए हैं। परन्तु ऋग्वेद संहिता ऐसी नहीं है। शास्त्रकारोंमेंसे किसी किसीने तो यहाँतक लिख दिया है:—

तत्परिचरणा वितरौ वेदौ।

कौशीतकी ब्राह्मण। ६।११

सामवेदीय संहिताके प्रायः समस्त मन्त्र, यजुर्वेदीय वाजसनेयि संहिताके प्रायः अर्द्धेक और अथर्व-वेदीय संहिताके भी अनेकांश ऋग्वेद-संहिताके मध्यमें विनिर्विष्ट हैं। सायनाचार्यने लिखा है:—

"मन्त्रकाण्डेष्वपि यजुर्वेदगतेषु तत्र तत्राध्वर्युणा प्रयोज्या ऋचो वहव आम्नाताः। साम्नान्तु सर्व्वेषां ऋगाश्रितत्वं प्रसिद्धम्। आथर्व्वणिकैरपि स्वकीय संहितायामृच एव वाहुल्येन धीयन्ते।

ऋग्वेद भाष्यानुक्रमणिका।

साथ ही एक बात और भी है। समग्र ऋग्वेदसे एक समयका धर्म्म भी प्रगट नहीं होता। उसका भी कोई कोई अंश अपेक्षाकृत प्राचीन या अप्राचीन है। वेद प्रणेता ऋषियोंने स्वयं ही यह व्यक्त किया है। किसी किसी ऋषिने अपेक्षाकृत प्राचीन ऋषियोंका प्रसङ्ग और पुराने और नये श्लोकोंका विषय भी उल्लेख किया है—

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवां एह वक्षति ॥

ऋग्वेद संहिता १।१।२

अर्थात अग्नि पूर्वकालीन और इदानीन्तन ऋषि कृत स्तवनीय है। वह इस यज्ञमें देवगणको अवाहन करे।

नवीनता और प्राचीनता प्रतिपादक और भी ऐसे कितने ही वचन मिल सकते हैं, परन्तु उन्हें देकर हम पुस्तकका कलेवर नहीं बढ़ाया चाहते।

वेदका दूसरा भाग—ब्राह्मण भाग है। इस ब्राह्मण भागमें क्रिया-कलापोंकी ही विशेष बहुलता दिखाई देती है। मन्त्र भाग और ब्राह्मण भागकी रचना प्रणालीको मिलान करनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि ब्राह्मण भाग अपेक्षाकृत अप्राचीन है। यह भी कहा जा सकता है, कि ब्राह्मण-भाग संहिता भागका एक प्रकारसे भाष्य स्वरूप है। संहिता-भागका अर्थ और तात्पर्य्य प्रतिपादक निघण्टु, निरुक्त प्रभृति जो बहुप्राचीन व्याख्या और संग्रह पुस्तक हैं, उनमें ब्राह्मण-भाग सबसे प्राचीन है।

ब्राह्मण-भागके अन्तर्गत कई परिच्छेदोंका नाम आरण्यक है। पाणिनि ऋषिने इस आरण्यक शब्दका अर्थ केवल अरण्यवासी लिखा है परन्तु आरण्यक वेदके एक विशेष भागका नाम है। पाणिनि वेदादि बहुशास्त्र विशारद ऋषि थे। फिर उन्होंने इसे वेदका एक विशेष भाग क्यों नहीं लिखा? तो क्या पाणिनिके समयमें यह ब्राह्मण भाग प्रस्तुत न हुआ था? यदि उनके समयमें

यह ब्राह्मण भाग प्रचलित होता तो, वे अवश्य ही उसे वेदान्त प्रति-पादक बताते। सांहिता भागमें हिन्दू धर्मरूपी पुष्पकी कली-भर दिखाई दी है, ब्राह्मण भागमें वह कली खिल गयी है। सांहिता भागमें इन्द्रादि देवताओंकी स्तुति है और उनसे अन्नादिकी प्रार्थनाका विवरण है, परन्तु ब्राह्मण भागमें यज्ञादि सम्बन्धी विधि-निषेध और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले उपाख्यान हैं। मालूम होता है, कि ब्राह्मण भाग प्रस्तुत होनेके समय जो क्रिया-कलाप प्रचलित थे, ग्रन्थकारोंने, उनके ही प्रमाणोंको प्रदिपादन करनेके लिये, सांहिता-निविष्ट मन्त्र, निविद्, गाथा और उस समयके प्रचलित उपाख्यानोंका सङ्कलन किया था। ब्राह्मण-भागमें अग्नि-ष्टोम, दर्श पौर्णमास, चातुर्मास्य इष्टि, वाजपेय, राजसूय, अश्व-मेध और नरमेधादि वृहत् और अवृहत् कितने ही यज्ञोंका विषय भरा है। ब्राह्मण-भागमें हिन्दुओंकी सामाजिक व्यवस्था बहुत बढ़ी दिखाई देती है।

ब्राह्मण-भागमें जिस तरह धर्म्म और क्रियाओंका प्रसङ्ग तथा वृत्तान्त भरा है, कल्प-सूत्रमें वह सुप्रणाली सिद्ध और सुश्टङ्खला-वद्ध दिखाई देता है। ब्राह्मण-भाग इतिहास, उपाख्यान, शब्द व्युत्पत्ति प्रभृति अनेक प्रकारके प्रयोजनोतिरिक्त विषयोंसे परिपूर्ण है, परन्तु कल्प-सूत्रमें स्पष्ट रूपसे, सुप्रणाली क्रमसे, क्रिया कलापोंकी अनुष्ठान-पद्धति ही प्रदर्शित की गयी है। अप्रयोजनीय और अप्रासंगिक विषय छोड़ दिये गये हैं।

इसमें सन्देह नहीं, कि ये सूत्र अति प्राचीन और ब्राह्मण

भागके समसामयिक हैं। टीकाकारोंने उसके अन्तर्गत अनेकानेक प्रयोग छान्दस और आर्ष्य भी बतलाये हैं। शतपथ ब्राह्मणमें भी सूत्र शास्त्रका उल्लेख है।※ अब कोई कोई सूत्र-ग्रन्थ तो इन ब्राह्म ग्रंथोंकी अपेक्षा भी प्राचीन मालूम होते हैं। हिन्दुओंके मतसे मन्त्र और ब्राह्मण अपौरुषेय हैं; कल्प सूत्र और अपरापर यावतीय शास्त्र पौरुषेय हैं। मन्त्र और ब्राह्मण भागका नाम श्रुति है। वे स्वयं ही प्रमाण हैं, उनमें भ्रमकी सम्भावना ही नहीं है, कल्प, सूत्र और मनु संहितादि स्मृति कहलाते हैं। उनमें जितना श्रुति-मूलक है, वही प्रमाण है—और जो अंश श्रुति-विरुद्ध है, वह अप्रामाणिक है।+ जो हो, ये समस्त सूत्र-कल्प साक्षात वेद न हों, तो भी वेदाङ्ग अवश्य हैं, क्योंकि वे वैदिक प्रमाणानुसार ही संकलित हुए हैं।

कल्प-सूत्र तीन प्रकारके हैं,—श्रौत, गृह्य, सामयाचारिक। सूत्रमें दश-पौर्णमासादि बहुतसे प्रधान यज्ञोंका विषय है, गृह्यमें समस्त संस्कार विधि है और सामयाचारिकमें ब्रह्मचर्य आदि विविध आश्रमोंका आचार, सन्ध्या वन्दनादि दैनन्दिन क्रिया-पद्धति, राजनीतिक व्यवस्थाएँ, आश्रम और सामाजिक धर्म्मादि विषय है। इसका

※ अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्व्वेदः सामवेदऽथर्व्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्व्वाणि निश्वसितानि। शतपथ ब्राह्मण १४।५।४।१०

+ श्रुति-स्मृति विरोधेतु श्रुतिरेव गरीयसी।

नाम ही धर्म्म-सूत्र है, मानव और याज्ञवल्क्य प्रभृतिके धर्म्म शास्त्र और धर्म्म-संहितायें—अथवा उसका अधिकांश—इन्हीं धर्म्म-सूत्रोंके आधार पर है। मानव-नामक ब्राह्मणका लिखा, मानव-कल्प सूत्र, नामका एक और भी धर्म्म-शास्त्र है। कितनोंका ही मत है, कि मनु संहिता, इसी गद्यमय मानव सूत्रसे संकलित की गयी है। इसका तात्पर्य्यार्थ मानव नामक यजुर्वेदी ब्राह्मणोंका धर्म्म शास्त्र है।*

उपनिषद् भी ब्राह्मणका ही एक भाग है। सच पूछिये तो ब्राह्मण ग्रन्थोंकी मुख्य महिमा उपनिषदोंपर ही अवलम्बित है। यदि यह ज्ञान-गरिमासे गरीयमान विषय उसमेंसे निकाल दिया जाये, तो ब्राह्मण ग्रंथ सार-शून्यसे हो जायें। उपनिषद्में ज्ञान गरिमाका जैसा उत्कर्ष दिखाया गया है, उससे वह जगदादरणीय है।

उपनिषदोंमें जगदुत्पत्ति, जीवात्मा और परमात्मापर विचार किया गया है। इनपर वैदिक धर्म्मकी गुण-गरिमा विशेष अवलम्बित है। इसी कारणसे वे वेदान्त ग्रंथ कहलाते हैं। महान पण्डित मैक्समूलरने इसे मानव मस्तिष्कका एक चमत्कारिक फल बताते हुए कहा है, कि इनसे संसार भरके देश, प्रत्येक समय और साहित्यको गरिमा प्राप्त हो सकती है। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक—ये ही प्रधान

* Ancient Sanskrit Literature by Max Muller 1859 p. p. 86, 132, 135, 200. The administration of Justice in British India by W. H. Morley 1858 p. 207—209.

उपनिषद् हैं। इनके अतिरिक्त कौशीतकी आदि श्वेताश्वतरकी भी प्रधानता है। उपनिषदोंमें साम्प्रदायिक मत संकीर्णताका अभाव है—यही इनकी विशेषता है। ऋग्वेदके उपनिषद् उसके ब्राह्मणोंके नामानुसार ऐतरेय और कौशीतकी कहलाते हैं, कृष्ण यजुर्वेदके प्रधान उपनिषद् तैत्तिरीय तथा मैत्रायणीय हैं और शुक्ल यजुःके ईश और बृहदारण्यक। छान्दोग्य उपनिषत् सामवेदका है। अथर्वके उपनिषत् तो अनेक हैं, पर उनमें प्रधानता मुण्डकको प्राप्त हुई है। इन समस्त उपनिषदोंकी संख्या १२३ से २३५ तक मानी गयी हैं।

उपनिषद् प्रधानतया गद्य ग्रंथ हैं, पर इनमें कहीं कहीं पद्य भी पाया जाता है। कुछ उपनिषद् पद्यमय भी हैं। प्राचीन उपनिषदोंका समय ब्राह्मण ग्रन्थोंका समकालीन हो सकता है। इनमेंसे कितनों-हीमें गाथायें भी मिलती हैं, कहीं कहीं गुरु-शिष्य सम्वाद भी है। मानो गुरु शिष्यको उपदेश दे रहे हैं। कठोनिषद्में यमने नचिकेताको बहुतसे ज्ञानोपदेश दिये हैं। इसमें नचिकेताको जीवात्मा और परमात्माका अन्तर बताया गया है। बृहदारण्यकमें सृष्टिक्रम बताया गया है। छान्दोग्य उपनिषद्में उद्दालकने अपने पुत्र श्वेत-केतुको ज्ञान सिखाया है। श्वेताश्वेतरोपनिषत्में सांख्याचार्य कपिल ऋषिका नाम आ गया है। शङ्कराचार्यने इसकी बहुत बड़ी टीका की है। जिसमें उन्होंने सांख्य और वेदान्तका मतभेद मिटानेकी चेष्टा की है। वेदान्तके तीन प्रधान भेद हैं—अद्वैत, द्वैत और विशि-ष्टाद्वैत। अद्वैतमें ईश्वर, जीव और प्रकृति एक मानी गया है। ये तीनों ही ईश्वरको मानते हैं। पर सांख्यमें द्वैतवाद भीषण रूपसे

चल पड़ा है—वह ईश्वरको असिद्ध ही समझता है। इस विषयपर हम आगे चलकर विचार करेंगे।

जो हो, इसमें सन्देह नहीं, कि उपनिषद्-कर्त्तागण बड़े ही अनुध्यानशील थे। उन्होंने परमार्थ-चिन्तनमें प्रगाढ़ परिश्रम किया था। वे जगतके मूल, और जगतके कारण स्वरूपमें, जो बातें बीच बीचमें कह गये हैं, वह अत्यन्त परिमार्ज्जित बुद्धिके अतिरिक्त अन्य किसीके मुँहसे नहीं निकल सकतीं।

उपनिषदोंके मतसे परमात्माकी उपासना, अथवा उसका ज्ञान प्राप्त करनेसे ही मुक्ति होती है। और कोई उपाय नहीं है। परमात्माका श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे ही उनकी उपासना या ज्ञानानुशीलन होता है।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः

वृहदारण्यकोपनिषत् २।४।५

उपनिषद्-सम्बन्धमें साधारण बातें, बताकर अब हम दर्शन कालपर आते हैं।

दर्शन शास्त्र।

परमार्थ तत्वका अनुसन्धान ही भारतवर्षीय दर्शन-शास्त्रका प्रधान उद्देश्य है। जगतका कारण-निरूपण, मनुष्यकी मुक्ति या पारलौकिक सद्गति-साधनका उपाय खोज निकालनेके लिये ही दर्शनोंकी रचना हुई है।

दर्शन छः हैं। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व-मीमांसा और उत्तर मीमाँसा। इनके कर्त्ता क्रमसे कपिल, पतञ्जलि, गोतम, कणाद, जैमिनि और व्यास हैं।

सांख्य दर्शन—महर्षि कपिल ईश्वरको असिद्ध मानते हैं :—

ईश्वरासिद्धेः।

सांख्यप्रवचन ९२ सूत्र।

महर्षि कपिलने प्रकृति और पुरुष नामके दो नित्य पदार्थ स्वीकार किये हैं। प्रकृति अचेतन स्वरूप अर्थात् जड़ है। इसीके परिणाम अथवा विकार द्वारा, समस्त विश्व संसारकी उत्पत्ति हुई है। यह प्रकृति आदि कारण है। इसका और कारण नहीं है। महर्षि कपिलने इसे अमूलामूल माना है।

मूले मूलाभावादमूलम्।

सांख्य-प्रवचन १।६७ सूत्र।

मूल अर्थात् प्रकृतिका मूल नहीं हैं। अतः प्रकृति मूल-शून्य है।

परन्तु परिणाम स्वरूप उसी आदि कारणसे क्रमशः कार्य-परम्पराकी उत्पत्ति होती है, इसीलिये, कपिल ऋषिने उसीका नाम प्रकृति रखा है। साथ ही जगतके समस्त पदार्थोंकी तीन अवस्थायें—उत्तम, मध्यम और अधम—देखकर उन्होंने भी सत्व, रज, तम, तीन गुण स्वीकार किये हैं। पूर्वोक्त मूल

प्रकृति इन तीनोंकी साम्यावस्था कही गयी हैं। इस तीनोंके गुण, कार्य और परस्परके सम्बन्धको लेकर सांख्य शास्त्रमें बड़ा तर्क वितर्क हुआ है।

सांख्यकारने पुरुषको चेतन-स्वरूप, परन्तु सुख दुःख रहित माना हैं। यह विकार शून्य है, अकर्त्ता हैं। समस्त संसार प्रकृतिका ही काम है। प्रकृति और पुरुष परस्पर सापेक्ष हैं। जड़ होनेपर भी पुरुषके संयोगसे यह प्रकृति संसार-कार्य्य सम्पादित करती है।

सांख्य शास्त्रकारने प्रकृति-पुरुष प्रभृति पच्चीस पदार्थ स्वीकार कर उनका नाम तत्व रखा है। वे पच्चीस तत्व ये हैं—प्रकृति, पुरुष, महत्, अहङ्कार, मन और पञ्चमहाभूत, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय और पञ्च तन्मात्रा।

महाभूत	ज्ञानेन्द्रिय	कर्म्मेन्द्रिय	तन्मात्रा
पृथ्वी	आँख	हाथ	रूप
जल	कान	पैर	रस
वायु	नाक	मुँह	गन्ध
अग्नि	रसना	पायु	स्पर्श
आकाश	त्वक्	उपस्थ	शब्द

इस दर्शनमें इन पच्चीस तत्वोंकी संख्या है, इसलिये, यह सांख्य दर्शन कहलाता है।

सांख्य पण्डितोंने संसारके यावत् कष्टोंको तीन भागोंमें

विभक्त किया है। अध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। ज्वरादि रोग, प्रियवस्तुका वियोग और अप्रियकी प्राप्ति और काम क्रोध लोभादि द्वारा जिन दुःखोंकी उत्पत्ति होती है, उसका नाम अध्यात्मिक दुःख है। अग्नि, वायु, जलादि स्थावर और पशु, पक्षी, कीटादि अस्थावर वस्तुओंसे जो दुर्घटना हों, उनको आधिभौतिक और शीत, ऊष्ण, वात, वर्षा, वज्रपातादिसे जो दुःख उत्पन्न हो, उसे आधिदैविक दुःख कहते हैं। सांख्य इस त्रितापसे जीवको मुक्त करता है।

दुःखत्रयाभिघाता जिज्ञासा।

सांख्यकारिका। १।

त्रिविध दुःखोंसे छूटनेके उपायकी खोज—

इस दर्शनके मतसे धर्म्म दो प्रकारके हैं—अभ्युदय हेतु और निःश्रेयस हेतु।

यज्ञादिके अनुष्ठान द्वारा जो धर्म्म-साधन होता है, उसको अभ्युदयहेतु कहते हैं। इससे ऐहिक और पारत्रिक सुख सम्पन्न होता है। और अष्टाङ्ग योगके अनुष्ठान द्वारा जिस धर्मकी उत्पत्ति होती है, उसको निःश्रेयस हेतु कहते हैं। इससे तत्वज्ञान उत्पन्न होकर मुक्ति प्राप्त होती है।

पातञ्जल दर्शन—पतञ्जलि मुनिने इस दर्शनकी रचना की है, इसलिये इसका नाम पातञ्जल दर्शन पड़ा है।

पतञ्जलिने भी कपिलके समान ही पचीस मूल तत्व स्वीकार

किये हैं। विशेषता यही है, कि महर्षि कपिलने ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है, पर पतञ्जलिने सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान परमेश्वरका अस्तित्व स्वीकार करते हुए, मनुष्योंके परित्राणके लिये योग-शास्त्रका प्रवर्त्तन किया है। इसीलिये पातञ्जल दर्शन सेश्वर और कपिल दर्शन निरीश्वर सांख्य दर्शन कहलाता है। पतञ्जलिने ईश्वर समेत २६ तत्व माने हैं। उनका कथन है, कि ईश्वर अपनी इच्छासे शरीर धारण और जगत निर्म्माण करते हैं।

पतञ्जलिके मतसे भी तत्व-ज्ञान द्वारा ही मुक्ति होती है। इसीलिये इन्होंने अष्टाङ्ग योग द्वारा तत्व-ज्ञान प्राप्त करनेका पथ बताया है।

वैशेषिक दर्शन—प्रणेता कणाद ऋषि हैं। इन्होंने विशेष नामका एक और भी पदार्थ माना है, इसलिये इसका नाम वैशेषिक दर्शन पड़ा है। महर्षि कपिलने प्रकृति और पुरुषको जिस तरह नित्य स्वीकार किया है, कणादने उसी तरह पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक, आत्मा, मन—इन नौ पदार्थोंको द्रव्य माना है। वैशेषिक शास्त्रके मतसे ये नौ पदार्थ नित्य हैं।

परन्तु उनमें जल, वायु मृत्तिका, तेज—इन चार पदार्थोंका परमाणु भर ही नित्य हैं और इन परमाणुओंसे बने सभी पदार्थ अनित्य हैं।

इन्होंने समस्त गोचर जड़ पदार्थोंकी उत्पत्ति परमाणुओंके संयोगसे ही मानी है। अन्यान्य दर्शनोंकी अपेक्षा महर्षि कणादकी प्रवृत्ति जड़ पदार्थोंका ज्ञानानुशीलनमें ही विशेष दिखाई देती है।

उन्होंने परमाणुवाद संस्थापन कर, इस विषयका सूत्रपात किया। परन्तु इस पुष्पका बीज यहाँ वपन होनेपर भी यह वृक्ष यहाँ पल्लवित न हो सका। पल्लवित हुआ, सात समुद्र पार जाकर। बेकन, कण्ट, हम्बोल्टरकी जन्म-भूमिमें।

यद्यपि वैशेषिक दर्शनमें सचेतन अचेतन नाना प्रकारके पदार्थोंका विषय ही अधिक आया है, तथापि धर्म्म निरूपण और मुक्ति साधनका उपाय निर्द्धारित करना ही, इस शास्त्रका प्रधान उद्देश्य है।

इनके मतसे शरीर और मनका विच्छेद ही मोक्ष है :—

अयमेव शरीरमनोविभागः।

६ अ० २ आ० १६ वें सूत्रका उपस्कार

इस सम्बन्धमें कणादने लिखा है—आत्मकर्म सम्पन्न होनेसे ही मुक्ति होती है।—ऐसा ही कहा गया है।

आत्मकर्म्मसु मोक्षो व्याख्यातः।

वैशेषिक दर्शन। ६ अ० २ आ० १६ सूत्र।

टीकाकारोंने श्रवण, मनन, योगाभ्यास, निदिध्यासन, आसन, प्राणायाम, शम, दम, आत्म-साक्षात्कार, पूर्वोत्पन्न धर्म्माधर्म्म ज्ञान आदि कितने ही विषय आत्म-कर्म्म सम्बन्धी कहे हैं। वैशेषिक मतानुयायियोंका कथन है, कि इसी तरह श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि सम्पन्न होने पर, तत्व-ज्ञान उत्पन्न होता है और यह देह ही आत्मा नहीं है, इसका पूरा पूरा ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। यह ज्ञान उत्पन्न हो जानेपर राग, द्वेष नष्ट हो जाता है। राग-द्वेष नष्ट हो जानेपर धर्म्मा-धर्मकी प्रवृत्ति नहीं होती। धर्म्मा-धर्म्मकी प्रवृ-

त्तियाँ जब नष्ट हो जाती हैं, तब पुनर्जन्म नहीं होता और कोई दुःख भी नहीं रहता। इस तरह आत्यन्तिक दुःखका विनाश ही मोक्ष है।

न्याय दर्शन—इसके प्रणेता महर्षि गोतम है। उनका एक नाम अक्षपाद भी है। इसीलिये, यह गोतम-दर्शन या अक्षपाद दर्शन भी कहलाता है।

न्याय दर्शनमें भी वैशेषिकोंकी भाँति परमाणुवाद स्वीकार किया गया है। एक विशेष पदार्थके अतिरिक्त अन्यान्य समस्त पदार्थ भी उन्होंने अङ्गीकार किये हैं और मृत्तिकादि चार जड़ पदार्थों के परमाणु और अवशिष्ट समस्त द्रव्य-पदार्थों को उन्होंने नित्य मान लिया है। परन्तु न्याय शास्त्रमें सोलह पदार्थ और भी माने गये हैं। पदार्थ शब्दसे जल, वायु, प्रभृति जड़ पदार्थ न समझना चाहिये। न्याय दर्शन प्रकृत तर्क शास्त्र है। इसमें तर्क अर्थात् विचार प्रणाली अच्छी तरह प्रदर्शन की गयी है। इस विचार प्रणालीका प्रदर्शन ही प्रकृत न्याय दर्शन है। प्रमाण प्रमेय, सिद्धान्त प्रभृति इसी विचार प्रणालीके सोलह अङ्ग हैं। जिसके द्वारा किसी विषयका निर्णय किया जाये, उसे प्रमाण कहते हैं, जैसे प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। इनमें भी प्रत्यक्ष और अनुमान ही बलवान प्रमाण हैं। अनुमान खण्ड न्याय दर्शनका प्रधान अंश है। इसकी विचार प्रणालीने इस दर्शनका गौरव बहुत कुछ बढ़ा दिया है। अनुमानके पाँच अङ्ग हैं। उनका नाम प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन है।

किसी जानी हुई वस्तुका सादृश्य दिखनेवाले पदार्थको उप-

मान कहते हैं और वेदादि आप्त वाक्यको शब्द कहते हैं। प्रमाण द्वारा जिन विषयोंका निश्चित ज्ञान हो जाये, उसको प्रमेय कहते हैं।

आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनः प्रवृत्तिदोष प्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्।

न्याय सूत्र १ अ० ९ सूत्र।

आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, इन्द्रिय-विषय, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्य भाव (वारम्बारका जन्म मरण) फल, दुःख, अपवर्ग ये ही प्रमेय है।

अनिश्चित विषयको निश्चित करनेको सिद्धान्त कहते हैं। इसी तरह संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, वाद, वितण्डा, छल प्रभृति और भी तेरह पदार्थ विचारके अङ्ग माने गये हैं।

मोक्षाभिलाषी मनुष्योंको इन सोलह पदार्थों का विषय अवश्य जान लेना चाहिये। इनके ज्ञानसे यह निःसंशय मालूम हो जाता है, कि शरीर ही आत्मा नहीं है और यह ज्ञान हो जानेपर मुक्ति होती है।

इस दर्शनके मतसे भी तत्वज्ञान ही मुक्तिका कारण है, परन्तु इस शास्त्रमें शरीर आत्मा नहीं है, इस ज्ञानको ही तत्वज्ञान बतलाया है।

परन्तु इसका उपाय क्या बताया है?—

तदर्थं यमनियमाभ्यासात्मसंस्कारोयोगो- च्चात्म विध्युपायैः।

न्याय सूत्र ४ अ० १११ सूत्र।

अर्थात् समाधि-साधनार्थ यम-नियमादि योगानुष्ठान और आत्म साक्षात्कार विधायक वाक्य द्वारा मुक्ति प्राप्त करनेकी क्षमता उत्पन्न होती है।

मीमांसा-दर्शन—महर्षि जैमिनि इसके प्रणेता हैं। जिस तरह तर्क प्रणालीकी उद्भावना करना न्याय दर्शनका उद्देश्य है, उसी तरह श्रुति-विशेषका अर्थ समर्थन और स्थल विशेषमें श्रुति और स्मृतिका विरोध हटाकर धर्म्म संस्थापन करना ही, इस दर्शनका प्रधान विषय है। इसी विषयको अधिकरण कहते हैं। इस दर्शनमें ऐसे कितने ही अधिकरण हैं। इस दर्शनमें कर्म्म-काण्ड विषयक श्रुतिका ही विशेष बाहुल्य, विचार और सिद्धान्त निकाला गया है। इसी कारणसे इसको कर्म्म-मीमांसा भी कहते हैं। इसके मतसे स्वर्ग भोग ही मनुष्यका परम पुरुषार्थ है। वेदोक्त यज्ञादि कर्म करनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है। विधानानुसार ये काम करनेसे अवश्य ही फल होता है।

वेदान्त-दर्शन—अवशिष्ट प्रधान दर्शनका नाम वेदान्त दर्शन है। मीमांसा जिस तरह कर्म-मीमांसाका ग्रन्थ है, वेदान्त उसी तरह ब्रह्म मीमांसाका ग्रन्थ है।

जिससे जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है, वे ही ब्रह्म हैं:—

जन्माद्यस्य यतः।

वेदान्त सूत्र। १ अ० १ आ० २ सूत्र।

वेदान्तकी भाषामें इसे ब्रह्मका तटस्थ लक्षण कहते हैं। वे

सत्यस्वरूप, ज्ञान-स्वरूप और अनन्त-स्वरूप हैं। वे अद्वितीय हैं—अर्थात् उनसे रहित कोई वस्तु नहीं है। वे ही सत्य हैं, और अन्य सब कुछ मिथ्या है। वेदान्तके मतसे परब्रह्म, निर्गुण, निराकार, निर्विकार और चिन्मय स्वरूप है। जीव वास्तविक परब्रह्मके सिवा और कुछ नहीं है। इन दोनोंके, अर्थात् आत्मा और परमात्माके अभेद ज्ञानकी साधनाकर, आनन्द प्राप्त करना ही इस दर्शनकी रचनाका उद्देश्य है। "अयमात्मा ब्रह्म" अर्थात यह जीवात्मा ही ब्रह्म है, "अहं ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूं, "तत्वमसि" तुम वही ब्रह्म हो—इस तरह जीव-ब्रह्मका अभेद बतलानेवाले कितने ही वाक्य उपनिषदमें विद्यमान हैं। इन वाक्योंको महावाक्य कहते हैं। इन महावाक्योंके अर्थको समझकर जीव और ब्रह्मका अभेद समझ लेना ही तत्वज्ञान कहलाता है। इस ज्ञानके उत्पन्न होनेपर फिर जीव और ब्रह्ममें भेद नहीं रहता। "अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूं, यह दृढ़ निश्चय होकर, केवल ब्रह्ममें ही जीव लीन हो जाता है। इसी अवस्थाके उपस्थित होनेपर मुक्ति प्राप्त होती है। इसीको निर्वाण मुक्ति कहते हैं।

पहले ही कहा जा चुका है, कि द्वैत, विशिष्टाद्वैत, केवलाद्वैत प्रभृति इसके कई भेद हैं। साथ ही इसमें मायावाद एक ऐसा विषय सन्निहित है, जिसपर बहुत कुछ विचार किया गया है। जिस तरह रात्रिके समय रस्सी देखकर सर्पका भ्रम हो जाता है, उसी तरह परब्रह्ममें जगद्-भ्रम होता है। इसीका नाम मायावाद है। वेदमें अर्थात् संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थोंमें यद्यपि इस

मतका कोई निदर्शन नहीं प्राप्त होता, तथापि उपनिषद् भाग ही वेदान्त दर्शनका प्रधान प्रमाण हैं। उसमें ही परब्रह्मको जगतका उपादान कारण बताया गया है, परन्तु मायावादका स्पष्ट उल्लेख उनमें भी नहीं है। अस्तु, इस विषयको अधिक न बढ़ाकर, अब हम यह दिखलाया चाहते हैं, कि इस दर्शनके मतसे मुक्ति प्राप्त करनेके उपाय क्या है। इसका मत है—

शमदमाद्युपेतः स्यात्तथापि तु तद्विधेस्तदङ्ग-तया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात्।

वेदान्त सूत्र। ३ अ०। ४ पा० २७ सू०।

अर्थात ज्ञान-साधनार्थ शम, दम आदिका पालन करे, क्योंकि ये भी ज्ञान-साधनके अङ्ग-स्वरूप हैं।

अन्तरिन्द्रिय अर्थात अन्तःकरणके दमनको शम, वहिरिन्द्रियके दमनको दम, ज्ञानाभ्यासके समय कर्म्म त्याग करनेको उपरति, शीत, ऊष्ण आदिके सहनको तितिक्षा, और आलस्य और प्रमादको त्यागकर, एकाग्र मनसे परब्रह्मकी चिन्तना करना ही समाधि कहलाता है। ऐसी साधना हो जानेपर मुक्ति प्राप्त होती हैं।

इन षट्-दर्शनोंके अतिरिक्त और भी कितने ही दर्शन विद्यमान है। एक चर्वाक दर्शन भी है। इसमें न तो ईश्वरको माना गया है, न परलोक स्वीकार किया गया है।—चार्वाकके मतसे स्वर्ग अपवर्ग कुछ नहीं है, परलोकमें आत्मा भी नहीं रहती। ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्य्यादि आश्रम प्रभृतिकी क्रियायें भी फलदायक नहीं होतीं। इसने यज्ञ, वेद, त्रिदण्ड, भस्म-लेपन प्रभृति विधानोंको अबोध कापुरुषोंके जीवन धारणका उपाय कहा है।

वैदिक कालकी उपासना ।

पहले ही कह चुके हैं, कि हमारे प्राचीन, धार्मिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक सभी इतिहासोंका आधार वेद है। अतः सबसे प्राचीन धार्म्मिक अवस्थाका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये सबसे पहले हमें ऋग्वेद पर ही दृष्टि डालनी पड़ती है और इस बातपर विचार करना पड़ता है, कि ऋग्वेदके मन्त्रोंमें, किस रूपमें; किस कार्य-वश और किन किन स्थानोंमें, किन किन देवताओंकी स्तुति की गयी है। इसके अतिरिक्त, उस समयकी धार्म्मिक अवस्थाका ज्ञान प्राप्त करनेका और कोई साधन नहीं है। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें अग्नि, वायु, मरुत, आश्विन, इन्द्र, विश्वदेवता, बृहस्पति, वरुण, रुद्र, उषस, सूर्य, चन्द्र (सोम) प्रभृति देवताओंके नाम आये हैं और आकाश तथा पृथ्वीकी भी स्तुति की गयी है।

इदं द्यावापृथवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोप ब्रुवेवाम् ।

ऋग्वेद संहिता । १ म० । १८५ सू० । ११ ऋक्

हे पिता द्यौ ! हे माता पृथ्वी ! इस यज्ञमें हमलोग जो स्तव करते हैं, वह सत्य अर्थात् सफल हो ।

तन्नोवातो मयोभुवातु भेषजं तन्माता पृथ्वी तत्पिता द्यौः ।

ऋग्वेद संहिता १ म० । ८९ सू० । ४ ऋक् ।

वायु हमें वह सुखप्रद औषध प्राप्त करा दे। माता पृथ्वी और पिता द्यौ, वे ही सुखप्रद औषध हमें प्राप्त करायें।

इसी तरह अर्य्यमन, सरस्वती, सरस्वान, त्वस्व, दक्षिणा, इन्द्राणि, वरुणानी, आग्नेयी, आदित्य, ऋभु, अदिति, सिन्धु, वाक्, काल, साध्यगण, गन्धर्व, भग, जल, ऊखल और मुशल मातरिश्वम् और तृत् प्रभृतिका नाम भी अमुख्य रूपसे आया है।

वेद संहितामें वरुण और मित्र—ये तीनों देवता वित्राता वरुणके नामसे आये हैं, कितने ही स्थानोंपर इनकी स्तुति की गयी है। इन बातोंपर ध्यान देनेसे मालूम होता है, कि पुराकालीन आर्य्यगण गगन, गगनस्थ वस्तु, और गगनगत कार्य तथा पृथ्वीके ही विशेष उपासक थे और इन अद्भुत पदार्थोंको देखकर भक्ति-रससे उनका हृदय परिपूर्ण हो जाता था। ऐसा होना सम्भव भी है, क्योंकि उस समयतक विश्वयन्त्रका मर्म समझने योग्य उनकी बुद्धि न हुई थी। उस समय जिन बहु-शक्ति सम्पन्न तेजोमय वस्तुका असामान्य प्रभाव और उपकार करनेका गुण, वे देखते, उनका ही देवत्व और प्रधानत्व वे स्वीकार कर लेते थे। पूर्व कालीन पारसियोंकी भी यही दशा थी। वे भी पहाड़ोंपर चढ़कर, अग्नि, वायु, सूर्य और पृथ्वीके समान ही रूप-गुण विशिष्ट नभोमण्डल रूपी एक अन्य देवताकी स्तुति करते और उपासना करते थे।*

* Herodotus, Alio. 131.

अति प्राचीन ग्रीकवासी भी सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र एवं भूलोक और स्वर्गलोककी उपासनामें प्रवृत्त थे।+

पूर्वकालीन आर्यगण भी यदि उसी तरह नक्षत्रोंकी स्तुति करते हों, तो कौनसी आश्चर्य्यकी बात है।

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें इन्द्रदेवका प्राधान्य है। इन्द्रके बाद अग्निका दर्जा है। अग्नि, होतार बसीठी, देवताओंको यज्ञ ोंमें उपस्थिति करनेवाला, पुरोहित, भविष्यवक्ता, परम फलप्रद, रक्षक, पवित्र करनेवाला, प्रेतों और जादूगरोंको भस्म करनेवाला माना गया है। साथ ही पुत्र देनेवाला, दस्युओंको पराजित करनेवाला भी माना गया है। इसकी उत्पत्ति आकाश और जलसे है। दो माताओंका पुत्र तथा कहीं कहीं तनूनपात अर्थात् स्वयम् उत्पन्न होनेवाला भी कहा गया है। भृगुने अग्निको मनुष्योंमें स्थिर किया। मनुने पुरोहित बनाया। इनकी स्त्रियोंका नाम होत्रा, मारुति, वहतृ और धिष्णा हैं। धिष्णा वाग्देवी हैं। स्वाहा नामसे अग्निमें यज्ञ होता है। अग्नि एक रूपसे यज्ञोंमें सहायक बनता है, दूसरे रूपसे, सौ नेत्रोंसे जङ्गलोंको भस्मकर, भूमिको मनुष्योंके वास योग्य बनाता है।

वायु—मरुत। ये रुद्र पुत्र हैं...परम तेजस्वी, बलवान, मेघोंको भेजनेवाले, धन देनेवाले और राक्षसोंके संहारक हैं।

आश्विन—इनके विषयमें मतभेद है। इन्हें कोई आकाश कोई

+ Mackays Progress of Intellect London :1850 vol I No. 122.

पृथ्वी, दिन, रात, सूर्य, चन्द्र और दो राजा कहते हैं। ये उषसके पहले रवाना होकर दिन रातमें तीन चक्कर मारते हैं। इनके रथमें तीन पहिये हैं। सूर्य्याकी पुत्री इनकी स्त्री है। ये परम सुन्दर, दरिद्र-नाशक, सु-वैद्य हैं। इन्होंने वन्ध्या गायसे दूध निकाला, अन्धे-लङ्गड़ेको अच्छा किया। विस्पलाकी युद्धमें टूटी टाँग अच्छी की। इसी तरह अनेक उपकार किये और दस्युओंको भी हराया।

इन्द्र—ये वेदके सर्व प्रधान देवता हैं। इन्होंने ६६ वृत्तोंको मारा। इनके अतिरिक्त सुश्न, बल, प्रिसु, सम्बर, अहि, रौहिन, कुयव, व्यंस, कुयवाच, अर्बुद, नमुचि, करञ्ज, परनय और वर्गद्रको मारा। वृत्त, सुश्न आदिने जल रोक रखा था, सो खोल दिया। ये अजित-जेता और असीम बलधारी हैं; इन्होंने ही पृथ्वीको स्थिरकर सूर्याको ऊपर उठाया। ये सोमरससे बल प्राप्त करने-वाले हैं।

विश्वेदेवेस—ये दश हैं। इनमें सर्पोंकी भाँति वेष बदलनेकी शक्ति कही गयी है।

ऋभु—इन्होंने इन्द्रकी सहायता की। इसीलिये सवितार द्वारा अमर कर दिये गये। इन्होंने अपने माता पिता पृथ्वी और आकाशको फिरसे नवयुवक बनाया।

पूषन—ये बारह आदित्योंमेंसे एक हैं। ये लोगोंको ग्रह-संकटसे बचाते है।

रुद्र—अत्यन्त बली, बुद्धिमान, उदार, लक्ष ओषधियाँ और मन्त्रोंके स्वामी हैं, घोड़े, मेढ़ों, भेड़ियों, गायोंके रक्षक हैं।

उषस—यह आकाशकी पुत्री, पुष्ट करनेवाली है।

सूर्य—प्रकाशक, मित्र, वरुण और अग्निके नेत्र-स्वरूप हैं। इनके रथमें सात घोड़े जुते हैं।

सोम—(चन्द्रमा) परम बुद्धिमान, बल देनेवाले, पवित्र वीरोंके साथी, रोग-शान्तिकारक, पौधों, ओषधियों, गाय आदि तथा जलके उत्पन्न करनेवाले और वृत्त विनाशक हैं।

विष्णु—पृथ्वी, आकाश तथा देह-धारियोंके पोषक, रक्षक और दयार्द्र चित्त हैं।

पर्वत—यह नाम इन्द्रके साथ आया है। आर्य्योंके लिये इन्होंने कितने ही युद्ध किये हैं।

सविता—इनका भी वर्णन सूर्य जैसा ही है पर कहीं कहीं ये पृथक भी माने गये हैं। इनके हाथ सोनेके बने हैं। ये उत्पादक, जीवनदायक, बहुमूल्य वस्तुओंके स्वामी हैं।

भग—ये धन देनेवाले देवता हैं।

त्वष्टार—ये देवताओंके बढ़ई हैं।

तृत—का वर्णन इन्द्र, वायु, मरुतके साथ होता है।

ऋभु—ऋभुका इन्द्र, वायु, मरुत और त्वष्टा आदिके साथ सोमरस पीनेके लिये आह्वान किया जाता है!

ऋग्वेदके इस मण्डलपर ध्यान देनेसे मालूम होता है; कि उस समय जातिभेद न था, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र प्रभृतिका नाम उनमें नहीं आया है। केवल एक मन्त्रमें बृहस्पति ब्रह्मणस्पति कहलाये हैं।

ऋग्वेदके दूसरे मण्डलसे धार्मिक अवस्थाका विशेष ज्ञान नहीं होता। तीसरेमें इन्द्रकी प्रशंसा है, इसमें उनार और अहि नामक दोनों राक्षसोंका वध दिखाया गया है। चौथे मण्डलमें भी विजय-वार्ता ही विशेष हैं, पाँचवेंमें अग्निकी प्रशंसा है, इन्द्रका नमुचिको मारना, पृथ्वीका घूमना प्रभृति वर्णन है। छठे मण्डलमें विशेष-तया अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवेस, पूषन, उषस् और मरुतके वर्णन हैं। गायोंका भी वर्णन है। पर पूजनात्मक नहीं। इस मण्डलमें गङ्गातटका वर्णन आया है, तथा सरस्वती और पञ्जाबकी अन्य नदियोंकी भी बातें आयी हैं। सातवें मण्डलमें—आर्यों की पाँच शाखाओंका वर्णन है। आठवें मण्डलमें तेंतीस देवताओंके नाम आये हैं। नवें मण्डलमें प्रायः सब ऋचायें सोमपवमानके ही विषयमें हैं। गायत्रीका बड़ा वर्णन है। दसवें मण्डलमें अग्नि, यम, पितर, जल, गय, विश्वेदेव, बृहस्पति, विश्वकर्म्मा, सूर्य्या आदिकी प्रधानता है। इसमें चिता और मृत्युका वर्णन है। इस मण्डलके ६० वें सूक्तसे ईश्वरके मुख, बाहु, जांघ और पैरसे, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रकी उत्पत्ति कही गयी है। इस मंडलमें, यज्ञ और स्वर्गका भी वर्णन आया है। पितरोंके सम्बन्धमें भी कुछ बातें हैं और लिखा है, कि वे यमलोकमें रहते हैं।

यजुर्वेद—पहलेही कह चुके हैं, कि यजुर्वेदमें याज्ञिक मन्त्रोंका विशेष प्रयोग है। साथ ही जाति-भेद भी उन्नत अवस्थापर पहुँचा दिखाई देता है। इसके प्रथम और द्वितीय अध्यायमें नवेन्दु और पूर्णेन्दु नामक यज्ञोंका वर्णन और तृतीयमें

अग्निहोत्रका वृत्तान्त मिलता है। ४ से ८ तक सोमयज्ञके विधान और ९ तथा दसवें आध्यायमें वाजिपेय और राजसूय यज्ञोंका कथन है। ११ वें से १८ वें अध्यायतक वेदी आदि बनानेके विधान है। १६ वें शतरुद्रीय और १९ वेंसे २१ वें अध्याय तक सौत्रामणि यज्ञका कथन है। २२ से २५ वें तक अश्वमेध, २६ से २९ तक चान्द्रयज्ञ और ३० वें तथा ३१ वेंमें नरमेध यज्ञका विषय है परन्तु शतपथ ब्राह्मणमें लिखा है, कि नरमेधमें मनुष्यकी नहीं, बल्कि पुतला बनाकर उसकी बलि दी जाती थी। इसी तरह ३२ वें से ३४ वें अध्यातक सर्वमेध यज्ञ, ३५ वें में पितृ-यज्ञ, ३६ वें में दीर्घ जीवन प्राप्त करनेकी प्रार्थनायें और ३७ से ३९ वें तक प्रवर्ग-विधान है। ४० वें अध्यायमें ईश्वरका वर्णन है।

इन बातोंसे मालूम होता है, कि यजुर्वेदके समयमें यज्ञोंकी बड़ी प्रबलता थी और यज्ञ करना धर्म्मका विशेष अङ्ग माना जाता था। विष्णुका वर्णन इसमें विशेष आया है। रुद्रकी महिमा भी बढ़ गयी है तथा शिव, महादेव प्रभृति उनके नामोंका उल्लेख भी मिलता है। इसमें चातुर्वण्यका जिक्र अच्छी तरह आ गया है। एक जगह कहा गया है, कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र इन चारोंको ज्योति प्रदान की जाये।

साम-वेद—इसमें विशेषकर सोम पवमानका वृत्तान्त मिलता है। इन्द्र, अग्नि, उषा, आश्विन प्रभृतिके वर्णन हैं, विश्व-कर्मा, स्कन्द, प्रजापति और पुरुषके नामसे ईश्वरका वर्णन आया है। इसमें मानव-जीवनकी अवधि सौ वर्षोंकी बतायी गयी है।

अथर्व-वेद—इसपर विचार करनेसे मालूम होता है, कि उस समय हिन्दू समाज ऋग्वेदके कालसे बहुत कुछ आगे बढ़ गया था। इसमें झाड़ने फूकनेके मन्त्र, जूएमें जीतनेके सूक्त आदि हैं। इसमें लड़केका उत्पन्न होना अच्छा माना गया है। इस कालसे ही ब्राह्मणोंकी प्रधानता बढ़नी आरम्भ हो गयी थी। स्वर्गका वर्णन बहुत आया है। राक्षसोंकी मायाका भी वर्णन आया है। गायकी पूजा यहाँ खूब बढ़ी दिखाई देती है। इन्द्रके कार्यों की प्रशंसा इसमें आयी है। इन्द्र द्वारा कृष्ण, नमुचि और शम्बर प्रभृति राक्षसोंके मारे जानेका वर्णन है।

वैदिककालकी सामाजिक अवस्था।

वैदिक समयके देवताओं और उनकी उपासनाका संक्षेप वर्णन हम ऊपर कर आये हैं। अब उस कालकी सामाजिक अवस्थापर कुछ विचार करना भी उचित है।

ऋग्वेदमें जाति-भेदका कथन पुरुष सूक्तमें मिलता है, परन्तु यह नहीं पता लगता, कि यह जन्मज था या कर्म्मज। पर यजुर्वेदमें इसे जन्मज माननेकी ओर विशेष झुकाव था। अथर्व वेदमें ब्राह्मणोंकी महिमा बहुत बढ़ गयी। आर्यों की ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य—ये तीन जातियाँ हुईं और अनार्य्य शूद्र कहलाये। प्रत्येक परिवारका अधिष्ठाता पिता होता था, उसीकी आज्ञा द्वारा पुत्रीका विवाह होता था। पुत्रीका विवाह पिताके घर ही होता था। ऋग्वेदमें ऐसी कन्याओंका भी कथन है, जिन्होंने आजीवन विवाह ही न किया। ऋग्वेदके

कालमें स्त्रियोंका बड़ा सम्मान था। अथर्व-वेदमें स्त्रीको गृह-स्वामिनी कहकर स्त्री, पुत्र और परिवार वालोंसे स्नेहपूर्ण व्यवहार करनेका उपदेश है। सास ससुरकी सेवाका भाव भी आया है। उन्हें वीर पुत्र उत्पन्न करनेकी भी आज्ञा दी गयी है। इन बातोंपर ध्यान देनेसे मालूम होता है, कि उस समय सामाजिक श्रृंखला उन्नत हो चली थी! ब्रह्मचर्य पालनपर भी विशेष जोर दिया गया है और इसीलिये तैत्तरीय उपनिषद्में भरद्वाजके तीन जन्मतक ब्रह्मचर्य पालनकी कथा कही गयी है।

वैदिक कालमें सभ्यता भी बढ़ी दिखाई देती है। उस समयके आर्य नगर निर्म्माण करना जानते थे (१) भूमि कर्षणकर शस्यादि उत्पन्न करते थे (२) राजत्वपद और राजकीय व्यवस्था संस्थापन कर, राज्य-शासन करते थे (३) शस्त्र, कवच और सोनेके जेवर भी पहनते थे (४) और रथा-रोहण, (५) कपड़े बुनना और सीना (६) भी जानते थे। धन (७) स्वर्ण-कोष्ठ (८) ऋण और अधमर्ण (९) बुद्धि-प्रयोग (१०) समुद्रयात्रा जहाज

(१) ऋग स०—१।११२।१०।४।२६।३॥
(२) ,, ,, १।२३।१५॥
(३) ,, ,, १।५३।८।६।१०॥१॥१७३।१०
(४) ,, ,, १।३११।१५
(५) ,, ,, १।२५।३॥२।७२।४॥
(६) ,, ,, ।१।३११।१५॥२।३२।४॥
(७) ,, ,, ।२।२७।१७।२।२८।११॥
(८) ,, ,, ।६।४७।२२॥
(९) ,, ,, ।६।६११।१॥
(१०) ,, ,, ३।५३।१४॥

(११) पथ और पान्थ-शाला (१२) प्रभृतिका उनमें प्रचार था। इनके अतिरिक्त मलमासादि निरूपण प्रभृति विषयोंका उल्लेख संहिता-कालके हिन्दुओंमें पाया जाता है। उस कालकी कितनी ही अति विदुषी रमणियोंका जिक्र आया है। यहाँ तक कि अत्रि-वंशीय विश्वावारा नाम्नी एक रमणीके विषयमें कहा गया है, कि उसने ऋग्वेदके पाँचवें मण्डलके अन्तर्गत एक सूक्तकी रचना की थी। उस समय स्त्री-शिक्षाका विरोध न उत्पन्न हुआ था। युद्धमें मर कर स्वर्ग जानेकी बात वेदोंमें भी पायी जाती है। ऋग्वेदसे लेकर अथर्व-वेद कालतक गायोंकी महिमा किस तरह बढ़ती गयी है, उसका दिग्दर्शन हम ऊपर करा आये हैं, एक बात और भी ध्यान देनेसे मालूम होती है। आर्योंसे अनार्यों का मुख्य भेद वर्णके कारण हुआ और यही जाति भेदकी जड़ बन गया। आर्यों की कई शाखाओंका वर्णन भी मिलता है। राजा ययातिके पाँचों पुत्र यदु, तर्वसु, अनु, द्रह्यु और पुरुके नामोंपर आर्यों की पाँच शाखाओंका जिक्र वेदोंमें कितने ही स्थानोंमें आया है। इनके अतिरिक्त गांधार, भुजवन्तु, मत्स्य, तृत्सु, भरत, भृगु, उसीनर, चेदि, क्रिवि, अर्थात पाँचाल, कुरु, सृञ्जय, पारावन प्रभृति शाखाओंका भी वर्णन है। अथर्ववेदके कालमें सांसारिक सुखोंकी ओर आर्यों का विशेष ध्यान आक-

---

(११) ऋग स०—१।११६।३

(१२) ,, ,, १।११६।६

षित होने लगा था। परलोकमें भी उन्हीं सुखोंकी वे कल्पना कर रहे थे। अथर्व वेदमें लिखा है :—

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।

अथ० सं० ४।३४।६।

मनुष्य सदासे ही अपने पुत्र कलत्रोंके प्रति विशेष अनुरागी रहते हैं, वे मृत्यु-शय्यापर सोये हुए भी उनकी ही चिन्ता किया करते हैं—इसीलिये वे परलोकमें भी उनकी संगतिका सुख उपभोग किया चाहते हैं। अथर्व-वेदके एक सूत्रसे भी ऐसा ही आभास टपकता है।

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सञ्जायया सह पुत्रैः स्याम।

अथर्व्व-वेद सं० १२।३।१७

तुम मुझे स्वर्गमें ले जाना, जहाँ मैं स्त्री पुत्रके साथ वास करूँ। इससे मालूम होता है; कि उस समय परलोकपर भी आस्था बढ़ी हुई थी। विवाह-प्रथाका प्रचार था। कितने ही स्थानोंमें जारज सन्तानका भी जिक्र आया है, पर वह हीन कहलायी है। चोरियाँ भी होती थीं, पर विशेष कर गायों की। परन्तु उस समयके आर्यों में स्वच्छन्दता खूब बढ़ी चढ़ी थी। प्रत्येक ऋषि अपना ही निश्चय प्रकट करते थे। वे जंगलोंमें बैठकर केवल विद्या-दान ही न करते थे, बल्कि समय समयपर रण-स्थलमें भी जा

पहुँचते थे। उस समयके आर्य्यों में विवाह, भोजन, व्यापार आदिके सम्बन्धमें पूर्ण स्वतन्त्रता थी। मांसका यज्ञोंमें ही प्रयोग होता था

ब्राह्मणकालके आचार।

ब्राह्मणकालमें हिन्दुओंकी सामाजिक अवस्थाकी और भी वृद्धि हुई। वर्ण-भेद प्रणाली तो उस समय थी ही, उनसे और शूद्र अर्थात् आनार्यों से खूब युद्ध भी होता था। अनार्य भी कम बलवान न थे। उनके किले, उनकी सेना, उनके बलका कितनी ही जगह वर्णन और इन्द्र द्वारा उनका मर्दन भी बताया गया है। यह बातें तो वेदों द्वारा ही प्रमाणित हो रही हैं। ब्राह्मणकालकी सामाजिक अवस्थाका पता उपाख्यानोंसे लगता है। उस समय ब्रह्मविद्यापर आर्य्यों का ध्यान आकर्षित होने लगा था, काशीके राजा अजातशत्रु ने बालाकि नामक ब्राह्मणको ब्रह्मविद्या बतायी थी। षड्विंश ब्राह्मणमें मूर्त्ति पूजाका वृत्तान्त आया है। साथ ही फलित ज्योतिषका भी वृत्तान्त है। ब्राह्मणोंके लिये मलिन वस्तुका भोजन, राजासे घूस, हिंसा, बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए छोटेका विवाह कर लेना, वैश्य या शूद्रोंकी सेवा, आलस्य रत रहना—प्रभृति निषेध किये हैं। कौशीतकी ब्राह्मणसे पता चलता है, कि उत्तरीय भारतमें पठन-पाठन प्रणाली सर्वोत्तम हो

रही थी, गुरु और गुरु-द्वारोंकी परिपाटी स्थिर हो चुकी थी। इनके अतिरिक्त परिषद् नाम्नी कोई संस्था भी थी, जहाँ इन गुरुद्वारोंसे निकले हुए विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। यह इस शिक्षा प्रणाली-का ही प्रताप था, जो उपनिषद् जैसे गूढ़तर और महत्तर विषयोंपर उस कालके विद्वानोंने परिश्रम किया था।

इस उपनिषद् कालमें याज्ञिक अग्नि सर्वत्र जला करती थी, दैनिक हवन होते थे। देव-पूजन, पितृ-पूजन, अतिथि, पूजन-संसार-पूजन तथा गृहदेवका पूजन—प्रभृति पञ्चमहायज्ञ नित्य होते थे। उस समय अतिथि-सत्कार एक प्रकारका धर्म्मका अङ्ग था। उस समय, सत्य बोलने, अपना कर्त्तव्य पालन करने, वेदाध्ययन करने, सत्यसे अविचलित रहने, महत्वकी रक्षा करने, वैदिक शिक्षाका पालन करने और देव तथा पितृ-यज्ञको नियमित रूपसे करने, माताका देवीके समान पूजन करने, पिताको देवताके समान मानने और सुकर्म्मोंपर श्रद्धा रखनेका उपदेश दिया जाता था। उस समय विचार प्रणाली परमोच्च अवस्थापर जा पहुँची थी। इसी समय जीवात्मापर विचार हुआ और इसी समय पुनर्जन्मके भावने भी जड़ पकड़ी! कर्म्म-काण्डके सिद्धान्तोंकी स्थापना भी इसी समय हुई। सारांश यह, कि ब्राह्मणकालके ऋषियोंने अब बाहरी प्रकृतिकृत पदार्थोंपर मुग्ध होना त्यागकर उसके गूढ़तम विषयोंकी खोज करनी आरम्भ की थी।

कर्म उपासना और ज्ञानका पारस्परिक सम्बन्ध ।

हम पहले ही देख चुके, कि संसारके प्रपञ्च जालसे मुक्त होनेके लिये और इस लोकमें सुखमय जीवन व्यतीत कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करनेके लिये प्राचीन ऋषि महर्षियोंने वेद द्वारा (१) कर्म्म (२) उपासना या भक्ति और (३) ज्ञान—ये तीन मार्ग प्रदर्शित किये हैं। श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य कहते हैं, कि

"नान्यः पन्था विद्यते कोऽपि मुक्तौ इत्यादिवै वेदवाक्यं मुमुक्षोः" (शङ्कर दिग्वजय ८६) ज्ञानके अतिरिक्त मुक्तिका कोई मार्ग नहीं है। इत्यादि वेद वाक्योंसे सिद्ध होता है, कि केवल ज्ञान हीसे मोक्ष अर्थात् कदापि नाश न होनेवाले अक्षय सुखका साक्षात अनुभव होता है और कर्म्म आदि उसके अन्य साधन हैं।

"न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोश्नुते" (भगवद्गीता अ ३ श्लो० ४) कर्म किये बिना ज्ञान नहीं होता' वैसे ही ज्ञानके बिना भक्ति भी व्यर्थ है, क्योंकि बिना ज्ञान भजन नहीं होता। ज्ञान बिना सत्कर्म नहीं होते और सत्कर्म बिना भक्ति, निरर्थक है। ऐसा होनेसे इन तीनोंके बीचमें कार्य-कारण रूप सम्बन्ध है। इससे वह एक दूसरेके बिना स्थिर नहीं रह सकते।

इसीलिये इन सब बातोंका विचारकर भगवान मनु महाराजने, कर्मादि करनेकी आज्ञा दी है। श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य यद्यपि ज्ञान काण्डका उपदेश करते थे और उसके पूर्ण पक्षपाती थे, तथापि उन्होंने कहा है, कि कर्म अवश्य करना चाहिये।*

इतना तो सिद्ध हो चुका हैं, कि कर्म, भक्ति और ज्ञानके संयोग बिना मोक्षकी इच्छा करना आकाशका चन्द्रमा पकड़ना है। इसीलिये वेदोंमें इन तीन विषयोंका वर्णन भली भाँति किया गया है। परन्तु अति गहन और विस्तृत वेदोंका ज्ञान प्रत्येक मनुष्यको सरलता पूर्वक नहीं प्राप्त हो सकता। इन कठिनाइयोंके कारण मनुष्य कहीं धर्म विमुख न हो जायँ, इसीलिये मूल वेदके रहस्यको महात्मा पुरुषोंने अनेक बड़े और छोटे ग्रन्थों द्वारा, सरल बनानेका प्रयत्न किया है। इन्हें शास्त्र कहते हैं।

कर्म काण्डको यथार्थ रूपसे स्मरण रखनेके लिये छोटे छोटे परन्तु गुह्यार्थवाले वाक्य सूत्र कहलाते हैं। सूत्र ग्रन्थके दो भाग हैं। गृह्य सूत्र और धर्म सूत्र। आश्वलायन, बौद्धायन, लाटायन, कात्यायन, वैतान, मानव, कौशिक, गोभिल, पारस्कर, आपस्तम्ब, गौतम, विष्णु आदि सूत्र ग्रंथ हैं।

वेदके खास खास मन्त्रोंकी आज्ञापर विवेचन करनेवाले ग्रन्थ स्मृति ग्रन्थके नामसे प्रसिद्ध हैं। मनु, अत्रि, विष्णु, हस्ति, याज्ञवल्क्य, उशनस, अङ्गिरस, यम, आपस्तम्ब, सम्वर्त्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शङ्ख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और

---

* देखो, 'शंकर दिग्विजय'।

वशिष्ठ यह बीस स्मृतियाँ हैं। इनमें खासकर वर्णाश्रम धर्मपर अत्युत्तम विवेचन दृष्टिगोचर होता है।

वेद काल किंवा ज्ञानयुग।

ई० स० पू० १९७२९४७१०१ से ई० स० पू० ३१३७ तक

महाभारत नामक ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थमें सृष्टिके आरम्भ काल अर्थात् महाराजा स्वायम्भूसे लेकर युधिष्ठिर तकके चक्रवर्त्ती नरेशोंकी वंशावली दी गई है। उस वंशावलीके देखनेसे ज्ञात होता है, कि सृष्टिके आरम्भ * अर्थात् ई० स० के पू० १९७२९४७१०१

---

* वर्त्तमान सृष्टिका आरम्भ कब हुआ, इस विषयमें बड़ा मतभेद है। यहूदी और क्रिश्चियन धर्मके बाइबिलमें ई० स०पू०४००४में सृष्टिका आरम्भ बतलाकर नोहके तीन पुत्र हेम, शेम और जेफूट प्रलय होनेके बाद एशिया युरोप और आफ्रिका गये और उनकी सन्तानोंसे वे देश आबाद हुए, ऐसा लिखा है। मेजियन और जरथोस्ती धर्मानुसार उत्पतिकालकी एक मियाद अर्थात ६ के ऊपर २१ शून्य रक्खे जायँ, इतने वर्ष हुए। मुसलमान लोग सृष्टिका उत्पत्ति समय अनादि मानते हैं और बुद्धने तो इस विषयका विचारही करनेसे किनारा खींचा है। भूस्तर शास्त्र वेत्ताओंकी खोजसे पता चलता है कि सृष्टिके आरम्भको कमसे कम २०००० वर्ष हो चुके। जे०एम० केनेडी लिखते हैं—आर्योंकी उत्पत्ति ई०स०पू० ६०००० से कममें कदापि नहीं हुई। इन सब बातोंसे आर्य लोगोंकी गणनाही सत्य

से ई० स० पू० ३१३७ में + जब महाभारतका भीषण युद्ध हुआ तबतक आर्यावर्त्तमें आर्यों का ही सार्वभौम राज्य था । महाभारत-के युद्धमें चीनके भगदत्त, यूरोपके विड़ालाक्ष, अमेरिकाके बभ्रु वाहन, ईरानके शल्य, कन्दहारके शकुनि, इत्यादि राजा महाराज सम्मिलित हुए थे । उस समय पृथ्वीपर छोटे बड़े मिलकर समस्त ४००० राज्य थे और वे सब हस्तिनापुरके × चक्रवर्त्ती महाराजके अधीन थे । इन बातोंसे प्रतीत होता है, कि सर्वत्र आर्यों की ही विजय-पताका फहराती थी । विद्याकलामें भी आर्यावर्त्त सबसे अधिक बढ़ा चढ़ा था । दूर दूरके राजा महाराज भी आर्यावर्त्तमें ही आकर कला कौशल और विद्या प्राप्त करते थे । वैद्यक, रसायन, सङ्गीत,

---

प्रतीत होती है । आर्योंको नित्य प्रति सन्ध्या इत्यादि नित्य कार्योंमें कालगणनाका संकल्प करना पड़ता है । संकल्पके श्लोकार्थके अनुसार सृष्टि और वेदका आरम्भकाल ई०स०पू० १९७२९४७१०१ है ।

+ महाभारतके संग्रामके बाद ३६ वर्षतक राज्यकर युधिष्ठिरने परीक्षि-तको सिंहासनारूढ़ कराया । तबसे उनका शक प्रचलित हुआ था और ३००० शकके बाद विक्रम संवतका आरम्भ हुआ है । इस हिसाबसे (३०४४×३६+५७) यानी ई० स० पू० ३१३७में महाभारतका युद्ध हुआ था ।

× जामलैच्छावधिकान् सर्वान् सभुक्ते रिपुमर्दनः । रत्नाकर समुद्रान्तां श्चातुर्वर्ण्य जनावृताम् ॥ (आदि० पर्व० अ० ८१) राजा दुष्यन्तने जहाँ म्लेच्छ रहते थे वहाँ और जहाँ ब्राह्मणादि वर्ण रहते थे, उन सभी समु-द्रके टापुओंमें राज्य किया था । सागर पारकी पृथ्वी तक युधिष्ठिरका अश्व फिरते फिरते गया'' यह और ऐसे अनेक श्लोक महाभारतादिमें पाये जाते हैं, जिनसे आर्यावर्त्तके आर्य राजाओंका सार्वभौमत्व प्रकट होता है ।

शिल्प, खगोल, शस्त्रास्त्र इत्यादिक प्रसिद्ध विद्याओंका प्रचार संसार भरमें इसी भूमिसे हुआ है। संक्षेपमें इतना ही कहना बस है, कि प्राचीन समयमें यहाँके आर्य्य बल, बुद्धि, और विद्या, कलामें जगद्गुरु थे। उनकी रहन सहन, आचार विचार और नीति धर्म प्रशंसाके पात्र थे। यह सब उनकी वेदानुकूल कर्त्तव्य-परायणताका ही प्रताप था। शोक है! आज हमारे सर्व श्रेष्ठ आर्यावर्त्तकी अधमावस्था दृष्टिगोचर हो रही है। देश और जातिका नाम तक भी हीनावस्थाको प्राप्त है। श्रेष्ठता दर्शक आर्यावर्त्त * आज गुलामी कर रहा है।

सब बातोंको ध्यानमें लेते हुए ज्ञात होता है, कि महाभारतके युद्धकाल पर्यन्त आर्यावर्त्तके लोग वेदानुकूल ही आचरण करते थे। सबका केवल एक ही धर्म और वह वेद था। वह समय सर्वथा शान्ति पूर्ण था। इसीलिये इतने समयको पुराणकार सत्यादि कालके नामसे पुकारते हैं। हम इस समयको वेदकाल किम्वा

---

* पुराणोंकी रचना हुई उसके पूर्व ही इस देशमें तुरानी, शक इत्यादि विदेशी प्रजायें आ चुकी थीं। वे लोग सिन्धु नदीके नाम परसे यहाँके लोगों को हिन्दू और इस देशको हिन्दुस्तान कहते थे। पुराणकारोंने यह नाम किसी खास हेतुसे कायम रहने दिया। इसी समयसे आर्यके बदले हिन्दू और आर्यावर्त्तके बदले हिन्दुस्तान कहनेका प्रचार बढ़ता गया। हिन्दू लोग इस कालमें मूर्त्ति पूजक बन गये थे अतएव इसके बाद फारसी कोषकारोंने हिन्दू लोग मूर्त्तिको परमेश्वर मान उसकी गुलामी करते हैं, इसलिये हिन्दू शब्दका अर्थ काफिर (नास्तिक) और गुलाम (दास) लिखा है।

ज्ञानयुग कहेंगे। क्योंकि इस समयमें आर्य्य लोग वेदानुकूल यथा योग्य वर्णाश्रम धर्म पालन करते थे। इतना ही नहीं बल्कि इस कालके विद्वानोंने अवर्णनीय परिश्रम कर अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम आविष्कार किये थे और प्रत्येक विद्यापर × अनेक ग्रन्थोंकी रचना

× वेदकालमें यहाँ प्रत्येक विद्यापर अनेक ग्रन्थोंकी रचना हुई थी परन्तु भारतवर्ष शताब्दियोंसे विदेशी और परधर्म्मी शासकों द्वारा शासित हो रहा है। खासकर मुसलमानोंके राजत्वकालमें हमारे साहित्य के साथ बड़ा अन्याय हुआ। अनेक सर्वोत्तम ग्रन्थ उस अमानुषिक विद्वेषाग्निमें भस्म हो गये। फिर भी आर्य पण्डितोंने प्राणदण्डकी अवहेलनाकर साहस पूर्वक जो कुछ बचाया, उनमें आयुर्वेद, धनुर्वेद, अथर्ववेद और गांधर्ववेद यह चार वेद, उपवेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष यह छः वेदांग, न्याय, योग, सांख्य, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त यह छ दर्शन, छांदोग्य आदि दश उपनिषद, सूत्र और स्मृतियाँ आदि उपलब्ध हैं। कुछ ग्रन्थोंका परिचय हम अन्यत्र दे चुके हैं, शेषका इस प्रकार है—

१ आयुर्वेद—इसमें शरीरका अन्तरीय ज्ञान, रात्रि दिन और प्रत्येक ऋतु में आहार विहार, व्यायाम, रोगका निदान, स्वरूप और औषधि विषयक वर्णन है। चरक, सुश्रुत, हारीत, वाग्भट, वात्स्यायन कृत कामशास्त्रादि इसके अन्तर्गत है।

२ धनुर्वेद,—इसमें शस्त्रास्त्रका प्रयोग करनेकी रीति और युद्ध-कला विषयक वर्णन है। इस समय इसका कहीं पता नहीं चलता।

३ गान्धर्ववेद—इसमें राग रागिनी, नृत्यकला, वादन कला आदिक संगीत विद्या विषयक वर्णन है। सामवेद गायनही में गाया जाता है। संगीत रत्नाकर आदि गायनके और काव्य, नाट्य तथा अलंकार शास्त्र उसके अन्तर्गत हैं।

कर देशमें कला कौशलके साथ साथ बल-बुद्धि, श्री, सरस्वती, ऐक्य, नीति, रीति आदिकी भी वृद्धि की थी। संसारमें कुछ भी अपवाद-रहित नहीं होता। उस समय भी वेद-विरुद्ध आचरण करनेवाले कुछ लोग थे। वे दस्यु (दास) राक्षस, असुर आदि नामोंसे पुकारे जाते थे। वे कभी कभी आर्यों से छेड़-छाड़ भी कर बैठते थे। परन्तु उन लोगोंकी संख्या बहुत कम थी। अत: वे प्रतियोगिता-में ठहर न सकते थे। उन्हें उत्तम गुणयुक्त बुद्धिशाली और निपुण

---

४ अर्थवेद—इसमें नीति, शिल्प कृषि, चौसठ कला, नवरत्न परीक्षा, पशुविद्या, भूगर्भ विद्या, पदार्थ विज्ञान इत्यादि कला कौशल विषयक ज्ञान एवम् धन प्राप्त करनेके साधनोंका वर्णन है।

५—शिक्षा—कर्त्ता पाणिनि—इसमें वेदके स्वर और वर्णका शुद्ध उच्चारण करनेकी रीति वर्णित है। अनेक प्रतिशाख्य ग्रन्थ इसके अन्तर्गत हैं।

६—कल्प—सूत्र ग्रन्थ हैं—इसके विषयमें अन्यत्र कहा जा चुका है। इसमें वेदोक्त कर्मोंकी अनुष्ठान विधि वर्णित हैं।

७—व्याकरण—कर्त्ता पाणिनि—इसमें शुद्ध लिखने व बोलनेकी विद्या का विवेचन किया गया है। इसपर कात्यायन और पतंजलिने भाष्य लिखे हैं।

८—निरुक्त—कर्त्ता यास्कमुनि—इसमें वेदके कठिन पदोंका अर्थ समझाया गया है। निघण्टु और अमरकोषादि इसके अन्तर्गत हैं।

९—छन्द—कर्त्ता पिंगलमुनि—इसमें गायत्र्यादि छन्दोंकी रचनाका वर्णन है। वृत्त रत्नाकरादि ग्रन्थ इसके अन्तर्गत हैं।

१०—ज्योतिष—इसमें ग्रह उपग्रह आदिकी गति प्रमाण इत्यादि खगोल विषयक ज्ञान है। सूर्य -सिद्धान्त, आर्य-सिद्धान्त और सिद्धान्त-शिरोमणि आदि ग्रन्थ इसके अन्तर्गत हैं।

आर्यों द्वारा पराजित होना पड़ता था। उन्हें दबकर रहनेके लिये विवश होना पड़ता था। पुराणादिमें देवासुर + संग्रामोंका वर्णन पाया जाता है। उनमें कितने ही रूपक हैं और कितने ही देवासुर संग्रामोंके वास्तविक वर्णन हैं। वेद कालमें कर्म, उपासना और ज्ञानका कैसा रूप था, आर्यगण उनका पालन किस प्रकार करते थे, यह जान लेना परमावश्यक है। वेदके अतिरिक्त उपनिषद्, मनुस्मृति और गीता * से इस विषयपर अच्छा प्रकाश पड़ता है॥

+—"विद्वान् सोहि देवाः" विद्वान पुरुष ही देव हैं और "तेऽयोमानव राक्षसाः परहिता स्वार्थाय निघ्नति ये"। जोलोग अपने हितके लिये पराये हितका हनन करते हैं, वे राक्षस हैं। इन दोनोंके बीचका युद्ध सो देवासुर संग्राम।

हमलोग समझते हैं, कि सींग, पूंछ इत्यादिसे युक्त और विचित्र रूप रंगवाले राक्षस कहलाते हैं, परन्तु यह भूल है। क्योंकि राक्षसोंमें भी रूपवान थे और वे ब्राह्मणादि आर्य प्रजासे ही उत्पन्न हुए थे। जैसे कि रावण ब्राह्मणका ही पुत्र था और वह वेद भी जानता था। कहा जाता है, कि उसने वेद भाष्यकी रचना की थी। फिर भी स्वार्थी और लम्पट होनेके कारण वर्णन करते समय कवियोंने उसकी शरीर-रचना भी विचित्र और भयानक बता कर उन्हें अलंकारादिसे भूषित किया है। यह उनकी काव्य शक्तिका परिचय मात्र है। इसे अक्षरशः सत्य मान लेना ठीक नहीं।

*—महाभारतकी भीषण समरस्थलीमें श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुनको दिये हुए उपदेशोंका व्यास ऋषिने महाभारतमें वर्णन किया है। उसे गीता अथवा श्रीमद्भगवद्गीता कहते हैं। यह ग्रन्थ अध्यात्म विद्याका भण्डार, सर्व शास्त्रका सार और तत्व ज्ञानसे परिपूर्ण है। इसीलिये कहा गया है,

कर्म अर्थात वर्णाश्रम धर्म।

एक स्थितिसे दूसरी स्थितिको प्राप्त होनेके लिये जो क्रियायें की जाती हैं, साधारणतया वे सभी कर्म हैं। इसका और मनुष्योंका जन्मसे ही सम्बन्ध है, अतः मनुष्य अपने शरीर या मनसे जो कुछ करता है, या इन दोनोंके द्वारा प्रयत्न अथवा बिना प्रयत्नके ही जो कुछ होता रहता है, उन सबका समावेश कर्म शब्दमें हो जाता है। इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ३ श्लोक ५ में कहा है, कि 'कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म किये बिना

कि 'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः। पार्थो वत्स सुधिर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥ अर्थात् सब उपनिषद् गौ हैं। गौके दूहनेवाले श्रीकृष्ण भगवान हैं। अर्जुन गौका बच्चा है। गीतामृत रूपी दूध है और ज्ञानी मनुष्य उस दूधका पीनेवाला है। तात्पर्य यह है, कि वेद वेदांग पारंगत श्रीकृष्णचन्द्रके, इस ज्ञानामृतका पान सभी जिज्ञासु सरलता पूर्वक कर सकें, इसी लिये सर्व शास्त्रोंका सार लेकर गीता शास्त्ररूपी अमूल्य ग्रन्थकी रचना की गई है और उसका रहस्य अर्जुनको समझाया गया है। वेदके रहस्यानुसार संक्षिप्त परन्तु उपयुक्त और सर्व देशी ज्ञान बतलानेवाले तत्व ज्ञानके अनेक ग्रन्थोंमें यह ग्रन्थ सर्वोत्तम और अद्वितीय है। गीता शास्त्रका मुख्य उद्देश्य मोक्ष मार्गकी प्रक्रिया बतला कर मनुष्यको प्रवृत्ति धर्ममें ही निवृत्ति धर्मका मार्ग बतलाना है। गीता शास्त्र सर्व श्रेष्ठ ज्ञान का भण्डार है, अतएव वह सर्वमान्य है। इतना ही नहीं, बल्कि उसे प्रस्थानत्रयीमें भी स्थान मिला है। इसीलिये उनके सदृश नामवाली अर्जुन गीता, शिवगीता. ब्रह्मगीता, गुरुगीता, अनुगीता इत्यादि १४ गीताओंकी बादको रचना हुई है।

नहीं रह सकता है, क्योंकि प्रकृति द्वारा उत्पादित सभी मनुष्य विवश हो कर्म करते हैं।'

जिसके ऊपर मनुष्यका शासन नहीं चल सकता अर्थात् मनुष्य अपने प्रयत्नसे जिस गतिको रोक या बदल नहीं सकता, उसे अनैच्छिक कर्म कहते हैं, जैसे कि श्वासोच्छ्वासका चलना, शरीरमें रक्तका सञ्चार होना, नाड़ियोंका गतिमान रहना, पलकोंका हिलना, छींक आना, मलमूत्रका वेग होना इत्यादि। यह सभी कर्म मनुष्य शासनके परे हैं, अतः इनकी गणना इन्द्रियोंके धर्ममें की गई है। ये कर्म मनुष्यके प्रयत्न करनेपर भी नहीं रुक सकते। इसीलिये गीता अध्याय ५ श्लोक ९ में कहा है, कि ऐसे कर्मोंके लिये मान लेना चाहिये, कि इन्द्रियाँ इन्द्रियोंके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करती हैं। इन्द्रियोंके यह साधारण धर्म हैं, अतः इन कर्मोंके रोकनेकी चेष्टा ही न करनी चाहिये। इनके अतिरिक्त सभी कर्म जैसे मनकी स्फूर्ति, हिलना, चलना, सोना, बैठना, आहार विहार, व्यवसाय और स्वजनोंका पालन करना इत्यादि इत्यादि क्रिया मात्र कर्म हैं। यह दो प्रकारके हैं, भले और बुरे। धर्म परिभाषामें कर्मके चार विभाग हो सकते हैं।

(१) नित्य—शौच, स्नान, सन्ध्या, आहार विहार, शयनादि।

(२) नैमित्तिक—प्रसङ्गवशात् आदर सत्कार संस्कार और यज्ञादिक करना।

(३) काम्य—अपनी व अपने स्वजनोंकी शारीरिक स्थितिकी

रक्षामें यत्नवान होना और पोषणके लिये न्याय नीतियुक्त व्यवसायसे द्रव्योपार्जनादि करना।

(४) प्रायश्चित्त—भूल चूकसे किये हुए अनुचित कार्यों का प्रतिकार करना अर्थात् क्षमायाचना इत्यादि।

इनको छोड़ दुःखदायक और धर्मनीति (वेद) विरुद्ध सभी कर्म निषिद्ध हैं। ऐसे कर्म कदापि न करने चाहियें, जो सर्वथा त्याज्य हैं। उनकी गणना कर्ममें नहीं की जाती। जिन कार्यों को करनेमें भय, संशय और लज्जा उत्पन्न होती है—वे सब निषिद्ध कर्म हैं।

प्रत्येक मनुष्यके गुण और स्वभावमें समानता नहीं पाई जाती। अतः अधिकार भेदके अनुसार कर्म पृथक पृथक होने चाहियें। यह स्पष्ट है, कि इस नियमको ध्यानमें रख, वर्णाश्रम धर्मकी योजनाकी गई थी। प्रत्येक आर्यके गुण, कर्म और स्वाभावादिकी परीक्षा कर, अधिकारानुसार चार वर्ण और तदनुसार आयुष्यके चार विभाग किये गये। ऐसा करनेका एक मात्र उद्देश्य यही था, कि किसको कौन कौन कर्म करना चाहिये, इसकी यथायोग्य व्यवस्था कायम रहे। प्रत्येक आर्यको अपने अधिकार यथा वर्णाश्रम धर्मानुसार किस प्रकारके कर्म करने चाहिये, इसका विस्तृत वर्णन मनुस्मृतिमें दिया गया है। विशेष जाननेकी इच्छावालोंको उसका आश्रय लेना चाहिये। यहाँ हम कुछ सारांश दे देना उचित समझते हैं। वेदकालमें गुण और स्वभाव

हीके अनुसार वर्ण* गणना होती थी और प्रत्येक वर्णके स्त्री पुरुषोंको वेदाध्ययनका समान + अधिकार था।

---

* स्वर्गस्थ रमेशचन्द्रदत्त कहते हैं, कि वेदमें ऐसा एक भी उदाहरण नहीं प्राप्त होता है कि जिससे ज्ञात हो कि जन समुदायके वंश परम्परा द्वारा ही जाति विभाग किये गये हैं।

न विशेषोस्ति वर्णानां सर्व ब्रह्ममिदं जगत्।—महाभारत शांति पर्व। अर्थात जाति भेद है ही नहीं, सभी जगत ईश्वरोत्पन्न है।

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्विज उच्यते।
वेदाभ्यासाद्भवेद् विप्रो ब्रह्मं जानाति ब्राह्मणः॥

अर्थात जन्मसे सभी शूद्र हैं। संस्कार होनेपर द्विज, वेदाध्ययनसे विप्र और ब्रह्मको जाननेसे ब्राह्मण होते हैं।

कानपूरमें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकने ता० १-१-१७ को अपनी वक्तृतामें कहा था, कि वेदकालमें वर्णभेद जन्मसे न था बल्कि गुण कर्मसे था।

इसके अतिरिक्त मनुस्मृति, गीता, महाभारत, इत्यादिमें अनेक ऐसे श्लोक हैं, जिनसे गुण कर्म और स्वभावानुसार वर्ण मानना चाहिये। यह बात सूर्यप्रकाशवत् विदित हो जाती है।

+—यथेमे वाच कल्याणी मावदानि जनेभ्यः (यजु-२६-२) यह वैदिक विज्ञान किसी प्रकारके भेदको न रख कर मैं प्रत्येक मनुष्यके लिये कहता हूँ। (१) देखो छांदोग्य उपनिषद (२) रामायण (३) ऋग्वेद अध्याय ८ अ० २ सू० ६५-६६ के ऋषि (४) इस तुलाधार वैश्यसे ब्राह्मणोंने शिक्षा प्राप्त की थी। देखो महाभारत शांति पर्व अध्याय २६३ (५) धर्मव्याध नामक चांडालने कौशिक ऋषिको उपदेश दिया था। देखो वन पर्व अध्याय २०६ से २१६ (६) ऋग्वेदमें १० अध्याय ३ सू० ३० से ३४ तकके

मूढ़ बुद्धिके अपढ़ लोग जो अज्ञान होनेके कारण वेदाध्ययन न कर सकते थे, उनको छोड़ त्रिवर्णकी गणना द्विजमें होती थी। अज्ञान कुलोत्पन्न जाबालि १ क्षत्रिय कुलोत्पन्न विश्वामित्र २ वैश्य कुलोत्पन्न वसुकरण ३ और तुलाधार ४ चाण्डाल कुलोत्पन्न मातङ्ग और धर्मव्याघ्र ५ शूद्रकुलोत्पन्न कवष एलुष, ६ दासी पुत्र कक्षीवान ७ इत्यादि लोग अपने उच्चतम गुण और स्वभावसे ऋषि-पदको प्राप्त हुए थे। ये उदारहण प्रसिद्ध हैं। त्योंही मैत्रीय, ८ लोपामुद्रा, ९ गार्गी १० इत्यादिने भी वेदाभ्यास किया था। इसका स्पष्ट उल्लेख दृष्टिगोचर होता है।

शूद्रगण अज्ञानताके कारण स्वच्छताके नियमोंको समुचित प्रकारसे पालन नहीं कर सकते थे। उनका आचरण वेद विरुद्ध था। उनमें भक्ष्याभक्ष्यका विचार न था। ऐसे लोगोंके साथ खान पान और विवाह सम्बन्धका व्यवहार रखनेसे सोहबते असर और तुख्म तासीरके अनुसार स्वभावमें परिवर्तन हो जानेका और भविष्य सन्तानपर बुरा प्रभाव पड़नेकी सम्भावना थी। इसी लिये इनके साथ सभी व्यवहार बन्द कराना इष्ट मानकर, शेष त्रिवर्णमें ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य, जो कि द्विज नामसे पुकारे जाते थे, खान पान और विवाह सम्बन्ध * परस्पर कायम था।

ऋषि। (८) ऋग्वेद मन्त्र १ अध्याय १७ सू० ११६ से१२६ तकके ऋषि। यह अंगदेशके राजाकी दासीके पुत्र थे। देखो सायणभाष्य और महाभारत (८) याज्ञवल्क्य ऋषिकी स्त्री (९) ऋग्वेद मं० १ अ० २३ सू० १७९ की प्रचारिका (१०) गार्गीने याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ भी किया था।

* नैपाल राज्यकी हिन्दू (आर्य) प्रजामें यह रिवाज अबतक प्रचलित है।

ययाति राजाके, क्षत्री होनेपर भी, देवहुति नामक ब्राह्मण कन्याके साथ और अगस्त्य ऋषिका ब्राह्मण होनेपर भी लोपामुद्रा नामक क्षत्री कन्याके साथ विवाह हुआ था।

महाभारत शान्ति पर्व अध्याय १८६ में कहा है, कि जिसमें सत्य, दान, अद्रोह, लज्जा, दया और इन्द्रिय निग्रह दिखाई दे, वह ब्राह्मण। युद्ध कर्ममें प्रवीण, युद्धकलामें निपुण, दान करनेमें उदार और प्रजाकी रक्षा करनेके अलावा कर लेनेमें जिसे प्रसन्नता है, वह क्षत्री। व्यापार, कृषि, पशुपालन और विद्याभ्यास आदिमें निपुण और पवित्र आचरण वाला हो वह वैश्य और अभक्ष्यको भक्ष्य करनेवाला अपवित्र, मूर्ख, आचार विचार रहित तथा अन्यकी सेवा करनेवाला शूद्र है।

मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ८८-८६-६०-६१ में कहा है, कि अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह यह ब्राह्मणके; अध्ययन, यजन, दान, प्रजा-रक्षा आदि क्षत्रियोंके। अध्ययन याजना, दान, गौरक्षा, कृषि तथा विविध विद्या और कलाओंमें कुशलता यह वैश्यके और त्रिवर्णकी सेवा यह शूद्रके गुण और कर्म हैं।

यहाँपर उपरोक्त कर्मोंका संक्षिप्त स्पष्टीकरण दे देना हम उचित समझते हैं। विशेष जाननेकी इच्छा रखनेवालोंको प्राचीन धर्म्म ग्रन्थोंका सहारा लेना चाहिये।

(१) अध्ययन—वेदादि सत्‌शास्त्र पढ़ना, सुनना और तदनुसार आचरण करना।

(२) अध्यापन—वेदादि शास्त्रोंका पढ़ाना ।

(३) यजन—सन्ध्या, प्राणायाम, पञ्चमहायज्ञ और संस्कारादि कर्म करना ।

(४) याजना—यह कार्य केवल ब्राह्मणों अर्थात् विद्वानोंका है । त्रिवर्णको यजन कार्य विधिवत् करानेको याजन कहते हैं ।

(५) दान—स्वशक्ति अनुसार तन मन व धनसे पात्र देखकर आदर पूर्वक सहायता देनेको दान कहते हैं । दानके अनेक प्रकार हैं यथा—

(क) विद्यादान—विद्याके जिज्ञासुओंको विद्यादान देना चाहिये । विद्याकला आदिकी अभिवृद्धिके लिये यथाशक्ति विद्यालय आदिकी स्थापनामें सहायता देना ।

(ख) अन्नदान—असक्त, अनाथ, निर्धन आदिको अन्न देना, अन्नदान है ।

(ग) योग्यदान—विद्वान, ब्राह्मण, उपदेशक, संन्यासी आचार्य, अतिथि और विद्यार्थी इत्यादिको योग्यतानुसार साहाय्य देना योग्यदान है ।

(घ) जीवनदान—दुःखी, रोगी, घायल आदिके लिये औषधादिका प्रबन्ध करना जीवनदान है ।

(ङ) गुप्तदान—निराधार बच्चे, अनाथ, विधवा और इज्जतदार परन्तु निर्धनको बिना माँगे ही गुप्तरीतिसे यथोचित सहायता देना गुप्तदान है ।

(च) अभयदान—शरणागतको शरण देना अभयदान है ।

(छ) फलदान—लोकहित और उन्नतिके लिये कूपादिक जलाशय, धर्मशाला, वृक्ष, वाटिका, कन्याशाला, पाठशाला और उद्योगशाला आदि बनानेमें और देशकी कुरीतियाँ आदि रोकनेके लिये प्रबन्धमें सहायता करना फलदान है।

(ज) कल्याणदान—पाखण्डी, नीच, कुपात्र, दुष्ट और अन्यायीको शिक्षा देना या दिलाना कल्याणदान है।

जिसको दान देनेसे देशको हानि हो अथवा आलस्य और दुर्व्यसनमें लिप्त, मुफ्त-खोरे, निरुद्योगी, ढोंगी, हिंसक और मूर्खोंको दान देना निषिद्ध है। ऐसे मनुष्योंको दान देनेसे पाप होता है; यह समझकर हमारे पूर्वज कुपात्रोंको दान न देना ही उचित मानते थे। कुपात्रको देना और सुपात्रको अनुचित वस्तु देना न देना बराबर है।

(६) प्रतिग्रह—विपत्तिकालमें दान ग्रहण करना प्रतिग्रह है। शुद्ध आचार विचार युक्त ब्राह्मण, जो अपना समय अन्य किसी प्रकारका उद्योग न कर, लोक कल्याणार्थ शिक्षा देने, पढ़नेमें, त्रिवर्णको कर्मादि करानेमें और उपदेश देनेमें व्यतीत करते थे, वे अपने व अपने कुटुम्बके पालनार्थ जो दान लेते थे, उसे प्रतिग्रह कहते हैं। अन्य ब्राह्मण कदापि भिक्षा दान ग्रहण न करते थे।

(७) प्रजारक्षण—प्रजाको पुत्रवत समझकर उसका दुष्टोंसे रक्षण करना, विद्वान ब्राह्मणोंसे परामर्शकर दोषियोंको दण्ड देना, प्रजाका हित हो और वह धन धान्य एवम् विद्याकला सम्पन्न हों, ऐसे कार्य करना प्रजा-रक्षण है।

(८) शौर्य—चोर, डाकू, अधर्मी आदिसे प्रजाकी रक्षा करनेके लिये शौर्य परमावश्यक है। इसलिये क्षत्रियोंके वीर बालक बचपनसे ही युद्धविद्या सीखते थे। दुष्ट प्राणियोंका शिकार करना, घोड़ेकी सवारी करना, जलमें तैरना, देश रक्षाके लिये प्रस्तुत रहना, आदि आवश्यक विद्यायें सीखकर समय पड़नेपर प्रजाहितमें अपने प्राण तककी आहुति दे देते थे।

(९) गोरक्षा—गाय भैंस, बैल इत्यादि कृषि कर्म्ममें सहायता देनेवाले पशुओंका पालन करना।

(१०) कृषि—कृषि करने और करानेकी कलामें कुशलता प्राप्त करना।

(११) वाणिज्य—देशमें सम्पत्तिकी वृद्धि हो और लोगोंको आवश्यक पदार्थ आसानीसे मिल सकें इसलिये कला कौशलकी वृद्धि करना, अर्थ शास्त्र, भूगोल, भूगर्भ, शिल्प, गणित, नौका, विमान आदि विद्यायें सीख, शोधक बुद्धिसे दिन प्रतिदिन उसमें सुधार और नित्य नई कलाओंकी वृद्धि करना और देशदेशान्तरोंमें जाकर स्वदेशकी आर्थिक दशा उत्तम बनानेका प्रयत्न करना। *

---

* वसन्वायत्र तत्रापि स्वाचारं न विवर्जयेत् (पराशर स्मृति-१४७) चाहे जहां रहे परन्तु अपना आचार न छोड़े। वाणिज्यार्थं समुद्राद्धि यथार्थं लभते धनम् (शांति पर्व अ० २६६) अर्थात व्यापारी लोग समुद्र यात्रा कर धनोपार्जन करते थे। समुद्रं गच्छ स्वाहा। (यजु० ६—१) समुद्र यात्रा करो और मधुर भाषी बनो। मनोनिविष्ट मनु संविश स्वयत भूमेर्जुवसे तत्र गच्छ (अथर्व-वेद कांड १८ सू० ३) हे मनुष्य! जहां तेरी इच्छा हो जा—क्योंकि यह सारी पृथ्वी तेरे लिये है।

(१२) सेवा—यह कर्म शूद्रोंका ही है। चौके चूल्हेका सामान करना, कपड़े धोना, बाल बनाना, कपड़े सीना, पशु पक्षी आदिका पालन, जीवोंका यत्न करना, इत्यादि परिश्रम कार्य करना और त्रिवर्ण की सेवा करना—यही सेवाके अन्तर्गत हैं।

यजनके अन्तर्गत कर्मोंका स्पष्टीकरण।

संध्या—जब रात्रि चार घड़ी शेष रहे, तब शैय्याको त्याग, शौचस्नानादि क्रियायोंसे निवृत्त हो, शुद्ध चित्तसे, एकान्त, निर्भय और स्वच्छ स्थलमें बैठ, वेदानुकूल विधिके साथ ईश्वर प्रार्थनादिक करनेको प्रातः सन्ध्या कहते हैं। इसी प्रकार सायं-कालमें करना सायं सन्ध्या है।

प्राणायाम—प्राणको स्वाधीन करना प्राणायाम है। सन्ध्या कर्म्मासे निवृत्त होकर पद्मासनस्थ हो शरीरको सरल रख, स्थिर चित्तसे, दोनों हाथ गोदीमें रखकर बैठना चाहिये। इसके बाद शरीरके अन्दरका श्वास बाहर निकाल नासिकाके बाम छिद्रसे वायुको अन्दर खींचे और जितना समय वायुके खींचनेमें लगे उससे दुगुने या चौगुने (यथाशक्ति) समय तक उसे हृदयमें रोक रक्खे, बाद धीरे धीरे उस वायुको नासिकाके दूसरे छिद्रसे बाहर कर दे। यह क्रिया करते समय मनमें ॐ या गायत्री आदि किसी मन्त्रका जप करते रहना चाहिये। ऐसा करना एक प्राणायाम है। सन्ध्या

दक्षिण अमेरिकामें रामचन्द्रजीकी महिमा प्रचलित है और जावामें वेद की एक प्रति हस्तगत हुई है। इन बातोंसे सिद्ध होता है, कि आर्य्य-गण वेदकालमें देश देशान्तर जाते थे।

करते समय द्विज मात्रको तीन प्राणायाम तो करना ही चाहिये। प्राणायाम करनेसे मन स्थिर, शान्त और पवित्र होता है※ यह एक प्रकारका व्यायाम है। इससे मनुष्य स्वास्थ्य प्राप्त कर दीर्घायुषी भी हो सकता है।

पञ्च महायज्ञ---प्रत्येक गृहस्थके यहाँ चूल्हा, चक्की, ऊखल, झाडू और मोरियोंके द्वारा कुछ न कुछ जीव हिंसा अवश्य होती है। अतः इन दोषोंके परिहारार्थ नित्यप्रति ब्रह्मयज्ञ, देव-यज्ञ, पितृ-यज्ञ, अतिथि-यज्ञ और भूत-यज्ञ, यह पाँच यज्ञ करना द्विज मात्रके लिये अनिवार्य था।

(क) ब्रह्म-यज्ञ—विद्या ग्रहणके ऋणसे मुक्त होनेके लिये ब्रह्मचर्य पूर्वक आचार्यों की सेवा करना और उनके द्वारा वेदादि शास्त्रों का उपदेश ग्रहण करना।

(ख) देव-यज्ञ—केशर, कस्तूरी, घी, चावल, चन्दन, गूगुल, इत्यादि सुगन्धित द्रव्योंमेंसे यथा शक्ति जितने एकत्र करते बने, एकत्र कर सन्ध्या और प्राणायाम आदिसे निवृत्त हो जानेके बाद निर्धूम्र अग्नि (हवन कुण्ड) में वेदोक्त विधिसे हवन करना।

※ प्राणायाम करनेके लिये इतना ही ज्ञान पर्याप्त नहीं है। इतना ही जानकर प्राणायाम करना हानिजनक है। यह क्रिया बिलकुल आसान नहीं। यथा नियम न करनेसे रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है। कहानी है कि 'देखादेखी साधै योग खीझै काया धावै रोग।' प्राणायामके लिये यम नियम आसन आदिका ज्ञान भी परमावश्यक है। अतः किसी सद्गुरूके पास शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

(ग) पितृ-यज्ञ—सत्य विद्याके सिखानेवाले ज्ञानदान देनेवाले और दुखी दशामें पालन करनेवाले पितृ कहलाते हैं। माता, पिता, गुरु, आचार्य और अन्य मृत सम्बन्धी इन सबोंकी गणना पितृमें होती है। उनकी समुचित आज्ञाओंका पालन करना, यथाशक्ति उन्हें अन्न, जल, वस्त्रादिक आवश्यक वस्तुएं श्रद्धा पूर्वक समर्पण कर तृप्त करना, उनकी मृत्युके बाद भी उनके कथनानुसार आचरण कर, उनकी सदकीर्तिमें वृद्धि करना, उनकी इज्जतमें बट्टा लगे, ऐसे कामोंसे दूर रहना और उनकी मृत्युतिथिके अवसरपर उनके निमित्त यथाशक्ति दानादि कर्म करना।

(घ) अतिथि यज्ञ—जिसके आगमनकी कोई तिथि निश्चय नहीं है—वह अतिथि। अतिथि जब आवे तब उनके अधिकारानुसार सत्कार पूर्वक आसन दे, अन्न जल वस्त्रादिसे सन्तुष्ट करना और उसके कार्यमें सहायता करना अतिथि-यज्ञ है। अतिथि विद्वान या वयोवृद्ध हो तो उससे ज्ञान ग्रहण करना अनुचित नहीं, परन्तु अतिथिसे किसीको और कुछ काम या धन लेनेका अधिकार नहीं है।

(ङ) भूत-यज्ञ—प्राणी मात्रको भूत कहते हैं। गाय, बैल, कुत्ता आदि उपयोगी पशु और क्षुधार्त्त जीवोंको यथाशक्ति अन्न, जल, तृण आदि देकर तृप्त करना भूत-यज्ञ है।

यह पञ्चमहायज्ञ किये विना अन्न ग्रहण करनेकी आज्ञा नहीं है (गीता अध्याय ३ श्लोक १३) और न करनेवालेको पापी कहा है।

संस्कार---हम पहले ही कह चुके हैं, कि वेदकालमें जिस

प्रकार चार वर्ण थे, उसी प्रकार जीवनके चार विभाग—आश्रम-व्यवस्था नियत थी। किस अवस्थामें किस प्रकार धर्म युक्त काल-यापन करना, यह आश्रम व्यवस्थाके नियमोंसे स्पष्ट घोषित होता है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—यह चार आश्रम हैं। चारों आश्रमोंपर चारों वर्णका अधिकार नहीं है, परन्तु त्रिवर्णका ही है। वर्ण व्यवस्था गुण, कर्म और स्वभावपर अवलंबित थी। अतः नीच व्यवसायवाले, मूढ़, अपढ़, अज्ञानी और मलीन मनवाले शूद्रोंको ऐसा अधिकार न होना, वास्तविक है। अन्यथा भ्रष्टाचारका प्रचार होता। चार आश्रमोंके क्रमकी उपनिषद्‌वालोंने उपेक्षा की है और जब वैराग्य आ जाय तब संन्यास लेनेकी आज्ञा दी है। परन्तु मनुष्यकी इन्द्रियां अत्यन्त शक्तिमान हैं, अतः इस प्रकार कूदकर जानेमें, यदि बीचमें मोह उत्पन्न हो गया, तो यतोभ्रष्टः ततोभ्रष्टः होनेकी सम्भावना है। ऐसा न हो, इसलिये तत्कालीन लोग क्रमानु-सार ही चलना उचित मान, योग्य आचरण करते थे। आश्रमोंमें अनुकूलता प्राप्त होनेके लिये १६ संस्कारोंकी सृष्टि हुई थी। जिसके द्वारा कुछ परिवर्त्तन हो, या स्थितिमें नवीनता प्राप्त हो, उसे संस्कार कहते हैं। पूर्वकालमें यहाँ ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य—यह तीनों द्विज अर्थात् दो बार जन्म धारण करनेवाले कहे जाते थे। प्रथम जन्म देह धारण करना और द्वितीय जन्म अमुक प्रकारकी शुद्धि या संस्कार होना। संस्कार प्रसङ्गवशात् किये जाते हैं, अतः उनकी गणना नैमित्तिक कर्मोंमें की जाती है। आश्रम और संस्कारोंका निकट सम्बन्ध है। अतः हमने दोनोंका वर्णन

एक ही साथ दिया है। इस विषयका भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करनेके लिये पृथक पृथक ग्रन्थ देखने चाहियें।

(१)—जात-कर्म—यह जन्मके समय किया जाता था। बालकका पिता नाल काटनेके पूर्व ही स्नान कर विधिवत् होम हवनादिक क्रियायें करता और बादको पत्थर पर घी और शहदमें सुवर्णके कुटकेको घिस कर उसी कुटकेसे वह सुवर्णरज नवजात शिशुको चटाता था।

(२)—नामकरण संस्कार—जन्म होनेके ग्यारहवें या बारहवें दिन किया जाता था।

(३)—निष्क्रमण—नवजात शिशुकी, बाहरकी खुली हवासे स्वास्थ्य-हानि न हो, अतः तीन मासकी अवस्था तक उसे बाहर न निकालते थे। चतुर्थ मासमें उसे कुलकी रीति-नीतिके अनुसार बाहर निकालते थे, उस समय यह संस्कार किया जाता था।

(४)—अन्नप्राशन—बालकको छठवें महीनेमें सर्व प्रथम अन्न खिलाते समय विधिसह यह संस्कार किया जाता था।

(५)—चौल संस्कार—बालकका मस्तिष्क कोमल होता है, अतः तीन वर्षतक उसके बाल नहीं बनाये जाते थे। यथा समय जब प्रथम वार बाल बनाये जाते, तब यह संस्कार किया जाता था।

(६)—उपनयन किंवा व्रतबन्ध—पुत्रका मस्तिष्क आठवें वर्ष और कन्याका मस्तिष्क पांचवें वर्ष सीखी हुई बातको याद करने योग्य बनता है। वैद्यक शास्त्रके इस नियमको ध्यानमें रख, पुत्रका पिता, उसे समुचित अवस्था प्राप्त होनेपर गायत्री

मन्त्रका उपदेश दे, विद्योपार्जनके लिये विद्यालय भेज देते थे। कन्याओंको स्त्रियों द्वारा ही शिक्षा प्राप्त होती थी। उपनयन संस्कार उसी समय किया जाता था। (उपनयन—गुरुके पास ले जाना) गुरु उसे ब्रह्मचारी रहना, सत्य बोलना, सन्ध्या वन्दन करना, वेदादि विद्या श्रद्धापूर्वक सीखना इत्यादि व्रतोंका उपदेश दे, उसे इस संस्कारका चिन्ह स्वरूप उपनयन (यज्ञोपवीत * व्रत बन्ध) किंवा जनेऊ पहनाकर अपने पास रख लेते थे।

(७)—वेदारम्भ—उपरोक्त प्रकारसे उपनयन संस्कारके पूर्ण हो जानेपर जब वेदाध्ययन आरम्भ होता था, तब यह संस्कार किया जाता था। गुरु उसे उपरोक्त चार नियमोंका पालन कराते हुए कमसे कम १२ वर्षतक विद्या पढ़ाते थे। ऐसी स्थितिमें रहनेका नाम ब्रह्मचर्य्याश्रम है।

मनुष्यका शरीर निरोग रहे तो उसकी ४०।५० वर्षकी अवस्थातक वृद्धि और इसके बाद ५० वर्ष तक क्षय होती है। इस बातसे यह मालूम होता है, कि मनुष्यका आयुष्य १०० वर्षका निश्चित हुआ है। पूरे १०० वर्ष जीनेके लिये आर्य्यगण उसका चतुर्थांश अर्थात् २५ वर्ष ब्रह्मचर्य पालनमें व्यतीत करते

---

* जनेऊकी बनावट बड़ी रहस्यपूर्ण है। उसके तीन तागे तीन महाव्रतोंके सूचक हैं जो कि उसे धारण करनेवालेको पालन करने चाहियें। प्रत्येक तागेका तेहरा होना, उसकी लम्बाईका प्रमाण, उसकी ग्रन्थि इत्यादि सभी बातें महान अर्थोंकी द्योतक है। हम स्थानाभावसे यहां कुछ भी नहीं लिख सकते।

थे। यत्नपूर्वक पशु भी ब्रह्मचारी रक्खे जाते हैं और वे दृढ़ अङ्गवाले होकर सम्पूर्ण आयुष्य भोगते हुए देखे गये हैं। इसी प्रकार ब्रह्मचारी मनुष्य भी हृष्ट-पुष्ट होते हैं और कोई विघ्न न आवे तो सम्पूर्ण आयुष्य भोग सकते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। पुरुषमें पुरुषत्व * पचीसवें वर्षमें आता है ओर स्त्रीमें स्त्रीत्व सोलहवें वर्षमें आता है। अतः उन्हें उस अवस्था तक ब्रह्मचर्य पालन करना ही चाहिये ताकि बल और बुद्धिका सम्पूर्ण विकाश हो। यह नियम ध्यानमें रख कर ही उपरोक्त वय होने तक उन्हें विद्याध्ययनके लिये गुरु गृहमें रहना पड़ता था।

(८)—समावर्त्तन—ब्रह्मचर्य्यादि चार नित्य-व्रत पालन कर परीक्षा दे, वर्णाधिकार प्राप्त कर लेनेपर गुरुकी आज्ञा प्राप्त कर विद्यार्थीगण घर आते थे। उस समय यह संस्कार किया जाता था। यह संस्कार हो जाने पर ब्रह्मचर्याश्रमकी समाप्ति समझी जाती थी और इसके बाद इच्छानुसार विवाह कर मनुष्य गृहस्थाश्रममें योग देनेके लिये स्वाधीन हो जाते थे।

(६) विवाह—युवावस्था प्राप्त होनेपर स्त्री पुरुषोंका विवाह करना परमावश्यक है। क्योंकि इस अवस्थामें इन्द्रियोंमें स्वभावतः इतना बल और चांचल्य आ जाता है, कि उनको वशमें रखना कठिन हो जाता है। यह सबके लिये आसान नहीं है कि युवावस्थामें ब्रह्मचर्य पालन करे। कामका वेग स्थावर और जंगमात्मक प्राणी तकमें, युवावस्था प्राप्त होने पर, स्वाभाविक

---

* देखो सुश्रुत ग्रन्थके सूत्र स्थानका ३५ वाँ अध्याय।

प्रकारसे उत्पन्न होता है। ऐसे समयमें लौह और चुम्बककी भांति नर नारी किसी विलक्षण आकर्षण शक्ति द्वारा परस्पर आकर्षित होते हैं।

इस प्रकार कामके स्वाभाविक आकर्षणसे बचना अत्यन्त कठिन है। अतः स्त्री पुरुषोंको युवावस्थामें अवश्य विवाह करना चाहिये। यदि वह विवाह न करें, तो किसी प्रकार उनके दुराचारी हो जानेकी सम्भावना बनी रहती है। यदि बलपूर्वक ब्रह्मचर्य्य पालन किया जाये तो गृहस्थोंमें उनकी प्रतिष्ठा नहीं होती। इतना ही नहीं, परन्तु कामके वेगको बलात् रोकनेसे तत्विषयक व्याधि होनेकी सम्भावना है। इन बातोंको ध्यानमें लेते हुए, आर्यों ने युवावस्थामें वैवाहिक सम्बन्धकी आवश्यकता स्वीकार की है। विवाह किसके साथ और किस प्रकार होने चाहियें इस विषयपर मनुस्मृति, सुश्रुत संहिता, और ऋग्वेदमें विस्तृत विवेचन दिया गया है। 'वधुरियं पतिमिच्छन्येति' (ऋग० ५-३७-३) कन्याको अपने लायक योग्य पतिको खोजकर उसके साथ विवाह करना चाहिये। 'युवं ब्रह्मऽणानुमन्यमानो' (अथर्व १४-२-४२) तरुण वर कन्याको विवाह करना चाहिये। 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवान विन्दते पतिम्' इत्यादि वेदाज्ञायें दृष्टिगोचर होती हैं, अतः वेदकालमें स्त्री पुरुषोंके व्याह युवावस्थामें और खासकर एक दूसरेको पसन्द करने पर * होते थे, यह सर्वथा निष्पन्न है।

---

*विवाहके समय वर और कन्याको परस्पर सात सात प्रतिज्ञायें करनी

स्त्रीमें स्त्रीत्व पुरुषके पुरुषत्वकी अपेक्षा नव वर्ष पहिले आ जाता है। अत: विवाह करनेवाले स्त्री पुरुषोंकी अवस्थामें कमसे कम इतना अन्तर अवश्य रहना चाहिये। सम गोत्रकी कन्याके साथ भी विवाह न करना चाहिये। स्त्री पुरुष अपनी पसन्दसे विवाह न करें तो कन्याके पिताको निरोगी, विद्वान, पालन-पोषण करनेमें समर्थ, कुलीन अर्थात् उत्तम और पवित्र आचार विचारवाले और वयमें कन्यासे कमसे कम नव और अधिकसे अधिक १८ वर्ष बड़े पुरुषके साथ उसका व्याह करना चाहिये। वर-कन्याका व्याह हो इसके पूर्व (बड़ी उम्रमें विवाह होते थे, इसलिये) वे परस्पर योग्यता देख लेते थे। योग्यतामें विद्या, वय, विनय, विवेक और आरोग्यता पर खास ध्यान दिया जाता था।

(१०) गृहस्थाश्रम—विद्याध्ययन कर लेनेके पश्चात् योग्य कन्याके साथ वैवाहिक सम्बन्धमें बद्ध हो सत्पुरुषार्थमें प्रवृत्त होनेको गृहस्थाश्रम कहते हैं।

गृहस्थके लिये सर्वथा स्त्रीका पालन करना एक महान् कर्त्तव्य है, क्योंकि पुरुषके सांसारिक सुखका आधार स्त्री ही है। जीवननिर्वाहके लिये उद्योग करनेमें जो श्रम होता है, वह घरमें आते ही स्त्रीके प्रेममय आश्वासनसे दूर हो जाता है। जिसके घरमें सुशीला स्त्री है, उसे गृहकार्यके लिये विशेष चिन्ता नहीं

पड़ती हैं, जो कि सप्तपदी नामसे विख्यात हैं। उन पवित्र प्रतिज्ञाओंसे भी उपरोक्त बातकी पुष्टि होती है।

रहती। स्त्री कोमल और मृदु स्वभावकी होती हैं, अतः उनकी रक्षा करना पुरुषोंका परम कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त बालकोंको शिक्षा देना, न्याय नीतियुक्त व्यवसायसे द्रव्योपार्जन करना, स्वजनोंकी रक्षा और पालन करना, माता, पिता, गुरु, अतिथि, विद्वान, आदि आप्त मण्डलीकी सेवा करना, उनको सहायता देना, स्वजनोंसे प्रेम करना और उन्हें सहायता देना और वर्णाश्रमके अनुसार धर्म कार्य करना इत्यादि इत्यादि गृहस्थके प्रधान कर्त्तव्य हैं। मनुस्मृतिमें इनपर विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। स्त्रीके लिये पति-सेवा करना, बालकोंकी रक्षा और यत्न करना, उनको विद्याभ्यास कराना, गृह-कार्य करना, पतिके आज्ञानुसार आचरण कर, उसके कार्यमें सहारा पहुंचाना, मर्यादासे रहना और पतिको ही देव और गुरु मान कर उसे प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करना यही प्रधान कर्त्तव्य है। गृहस्थाश्रमीको गृहस्थ होनेके बाद तीन संस्कार करने शेष रह जाते थे।

(११) गर्भाधान—पत्नीकी अवस्था सोलह वर्षकी होनेपर रजो दर्शनके प्रथम चार दिन और पूर्णिमा, अमावस्या, एकादशी इत्यादि निषिद्ध तिथियां छोड़कर सोलह दिनके अन्दर किसी अच्छे दिन अपने गृह्य सूत्रोक्त अनुसार होमादि विधि कर रात्रिके समय गर्भाधान संयोग करनेको गर्भाधान संस्कार कहते हैं।

(१२) पुंसवन—स्त्री गर्भवती हो गई है, ऐसा प्रतीत हो जाने पर तीसरे महीनेमें अपने गृह्य सूत्रोक्ति अनुसार गर्भस्थ सन्तानको सम्पन्न और पराक्रमी बनानेके लिये यह संस्कार होता है।

(१३) सीमन्ततोनयन—चौथे, छठें या आठवें महीनेमें खास कर गर्भ रहनेके पांचवें महीनेमें गर्भिणी व उसके गर्भकी शुद्धि और रक्षा करनेके लिये यह संस्कार किया जाता है। अपने गृह्य सूक्तोक्ति अनुसार विधिवत् यज्ञादिक कर पुत्रवान और सौभाग्यवती स्त्रियोंसे गर्भिणीको मङ्गलाचार कराया जाता है। इस संस्कारको करनेके बाद गर्भवतीको बड़े यत्नसे रखना चाहिये। पूर्वकालमें गर्भिणीको आनन्दमें रखनेके लिये सत्शास्त्रादि पढ़ने व श्रवण करनेका प्रबन्ध किया जाता था। उसे परिश्रम नहीं करने देते थे और पौष्टिक भोजनका प्रबन्ध किया जाता था, ताकि गर्भ भली भाँति परिपुष्ट हो।

(१४) वानप्रस्थाश्रम—५० वर्षकी अवस्था होने पर अथवा जब गृहस्थाश्रममें जी न लगे और वैराग्य उत्पन्न हो, तब संसार व्यवहारका भार अपनी सन्तानों पर डाल, अकेले या स्त्री सहित धर्म कार्यकी साधनाके लिये बनमें जाकर लोग वास करते थे। वह वानप्रस्थाश्रमी कहलाते थे। वानप्रस्थाश्रममें प्रवेश करने पर उन्हें जितेन्द्रिय रह, फलाहार कर, सन्त समागम द्वारा तत्व ज्ञान प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करना पड़ता था। शक्तिभर लोक कल्याणके लिये प्रयत्न करना इन आश्रमवालोंका प्रधान कर्त्तव्य गिना जाता है।

(१५) संन्यासाश्रम—वानप्रस्थाश्रममें रहकर जब सन्त-समागम द्वारा भली भांति ज्ञान प्राप्त हो जाय और संसारके पदार्थ मात्र एवम् वैभवादि पर चित्त न रहे—किसी विषयकी इच्छा न

रहे—सर्वत्र आत्मभावका अनुभव होने लगे, ऐसी विद्वत्ता प्राप्त हो जाय, बुद्धि, राग द्वेषादि रहित हो जाय, प्राणी मात्रपर उपकार करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जाये, ऐसी दशामें महापुरुष ❀ संन्यासी होकर इस आश्रममें प्रवेश करते थे। वे एकान्तवास करते और कन्दमूल आदि जो कुछ मिल जाता, उसीमें गुजर कर लेते थे। यत्र-तत्र भ्रमण कर सदुपदेश दे, लोक कल्याण करना इनका प्रधान कर्त्तव्य है। योगाभ्यास और ईश्वर स्मरणमें संन्यासीगण अपना समय व्यतीत करते हैं।

(१६) अन्त्येष्टि—शवकी अन्तिम व्यवस्था करनेको अन्त्येष्टि कहते हैं। इसके तीन प्रकार हैं—गाड़ना, प्रवाहित करना, और जलाना। इन तीनोंमें दाह-कर्म श्रेष्ठ है। यह संस्कार आत्मीय जनों द्वारा सम्पन्न होता था। संन्यासी और गृहत्यागी मनुष्योंका संस्कार, जिस ग्राममें उनका प्राणान्त होता था उस ग्रामके निवासी करते थे।

❀ संन्यासीके धर्म तथा दण्ड, कमण्डल, गेरुआ वस्त्र धारणादि वाह्योपचार प्रसिद्ध हैं, परन्तु वास्तविक दण्ड तो मन, वाणी और कर्मकी एकता रूप त्रिदण्ड है। सब कर्मोंका न्यास करना संन्यास है।

उपासना किंवा भक्ति।

किसी मनुष्यकी किसी पदार्थ किंवा मनुष्यपर भक्ति है, ऐसा कहा जाय तो भक्तिका अर्थ विश्वास, पूज्यभाव या प्रीति होता है। वेदमें भक्ति शब्दका प्रयोग ज्ञात नहीं होता। परन्तु उसके स्थानपर 'उपासना' शब्द काममें लाया गया है। अन्तः-करण पूर्वक सर्व साधनोंके देनेवाले परम कृपालु जगन्नियन्ता परमात्माकी विनीत हो, स्तुति कर, शुद्ध बुद्धिकी याचना करनेको उपासना कहते हैं। बुद्धि शुद्ध होनेसे ईश्वरकी पवित्र आज्ञाओंके अनुसार अर्थात् वेदानुकूल आचरण किया जा सकता है और तभी मनुष्य देह सार्थक हो सकती है। "भक्ति" शब्दकी व्याख्या और भक्ति करनेकी रीति इस समय प्रत्येक सम्प्रदाय और मत पन्थने अपने अपने अनुकूल बतलाई है। हमने उन सबका वर्णन यथास्थान आगे चल कर दिया है। यहां पर वेदकालमें भक्ति किस प्रकार की जाती थी, यह बतलाया है।

वेदमें उपासना, प्रार्थना और स्तुतिके अनेक मन्त्र हैं, परन्तु उन सबमें गायत्री मन्त्र मुख्य है।

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो-देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्।

यजु० अध्याय ३।३५

जो विविध जगतमें प्रकाश करनेवाले, अत्यन्त बलवान और सर्व शक्तिमान स्वामी न्यायकारी हैं, जो सम्पूर्ण जगतके जीवन,

सबको नियमित रखनेवाले सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। उनको हम हृदयमें धारण कर ध्यान करते हैं, यह परमात्मा हमारी बुद्धिको* सदा उत्तम कार्योंमें प्रेरित करे।

इस प्रकारके अनेक स्तुति मन्त्र हैं। कपिलदेवने भक्तिका स्वरूप वर्णन करते हुए कहा है, कि विषयोंके ग्रहण होनेसे ही जिनके अस्तित्वका अनुमान होता है, ऐसी इन्द्रियां वेदके कथनानुसार आचरण करें और उनकी वृत्तियोंकी स्थिति भगवानही में हो। यही निर्विकार मनवालेकी निष्काम और स्वाभाविक भक्ति है। वह मुक्तिसे भी श्रेष्ठ है जो कि लिङ्ग शरीर (वासना) का क्षय कर देती है, जैसे अग्निभुक्त अन्नको क्षय करती है। (देखो भागवत)

गीतामें भक्तियोग नामक द्वादश अध्यायमें कहा है, कि जो अविनाशी, अवर्णनीय, अव्यक्त, सर्वव्यापी, अचिन्त्य, अविकारी और नित्य परम कृपालु परमात्माको भजते हैं और इन्द्रिय समूहका निग्रह कर, सर्वत्र समान बुद्धि रख, सबके हितमें लगे रहते हैं, जो किसी प्राणीसे द्वेष नहीं रखते, जो सबके साथ मित्रता और करुण-भाव रखते हैं, जिन्होंने मनको जीत लिया है, जिनके द्वारा कोई जीव उद्वेगको नहीं प्राप्त होता, जिनको किसी

---

* संसारमें मनुष्यको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये शुद्ध बुद्धि ही परमावश्यक है, इसीसे सबको सब कुछ मिलता है, अतः परमात्मासे अन्यान्य वस्तुओंकी याचना न कर केवल शुद्ध बुद्धिकी ही याचना की गई है।

वस्तुकी इच्छा नहीं है, जो पवित्र कर्त्तव्य कर्म (वर्णाश्रम धर्म) को पूर्णतया सम्पन्न करनेवाले हैं, जो शत्रु और मित्रोंकी ओर मानापमानमें, शीत और उत्ताप तथा सुख दु:खमें समान हैं, जो निन्दा और स्तुतिको समान गिनते हैं, जो शान्त और सन्तोषी हैं—वही भक्त कहलाते हैं।

गीताके उपरोक्त कथनसे यह सिद्ध होता है, कि भक्तमें उपरोक्त सद्गुण होने चाहियें। यह सद्गुण ज्ञान प्राप्त किये विना नहीं आते। इसीलिये योगशास्त्रमें भक्तिका साधन वेदादिशास्त्र श्रवण व मनन करना बतलाया है। इसके अतिरिक्त * यम-नियमादि साधनोंकी साधना करना बतलाया है।

कहनेका तात्पर्य यह है, कि बुद्धि प्रभृति अनेक साधनोंके देनेवाले परम कृपालु परमात्माका प्रीति पूर्वक सच्चे अन्त:करणसे गुणगान गाना और उनकी कृपा याचना कर वेदानुकूल आचरण करनेको आर्यगण भक्ति किंवा उपासना कहते थे।

---

* यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह आठ प्रकारके यम नियमादि साधन हैं। अहिंसा, सत्य, अशौच, ब्रह्मचर्य और अप्रतिग्रह यह पांच प्रकारके यम, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह पंच नियम और स्थिर एवम् सुखसे बैठा जा सके ऐसे पद्मासनादि आसन हैं। प्राणायामके विषयमें हम अन्यत्र लिख चुके हैं। विषय वासनासे मनको मोड़ना प्रत्याहार है। मनको ईश्वरमें स्थिर करनेको धारणा कहते हैं। उसीमें अन्त:करणको रोकना ध्यान है। परमात्मामें तदाकार बनी हुई चित्त वृत्तिकी अवस्थाका नाम समाधि है।

ज्ञान ।

परमाणुसे लेकर जीव, प्रकृति और ईश्वर पर्यन्त पदार्थों के यथायोग्य गुण, कर्म स्वरूप, स्वभाव इत्यादि जो कुछ जैसे हैं उनको वैसे ही, उसी रूपमें जाननेका नाम ज्ञान है। जो कुछ जैसा है, उसको वैसा ही जाने बिना तत्सम्बन्धी यथायोग्य क्रियाओंका ज्ञान नहीं हो सकता। सत्य ज्ञानके बिना यथायोग्य कर्म या भक्ति नहीं हो सकती। इसीलिये ज्ञान कर्म और भक्तिसे श्रेष्ठ माना गया है। शुद्ध कर्म, भक्ति किंवा अन्य कोई कर्त्तव्य यथायोग्य करनेके लिये उन उन विषयोंका यथायोग्य ज्ञान होना आवश्यक है। अतः प्रत्येक मनुष्यको ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये। ज्ञानकी प्राप्ति सद्‌गुरुके बिना नहीं होती परन्तु गुरु या आचार्य* समझ बूझकर किसीको बनाना चाहिये। उनकी वाणीपर दृढ़ विश्वास रखना चाहिये। आर्य शास्त्र पुकार पुकार कर कह रहे हैं, कि श्रुतिके वचन युक्ति सङ्गत होने चाहिये और युक्ति सङ्गत न्याय अनुभव सिद्ध होना चाहिये। ऐसा हो तो वह सत्य न्याय है। इस प्रकार सत्यासत्यके विचार द्वारा किसी पदार्थ या विषयको यथातथ्य (सत्य स्वरूपमें) जाननेको ज्ञान कहते हैं

---

* जो सदाचार सिखाता है, विद्या अर्थात ज्ञान देता है और बुद्धिको संस्कृत करता है, सो आचार्य (नि० १-४) वेद, उपनिषद और गीता अर्थात् प्रस्थान त्रयीपर भाष्यकर तीनोंसे जो अपने सिद्धान्तको सिद्ध कर सके वह धर्म्माचार्य ।

और ज्ञान प्राप्त हो जानेपर तदनुसार शुद्ध आचरण रखनेको ज्ञान-योग कहते हैं।

इस प्रकार ज्ञान, कर्म और भक्तिका यथार्थ रूप समझकर वेदकालमें आर्यगण ब्रह्मचर्याश्रममें पचीस वर्षकी अवस्था होने तक यथायोग्य ब्रह्मचर्यादि व्रतोंका पालन करते हुए गुरु द्वारा विविध प्रकारका ज्ञान प्राप्त करते थे। द्वितीयावस्था (गृहस्थाश्रम) में विवाहादिक कर संसार-व्यवहारमें योग देते थे और योग्य कर्म करते हुए सबका पालन पोषण करते थे। तीसरी अवस्था (वान-प्रस्थाश्रम) में संसारसे विरक्त हो विशेष ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हुए लोक कल्याणका साधन करते थे और चौथी अवस्था (संन्यासाश्रम) में सर्वत्र आत्मभाव प्रकट कर योगा-भ्यास द्वारा ईश्वरमें लीन होते थे। एवम् प्रसङ्गवशात् देश-देशान्तरमें विचरण कर लोगोंको सदुपदेश देते थे।

इस प्रकार यथायोग्य आचरण करनेसे आर्यगण सुदृढ़, निरोगी, बलवान और दीर्घायुषी होते थे। बल बुद्धिमें श्रेष्ठ पद-पर विराजमान थे। स्त्रियाँ वीर पुत्रोंको जन्म देती थीं। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र अपने अपने वर्णाश्रमके धर्मानुसार आचरण करते थे। अतः दिन प्रति दिन नित्य नयी विद्या कलाओंकी वृद्धि होकर आर्यावर्त्त श्री और सरस्वतीका निवासस्थान हो रहा था। लोग इसीसे इसे सुवर्ण-भूमि कहते थे। महाभारतके युद्धकालमें विद्या और ज्ञानका सूर्य मध्याह्नकालके समान पूर्णकलासे प्रका-शित हो रहा था, परन्तु हतभाग्यसे वे भी उदयास्तके अचल

नियमके शिकार बन गये। मध्याह्नके बाद जैसे जैसे समय व्यतीत होता जाता है, वैसे वैसे सूर्य प्रकाश भी क्षीण होता जाता है। ठीक उसी प्रकार आर्योंकी बल-बुद्धि और श्रीसरस्वती छिन्नताको प्राप्त हुईं। अन्तमें जिस प्रकार रात्रि हो जाती है, उसी प्रकार विद्या ज्ञान क्षीण होनेपर बिलकुल अन्धेरा हो गया—रात्रि हो गयी! अब भी रात्रिका ही साम्राज्य है। आजकल पुनः प्राचीन विद्याकला विषयक जाँच पड़ताल और खोज होने लगी है, जिससे पूर्वकालके लौटनेकी आशा उत्पन्न होती है। हमारी आशा कहाँतक सफल होती है, यह समय आनेपर मालूम होगा। इस समय तो केवल ईश्वरेच्छा बलीयसी—इतना ही कहकर सन्तोष करना पड़ता है।

ब्राह्मणकाल।

ब्राह्मण धर्म ई० स० पू० ३१३७ से ई० स० के आरम्भ तक।

किसीकी उक्ति है, कि 'महाभारतने यह भारत देश आरत कर दिया' विचार करनेसे यह बात बिलकुल ठीक मालूम होती है। इस महाभीषण युद्धाग्निमें बड़े बड़े राजाधिराज और ऋषि मुनि स्वाहा हो गये। परिणाम यह हुआ, कि वेदोक्त कर्मका प्रचार

घट चला और भारतमें अन्दर ही अन्दर ईर्ष्या, द्वेष और अहङ्कारकी अग्नि प्रज्वलित हो उठी। धर्मराज युधिष्ठिरके बाद क़रीब २००—२५० वर्ष जैसे तैसे ठीक ही व्यतीत हुए। परन्तु इसके बाद उस अग्निने भीषण रूप धारण किया। शक्तिशाली मनुष्य निर्बलोंको दबा कर राजा बन बैठनेका प्रयत्न करने लगे। इससे सारे देशमें दंगे, फिसाद और बखेड़े उठ खड़े हुए। जिसके हाथ जो लगा, वह उतने हीको दबाकर राजा कहलाने लगा और आर्यावर्त्तहीमें छोटे छोटे अनेक राज्य स्थापित हो चले। इन कारणोंसे देशमें कलह और क्लेशके साथ अशान्तिकी भी वृद्धि होती चली गयी। फल यह हुआ कि :—

(१) स्वदेशके नरेशोंका अधिकांश जीवन घरेलू झगड़ोंको शान्त करनेमें व्यतीत होने लगा। फलतः वे दूर द्वीपान्तरोंकी ओर लक्ष न दे सके। परिणाम यह हुआ, कि वहाँके राज्य स्वतन्त्र हो गये।

(२) ब्राह्मणोंको राजाश्रय मिलना बन्द हो गया। अतएव उन्होंने हताश हो प्राचीन विद्याओंका पठन पाठन और उपदेश देना छोड़ दिया। जीविका के लिये उन्हें अन्य साधनोंका सहारा लेनेके लिये विवश होना पड़ा। पहिले वह वेदादि विद्या अर्थ सहित पढ़ते थे, परन्तु इस समय केवल जीविकार्थ मूल पाठ ही पढ़ने लगे। परिणाम यह हुआ, कि समय बीतनेके साथ साथ वेद मंत्रोंके गूढ़ और पारमार्थिक अथ स्मृतिगत हो चले। क्षत्री,

वैश्य, आदिको वेद पढ़नेकी मनाई हुई, कहा गया, पढ़नेसे पाप भागी होना पड़ता है।※

(३) देश परदेशका सारा व्यापार वाणिज्य और व्यवसाय रुक गया। समय अशान्तिपूर्ण था। सब अपने अपने प्राण और धनकी रक्षामें व्यग्र रहते थे। फलतः वैश्य और क्षत्री समुदाय वेदाध्ययनकी ओर लक्ष न दे सका।

(४) जो वैश्यगण व्यापारादिके कारण विदेश गये हुए थे, वे अशान्तिके कारण स्वदेश न लौट सके। वे जहाँके तहाँ रह गये और वहाँके निवासी बन गये। अतः उन्हें यहाँसे जो कुछ धर्म-ज्ञान मिलता था, वह बन्द हो गया। परिणाम यह हुआ, कि

※ कहा गया है, कि "श्रवणोत्र पुजतुभ्यां, श्रोत्र परिपूरणं, उच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे हृदय विदारणमित्यादि (वेदान्त सूत्र अ० १ पा० ३ सू० ३८) अर्थात् यदि शूद्र वेद श्रवण करे तो उसके कान सीसा और लाख इत्यादिसे बन्द कर देने चाहिये। वेदोच्चार करे तो जीभ काट लेनी चाहिये और वेद मन्त्रोंको धारण करे, तो हृदय विदारण करना चाहिये।

मेक्समूलर और एनीवेसेण्ट आदि परधर्मी लोग, जिन्हें हिन्दू नामधारी आर्यगण म्लेच्छकी उपमा देते हैं, उन्हें वेदाध्ययनका अधिकार है या नहीं, यह बात तो दूर रही, परन्तु उनके किये हुए वेदार्थको सर्वथा सत्य मानकर उनका मनन करते हैं। इतना ही नहीं परन्तु उन्हें 'मोक्षमूलरः' (मोक्षस्यमूलम् राति अर्थात् गृह्णाति) ऐसी उपाधि भी देनेसे नहीं चूकते। एनीबेसेण्टकी भी विदुषी और पूजनीया महिलाओंमें गणना होती है। वे स्वयं अवतारी कहलानेका श्रेय प्राप्त कर चुकी हैं, और अन्य अवतारोंका प्रादुर्भाव करनेवाली भी बनती हैं।

उन्होंने अपने लिये वहीं समय, संयोग, जलवायु और नीति-रीतिके अनुकूल धर्म स्वरूपकी रचना कर, पृथक धर्मकी योजना कर ली और समय व्यतीत होने पर वहींके लोगोंमें मिल जुल गये।

इस प्रकार शान्ति और वास्तविक शिक्षाके अभावसे लोगोंमें लोभ, मोह, द्वेष और अभिमान आदि दुर्गुणोंने वास किया। सबको स्वार्थने अन्धा बना दिया और प्राचीन रीति-रवाज तथा धर्म-कर्मको धक्का पहुंचा। परिणाम यह हुआ, कि अज्ञानतासे लाभान्वित हो लोग मनमानी करने लगे। यद्यपि क्रिया मात्र कर्म हैं परन्तु संस्कार करते समय, शुभाशुभ प्रसंगके समय, और यज्ञादिक समयकी क्रियाओंको ही कर्म गिनने लगे। साथ ही ब्राह्मणोंने 'ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः' 'वर्णानाम् ब्राह्मणो गुरु, ऐसे ऐसे वाक्योंका प्रचार कर आर्यों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया।

यद्यपि उपरोक्त प्रकारसे कितनेही ब्राह्मण स्वार्थ-सिद्धि करते थे, परन्तु ऐसा होते हुए भी, क्षत्री और वैश्यादिकका विवाह, मृत्यु आदि प्रसङ्गोंपर यथोचित और विधिवत् संस्कार कराते थे। इससे रूपान्तर हो जानेपर भी, कर्मका प्रचार कायम था। इस गिरी हुई दशामें भी, मनुस्मृतिमें कहे हुए—

'धृति क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥

अर्थात् (१) धैर्य रखना (२) क्षमा—कष्ट सहन करनेकी शक्ति रखना (३) मनोविकारोंका दमन करना (४) चोरी आदि कुकर्म न करना

(५) तनमनकी शुद्धता रखना (६) इन्द्रियोंको स्वाधीन रखना (७) धारणा शक्ति रखना (८) विद्या ज्ञान प्राप्त करना (९) सत्याचरण करना और (१०) क्रोध न करना यह धर्मके सर्व-मान्य दस लक्षण आर्योंके अन्तःकरणसे पृथक न हुए थे। परन्तु, वेदाध्ययन कम हो जानेके कारण पापाचार भी बढ़ता जाता था। ऐसा होते हुए भी, वे सत्यपर विशेष आस्था रखते थे। त्रिवर्णकी अज्ञानताके कारण स्मृति-कालमें ब्राह्मणोंका प्रभाव बहुत बढ़ गया। उनको छोड़, कोई दूसरा कर्म करनेवाला न रहनेके कारण प्रजा उन्हें उनके इच्छानुसार, मान सम्मान तथा आवश्यक वस्तुएँ दे, तृप्त करने लगी। यह देख दुराचारियोंके मुँहमें पानी भर आया और उन्हें भी ब्राह्मण बननेकी प्रबल इच्छा हो उठी। सर्व प्रथम राजा रावणने अष्ट्रेलिया, अफ्रिका और आस पासके टापुओंमें रहनेवाले सेमेटिक म्लेच्छोंको अधीन कर, उन्हें भारतके दक्षिण भागमें बसाया था। ये अभक्ष्यको भक्षण करनेवाले और मनुष्य व पशुओंकी बलि देनेवाले जङ्गली लोग थे। वही राक्षस नामसे पुकारे जाते थे।

यज्ञादि क्रिया करनेके लिये और वानप्रस्थाश्रमी हो कालक्षेप करनेके लिये जो लोग एकान्त—अरण्यमें जाकर रहते थे, उन्हें वह बारम्बार त्रास देते थे। रावणकी मृत्युके बाद गौतम, अगस्त्य, परशुराम, पाण्डव आदि आर्यगण प्रसङ्गवशात् वहाँ निवास करने के लिये, युद्ध करनेके लिये, राज्य करनेके लिये किंवा उपदेश देनेके लिये गये थे। म्लेच्छगण इन लोगोंके उपदेशादिके प्रभावसे कुछ

सुधर गये थे और आर्यों की चाल, नीति-रीति तथा उनके धर्मको कुछ कुछ मानने लगे थे। यह सब कुछ होते हुए भी उन्होंने अपने जाति-स्वभावको जलाञ्जलि न दी। वेद्कालमें धर्म विरुद्ध आचरण करनेवाले लोग राक्षसोंके निवास स्थान अर्थात् दक्षिण भारतमें भेज दिये जाते थे। * (जैसे इस समय लोग कालेपानी भेजे जाते हैं) कुछ दिनोंके बाद वह निर्वासित मनुष्य वहाँके लोगोंमें मिलजुल गये और उनके संसर्गसे वह भी मांसाहारी और अगम्यगामी बन गये। इन राक्षस और उनमें सम्मिलित वेद्-भ्रष्ट व देश निर्वासित आर्य-वंशजोंने इस अशांतिसे अनुचित लाभ उठानेका निश्चय कर, अपने हेतुको सिद्ध करनेके लिये, द्वेष-भावसे वेदोंको नष्ट कर देनेका विचार किया। फलतः उन्होंने वेद-ज्ञानके विरुद्ध मांस भक्षण और जारकर्म वर्द्धक, पशुत्व प्रवृत्तिके अनुकूल तत्वोंसे परिपूर्ण, अवाच्य और अमङ्गल ग्रन्थोंकी रचना कर, वेदके बहाने जनतामें अपनी जङ्गली कल्पनाओंका प्रचार करनेका प्रयत्न किया।

हेमाद्रि रामायणपरसे ज्ञात होता है, कि म्लेच्छगणोंके संसर्गसे भ्रष्ट और पतित दशाको प्राप्त प्रवर्त्तक नामक ब्राह्मणने अपने

---

* ययातिने अपने पुत्र तुर्व्वसुको अपनी आज्ञा भंग करनेके कारण निर्वासित कर दिया था। विश्वामित्रने भी इसी कारणसे अपने ५० पुत्रोंको तथा सगर राजाने अपने पिताके शत्रु केरल, शक, यवन, और काम्बोज आदिको दक्षिण भेज दिया था। देखो ऋग्वेद ऐतरेय ब्राह्मण, महाभारत, हरिवंश और विष्णु पुराण इत्यादि।

बालस्नेही वसु राजाकी सहायतासे देश विदेशमें भ्रमण कर वेदके नामपर अनाचारके प्रचारका यत्न किया था। बादको उसके मतानुयायियोंने अनेक वेद विरुद्ध ग्रन्थोंकी रचना कर आर्य लोगोंमें सम्मिलित हो, हिंसादि कर्मों का प्रचार किया और आप भी ब्राह्मण बन गये।

ब्रह्माण्डमें सञ्चार करनेवाला वायु ही जीवनका हेतु है, अतः उसको शुद्ध रखनेके लिये हव्य * पदार्थों द्वारा नियमित रीतिसे होम करनेपर, उसके दुर्गन्धपूर्ण तत्वोंका नाश और आरोग्यताकी वृद्धि होती है। आरोग्य ही स्वर्ग सुख है, इसलिये आर्यगणोंमें वेदकालसे सामाजिक नियम था, कि प्रत्येक मनुष्यको प्रातःकाल और सायङ्काल स्नानादिसे शुद्ध होकर सुगन्धित द्रव्यों द्वारा होम करना चाहिये। रात्रिके मलमूत्रादि दुर्गन्धका प्रातःकालके हवन द्वारा और दिनके दुर्गन्धका सायङ्कालके हवनसे परिहार होता है। इतना ही नहीं, प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमाको सर्वत्र आर्यावर्त्तमें बड़े बड़े यज्ञ होते थे। जिससे वायुकी शुद्धि होकर उसका जल-वृष्टिके साथ निकट सम्बन्ध होनेके कारण अच्छी वर्षा होती थी। अनेक प्रकारसे सुख शान्ति हो, यही उद्देश्य ध्यानमें रख हव्य पदार्थ निश्चित किये गये थे।

---

* हव्य पदार्थोंका विवरण (१) पुष्टिकारक—घी, दूध, बादाम इत्यादि (२) मधुर—शर्करा, खीर, इत्यादि (३) सुगन्धित—चन्दन, खस, अम्बीर, कस्तूरी, अगर इत्यादि (४) अन्न—चावल, यव, तिल इत्यादि (५) रोग-नाशक—गुर्च, गुग्गुल, जायपत्री, ब्राह्मी, लोबान इत्यादि।

मनुष्य, पशु इत्यादि जीव अमेध्य अर्थात् अपवित्र हैं, अतः इनको हवनके काममें न लाना चाहिये। पशुका अर्थ उत्पन्न मात्र पदार्थसे भी है। यज्ञमें अन्य सुगन्धित पदार्थों के साथ पुराने धानके चावल भी हव्य पदार्थों में गिने गये हैं। यही मेध्यहवन करने योग्य पशु है। इसके भिन्न भिन्न भागोंको वपा, मांस, अस्थि इत्यादि पारिभाषिक नामोंको ब्राह्मण ग्रन्थोंमें स्पष्ट किया है। उपरोक्त प्रकारकी हवन-विधिसे किस किसने यज्ञ किया और उस समय पुरोहित कौन कौन थे, इस विषय पर ऋग्वेद ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चक ८ खण्ड २१-२२ में लेख भी है। इसके अतिरिक्त वेदमें **"मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे। मानस्तोके तनये मानआयुषि, मानो गोषु मानो अश्वेषुरी रिषः"** इत्यादि मन्त्रोंमें इन भावों और अहिंसाका ही अनिवार्य स्रोत बहता हुआ मालूम होता है। परन्तु वेदकी सत्याज्ञा छोड़, कुछ स्वार्थियोंने यज्ञमें गाय, बकरा, घोड़ा और मनुष्य आदिका बलिदान कर देनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है—इस प्रकार अर्थका अनर्थ कर भोलेभाले लोगोंको समझाया और हिंसा-यज्ञ करनेकी प्रथा प्रचलित की। उन्होंने वेद मन्त्रोंके इसी प्रकार अनेक अमङ्गल अर्थ बतलाकर लोगोंमें केवल भ्रष्टाचार और दुराचारके प्रचारका प्रयत्न किया।

सारांश यह है कि कितनी ही वेद-विरुद्ध और साधारण बुद्धिवाले मनुष्योंके भी माननेमें सङ्कोच हो, ऐसी बातें बढ़ा

दी गई हैं। यजुर्वेदके प्रथम १८ आध्यायोंमें दृश पूर्णमास, सोमयज्ञ और अग्निचयन इत्यादि विषयोंकी संहिता, जिसका स्पष्टीकरण शतपथ ब्राह्मणके नवें काण्डमें दृष्टिगोचर होता है, तथा अश्वमेध, नरमेध इत्यादि विषय जिनका उल्लेख २२-३६ और चालीसवें अध्याय संहिता आदिमें पाया जाता है उसका तात्पर्य कुछ दूसरा ही था परन्तु स्वार्थ और उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उन्होंने तत्सम्बन्धी और अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। इतनाही नहीं, बल्कि उन्होंने मन्वादि स्मृतियोंमें नवीन श्लोक मिलाकर बहुत कुछ घटा बढ़ा दिया है। ※ हरिन, मेंढक, अश्वादि पशुओंकी हिंसा करनेके तत्व शामिल किये। मेक्स मूलर व मूर जैसे विदेशी अन्वेषणकर्ताओंका भी यही मत है।

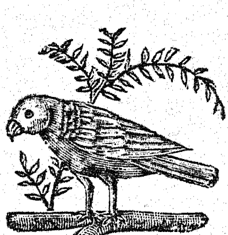
इस प्रकार अशान्तिके युगमें कुछ स्वार्थी उपर्युक्त प्रकारके घृणित और हिंसादि विधानोंका प्रचार करने लगे। यद्यपि ज्ञानी और विचारवान द्विज उनसे किसी प्रकारका भी सम्बन्ध न रखते थे, तथापि अज्ञानी और अपढ़ जनता, चित्तमें उपरोक्त प्रकारकी

※ भोजराजाने स्वरचित संजीवनी इतिहासमें लिखा है कि व्यास व उनके शिष्योंने महाभारतकी रचना दशहजार श्लोकोंमें की थी। इस समय वह बढ़ कर ९५८२६ श्लोकका हुआ है और आगे न जाने कितना बढ़े? कहां दशहजार और कहां पंचानवे हजार आठसौ छब्बीस !!!

मन्वादि स्मृतियोंमें हिंसाका आदेश देनेवाले श्लोक सम्मिलित किये गये हैं परन्तु उन्हीं ग्रन्थोंमें अन्यत्र इस घृणित कर्मके निषेधार्थं अनेक जोरदार श्लोक दृष्टिगोचर होते हैं।

पाशविक वृत्तियोंसे घृणा रखते हुए भी, उनकी बातोंमें आकर यह मानने लगी, कि यह कार्य्य घृणित होनेपर भी वेदसम्मत हैं। उस ओर ब्राह्मणोंको भी राज्याश्रय मिलना बन्द हो गया था, अतः वह भी स्वार्थवश क्रिया कर्म्म कराते समय दक्षिणादिके नामपर बल पूवक धन वसूल करते थे। इन दोनों बातोंसे आर्य प्रजा ऊब उठी। इस बातसे लाभान्वित हो, जाति बहिष्कृत बृहस्पति नामक ब्राह्मणने चार्वाक नामक एक मनुष्यको एक नवीन धर्मकी स्थापना करनेके लिये उत्साहित किया।

इस युगमें जनतापर ब्राह्मणोंका ऐसा प्रभाव पड़ गया था, कि वे जो कुछ कहें वही धर्म है—यह उसकी धारणा हो गयी थी। इसीलिये हमने उसे ब्राह्मण धर्मके नामसे पुकारा है और उस युगको ब्राह्म कालकी संज्ञा दी है। क्योंकि, इस समय प्रजा पर ब्राह्मणोंकी सत्ताका ही प्राबल्य था।



भारतमें परदेशी प्रजा ।

वैदिक और ब्राह्मणकालमें अर्थात् पुराणोंकी सृष्टि होनेके पूर्व गत प्रकरणमें वर्णित सेमेटिक म्लेच्छोंके अतिरिक्त भारतमें※ कितनी ही अन्य जातियाँ भी आ बसी थीं, उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :—

(१) **द्राविड़**—यह जाति दक्षिण महासागरसे आई थी। यह लोग नाग-पूजा, वृक्ष-पूजा और पाषाण-पूजा करते थे। खेती-पर निर्वाह करते थे। मुर्गी-मुर्गेका बलिदान भी करते थे। इन लोगोंके संसर्गसे हिन्दुओंमें नाग-पूजा, वृक्ष-पूजा और भूत-प्रेतादिकी पूजाका प्रचार हुआ। देवोंको मुर्गी-मुर्गे और बकरे-भेड़ेका बलिदान इनकी प्रथाका अनुकरण है।

(२)**सिथियन**—इनकी दो शाखायें थीं, शक और हूण। यह मध्य ऐशियासे आये थे। इन्होंने भारतवर्षमें राज्योंकी स्थापना की थी। वीर विक्रमादित्यने इन लोगोंको पराजित कर जङ्गलकी ओर खदेड़ दिया था। जाट, कोल, धाराला, बाघरी आदि पहाड़ी

※ इस समय भारतवर्षमें आर्य प्रजा हिन्दू नामसे पुकारी जाती है। हिन्दू शब्दका अर्थ काफिर गुलाम आदि बतलाया जाता है। देशके कुछ लोग इस नाम से घृणा करते हैं। वे कहते हैं, कि मुसलमानोंने धर्मान्ध हो द्वेष पूर्वक यह नाम रक्खा है। दूसरी ओर कुछ लोगोंका कहना है, कि हमारा हिन्दू नाम ठीक है। यह मुसलमानों द्वारा निर्मित नाम नहीं है, परन्तु उन्होंने द्वेष पूर्वक केवल उसका अर्थ बुरा लिख दिया है। खर कुछ

लोग सिथियन जातिके हैं। यह लोग हिन्दुओंके साथ रहते रहते सुधर गये हैं। खेतीपर निर्वाह और हिन्दुओंके देवताओंकी पूजा करने लगे हैं। जो लोग जङ्गलमें जा बसे, वे भील, मीना, नाग, कन्ध, सन्ताल, गोंड़ आदि कहलाये। यह अनार्य जातियाँ अब भी विद्यमान हैं।

(३) तुरानी—सिथियन लोगोंके साथ तुरानी नामक एक नीच जाति भी मध्य एशियासे यहाँ आ बसी थी। यह लोग सिथियन लोगोंके गुलाम थे। भङ्गी, चमार आदि अस्पृश्य मानी जानेवाली जातियाँ इन लोगोंसे उत्पन्न हुई हैं। अब यह लोग भी हिन्दुओंके ही देवताओंको पूजते हैं।

(४) ग्रीक—ई० स० पू० ३२७ में सिकन्दर बादशाहने भारत पर आक्रमण किया था, तबसे यहाँ ग्रीक लोग भी आ बसे और हिन्दुओंमें मिल जुल गये।

पाठकोंको ध्यान रहे, कि इस प्रकार परदेशसे आई हुई अनेक प्रजाओंको पुराण बनानेके बाद ब्राह्मणोंने हिन्दू नामक एक महान जातिमें शामिल किया है।

भी हो आज भारतवर्षमें २२ करोड़से अधिक मनुष्य ऐसे बसते हैं जो हिन्दू नामसे पुकारे जाते हैं। इन हिन्दुओंमें उत्तर निवासी आर्य और दक्षिण भारतके अनार्य तथा और भी अनेक विदेशी प्रजायें सम्मिलित हैं। वे सभी हिन्दू नामक महाजातिमें सम्मिलित हो गई हैं।

लोकायतिक अथवा चार्वाक धर्म ।

वृहस्पति नामक ब्राह्मणको अन्य ब्राह्मणोंने किसी कारण वश जाति बहिष्कृत कर दिया था।* अतः ब्राह्मणों पर क्रुद्ध हो उनकी सत्ताका नाश करनेके लिये उसने चार्वाकको उत्साहित कर लोकायतिक (लोगोंमें साधारण प्रकारसे माना जा सके ऐसा) धर्मके प्रचार करनेका प्रयत्न किया। चार्वाकका जन्म युधिष्ठिर शक ६६१ (ई० स० पू० २४३९) में वैशाख सुदी १५ के रोज अवन्ति प्रदेशान्तर्गत शङ्खोद्धार नगरीमें हुआ था। उसके पिताका नाम इन्दुकान्त और माताका नाम स्रग्विणी था।

वृहस्पतिके आदेशानुसार सर्वत्र व्याख्यान दे दे कर चार्वाक कहने लगा कि :—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्व पिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥
मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्ति कारणम् ।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम् ॥

अर्थात् जब यज्ञमें मारे हुए पशुको स्वर्ग प्राप्त होता है तो स्वर्ग सदृश अद्वितीय सुखका स्थान पशुको न देकर यज्ञ करने वाले यजमान अपने पिताको मारकर उसे स्वर्ग क्यों नहीं भेजते ?

---

* अपनी बहिनके साथ कुकर्म करनेसे वृहस्पति जाति बहिष्कृत हुआ था, ऐसा एक जैन ग्रन्थमें उल्लेख है ।

यदि श्राद्ध और तर्पणके द्वारा मृत्यु प्राप्त मनुष्य तृप्त किया जा सकता है तो प्रवासी मनुष्यको खान पानका सामान अपने साथ रखनेकी क्या जरूरत है ?

चार्वाक इस प्रकारके आक्षेप कर जनताको समझाने लगा कि सृष्टिका रचयिता कोई है ही नहीं—प्रत्यक्ष प्रतीत नहीं होता। पृथ्वी, वायु, तेज और जल यह चार तत्व प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। इन्हींसे सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। यह तत्व स्वभावसे ही सृष्टि कर्म करते हैं। जब चारोंका अनेक प्रकारसे योग होता है, तब जैसे कत्था, चूना और पानके योगसे लाल रङ्ग उत्पन्न होता है, उसी प्रकार जीवादि उत्पन्न होते हैं। चैतन्य जीव जड़ तत्वोंसे भिन्न नहीं है। शरीर भस्मीभूत होनेपर पुनः नहीं प्राप्त होता, अतः पुनर्जन्म कुछ भी नहीं है। मरने ही का नाम मोक्ष है। जबतक इस संसारमें जीवित रहे तबतक इच्छानुसार खा पीकर स्त्री सेवनादिसे आनन्द भोग करे। यही स्वर्ग है और दुःख भोगना नरक है। हमको चाहिये, आजन्म सुख भोग करें। ऋण लेकर भी मिष्टान्न उड़ायें और जिस प्रकार आनन्द प्राप्त हो उस प्रकार रहें। वर्णाश्रमादि क्रियाओंसे कुछ लाभ नहीं। अग्निहोत्र, त्रिदण्ड, संन्यास, भस्म लेपन इत्यादि बातें बुद्धि और बलहीन लोगोंने जीविकार्थ गढ़ ली हैं। इस लोकमें दिये हुए दानसे यदि परलोकवाले मनुष्य तृप्त होते हैं तो मकानकी छतपर बैठे हुए लोगोंको उसी प्रकार भोजनादि क्यों नहीं पहुंचते ! इस देहसे निकल कर प्राण यदि स्वर्ग जाता है तो

वह स्वजनोंके विरहसे पीड़ित हो वापस क्यों नहीं आता। (जिसमें जानेकी शक्ति है क्या वह आ नहीं सकता ?) इन सब बातोंसे ज्ञात होता है कि मृत्यु प्राप्त मनुष्योंकी प्रेतादि क्रिया कर्मोंकी सृष्टि ब्राह्मणोंने केवल जीविकार्थ की है। इसके अतिरिक्त यह और कुछ नहीं है।

बेदोंमें अश्वका लिङ्ग यजमान पत्नीके हाथमें लेनेका आदेश दिया गया है। उनमें मांसादि सेवन करना बतलाया है और अग्राह्य बातोंका उल्लेख किया गया है। उनमें यावनिक भाषाके शब्द पाये जाते हैं। अत: इसमें शक नहीं, कि त्रयोवेदस्य कर्त्ता रश्चण्ड मुण्ड निशाचरा: ※ वेदके रचयिता ठग और निशाचर हैं। अत: यहांके सब लोगोंको यह लोकायतिक धर्म स्वीकार करना चाहिये। इत्यादि बतलाकर धर्म-कर्मादिसे बिलकुल विपरीत और स्वेच्छाचारको परिपुष्ट करनेवाले उपदेश द्वारा वह अपने धर्मके प्रचारका प्रयत्न करने लगा। स्वेच्छाचारी और अनीतिप्रिय मनुष्योंको छोड़, जनताने इसे स्वीकार न किया। जिन्होंने इसे स्वीकार किया उनमें भी चार्वाकका देहान्त हो जानेपर

※—ऋग्वेदके दशवें मंडलमें जर्भरी और तुर्फरी शब्द आते हैं। जर्भरीका अर्थ पालनकर्ता और तुर्फरीका अर्थ शत्रुको मारनेवाला होता है। इन शब्दोंका उच्चारण यावनिक भाषाके सदृश देखकर चार्वाकने उपरोक्त आक्षेप किये और तत्कालीन ब्राह्मणोंका कथन था, कि वेदमें हिंसाका आदेश है; अतः चार्वाकने उपरोक्त प्रकारकी टीका की! इन बातोंसे विदित होता है, कि वह वेदोंके सत्यार्थसे सर्वथा अनभिज्ञ था।

(ई० स० पू० २३७३) के बाद (१) देहकोही ईश्वर माननेवाले (२) मनको ही ईश्वर माननेवाले (३) प्राण वायुको ही ईश्वर माननेवाले और (४) इन्द्रियोंको ही ईश्वर माननेवाले—इस प्रकार चार मतपन्थ हो गये ।

चार्वाकके बाद कुछ दिनोंमें इस धर्मका क्षपणक नामक एक आचार्य उत्पन्न हुआ । उसने भी इस धर्मके प्रचारार्थ भगीरथ प्रयत्न किया था परन्तु इस धर्ममें सामान्य लोगोंकी धर्म भावनाको उत्साहित करनेवाली कोई योजना किंवा ग्रन्थ न होनेके कारण चार्वाकके जीवन कालमें जिन लोगोंने इसका स्वीकार किया था, उनके वंशजोंको छोड़ अन्य लोग इसमें सम्मिलित न हुए। फल यह हुआ कि ब्राह्मण धर्मका अस्तित्व और प्राबल्य ज्योंका त्यों अक्षुण्ण बना रहा ।

शैव धर्मावलम्बियोंने इस धर्मवालोंका बड़े जोरोंसे विरोध किया । कहा जाता है, कि उन्होंने इनके तीन पुरोंका नाश कर इस धर्मका मूलोच्छेद कर डाला । परन्तु, शङ्करदिग्विजय देखनेसे ज्ञात होता है, कि ऐसा नहीं हुआ । ईस्वी सनकी आठवीं शताब्दीमें भी इस धर्मके अनुयायिओंका अस्तित्व भारत वर्षमें पाया जाता था । इस समय इस धर्मके अनुयायिओंकी संख्या नहींके बराबर है ।

जैन धर्म ।

इस धर्मके ग्रन्थोंके अवलोकनसे यह धर्म अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है। जैनी लोग इसको अनादि मानते हैं। जैन मतमें अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी काल चक्रके दो विभाग माने हैं। ऐसे काल चक्र अनन्त होते हैं। इस समय अवसर्पिणी अर्धचक्रका पाँचवाँ काल है। इसमें घटतोका पहरा है। यह पाँचवाँ काल साढ़े अठारह हजार वर्षके उपरान्त समाप्त होगा, फिर छठा काल एक्कीस हज़ार वर्षका प्रारम्भ होगा। उस समय घटते २ मनुष्योंका डील एक हाथका और आयु २० वर्षकी रह जायगी। महा भयङ्कर कष्ट उस कालमें प्राणियोंको होंगे। छठे कालके अन्तमें एक छोटीसी प्रलय होगी जिसके पश्चात फिर उत्सर्पिणी अर्ध चक्र प्रारम्भ होगा। उत्सर्पिणीमें उन्नति नित्य प्रति होती रहती है। जो प्राणी कि अवसर्पिणी कालके दु:खोंसे बच रहेंगे वह उत्सर्पिणी कालमें उन्नति करनी प्रारम्भ करेंगे। उत्सर्पिणी कालके बयालीस हज़ार वर्षके व्यतीत हो जानेके पश्चात उसका तीसरा काल प्रारम्भ होगा। उसकी अवधि ४२००० वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर की है। उसमें प्रथम तीर्थंकर जिन वाणी द्वारा फिर धर्मको स्थापित करेंगे और उसी कालमें २३ तीर्थंकर और उत्पन्न होंगे जो लोगोंको धर्म उपदेश करेंगे। उसके पश्चात् फिर पृथ्वीकी रचना भोग भूमिकी सी हो जायगी। उत्सर्पिणीका चतुर्थ काल दो कोड़ाकोड़ी सागरका, पाँचवाँ काल तीन कोड़ा-

कोड़ी सागरका, और छठा काल चार कोड़ाकोड़ी सागरका होता है। तीसरे कालमें जो एक कोड़ाकोड़ी सागरमें ४२००० वर्ष कम हैं उन्हींमें एकीस एकीस हज़ार वर्षके पहले और दूसरे काल होते हैं। ऐसी ही अवधि अवसर्पिणी अर्ध चक्रके विभागोंकी होती है, परन्तु उत्सर्पिणीसे उल्टे रूपमें। अवसर्पिणी अर्धचक्रके चतुर्थ कालमें पृथ्वीकी रचना भोग भूमिकी नहीं रहती, बल्कि कर्म भूमिकी हो जाती है। इसी चतुर्थ कालमें २४ तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं और धर्म उपदेश द्वारा मोक्ष मार्गको दर्शाते हैं।

वर्त्तमान अवसर्पिणीके पहिले तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेवजी थे। इनका दूसरा नाम आदिनाथ भगवान भी है। यह नाभिराय चौदहवें कुलकरके पुत्र थे। इनकी माताका नाम मरु देवी था। भरत चक्रवर्त्ती इन्हींके ज्येष्ठ पुत्र थे। तीर्थङ्कर अठारह दोषोंसे रहित होते हैं। तीर्थङ्कर शब्दका अर्थ तीर्थका निर्माणकर्त्ता है और तीर्थ पायाब रास्तेको कहते हैं, अर्थात् तीर्थङ्कर शब्दका अर्थ संसार सागरसे सुगमतासे पार करा देनेवालेका है। भगवान ऋषभदेवजीका उल्लेख हिन्दू मतके शास्त्रोंमें भी आया है, वाराह पुराण, अग्निपुराण और श्री मद्भागवतमें विशेष करके आपकी जीवनीका वर्णन पाया जाता है। हिन्दू मतमें ऋषभदेवजीकी गणना अवतारोंमें है। हिन्दी विश्वकोषके रचयिता लिखते हैं कि ऋषभदेवजीने ही सम्भवतः लिपि विद्याके लिये लिपि कौशलका उद्भावन किया था। श्री मद्भागवतमें लिखा है कि जन्म से ही ऋषभदेवजीके अङ्गमें सब भगवत लक्षण झल-

…ते थे। सर्वत्र समता, उपशम, वैराग्य, ऐश्वर्य्य महैश्वर्य्यके साथ उनका प्रभाव बढ़ता गया। अन्तमें ऋषभदेवजीने संसारको त्याग कर संन्यास ग्रहण किया और सर्वज्ञता प्राप्त कर जिन वाणी अर्थात् श्रुति द्वारा लोगोंको सत्य धर्मका उपदेश किया, ऐसा जैनी लोग मानते हैं।

इस धर्मके तीर्थङ्करोंमेंसे भगवान नेमिनाथजी २२ वें तीर्थङ्कर महाभारतके समय हुए थे। यह बाल ब्रह्मचारी रहे। इनकी मँगेतर राजमती उर्फ राजल राजकन्या थीं। इनके कुटुम्बीजन बरात साजकर इनका विवाह करनेके लिये चले। रास्तेमें एक स्थान पर इन्होंने कुछ पशुओंको बँधे हुए देखा और यह सुनकर कि यह उनकी बरातमें आये हुए मांसाहारी राजाओंके भक्षणार्थ बाँधे गये हैं, परम दयालुताकी लहर उनके हृदयमें उमड़ आई। यह लहर अनन्त वैराग्यका रूप धारण कर गई। भगवान नेमिनाथजीने तुरन्त अपना कङ्कन इत्यादि तोड़-ताड़कर फेंक दिया और संसारसे विमुख हो, संन्यास धारण कर, गिरनार पर्बत पर जा तप करने लगे और वहींसे सर्वज्ञता और तीर्थङ्कर पदवीको प्राप्त होकर अन्तमें मोक्षको सिधारे। इनके वैराग्यको देखकर राजमती राजकन्याके हृदयमें भी वैराग्य उत्पन्न होगया और उसने भी संसारको त्याग कर दिया।

तेईसवें तीर्थङ्कर श्रीपार्श्वनाथजी हुए हैं। इनके समयको करीब २७००-२८०० वर्ष व्यतीत हुए। अजैन जनतामें और सब तीर्थङ्करोंकी अपेक्षा पार्श्वनाथजी अधिक विख्यात हैं।

जैनियोंका परम पवित्र तीर्थ सम्मेदशिखर इन्हींके नामसे अब पाश्वनाथ हिल (पर्वत) कहलाता है। पार्श्वनाथजीकी मूर्त्तियां जैन मन्दिरोंमें सर्पके फनसे, जो इनका चिन्ह है, सहजमें पहचानी जा सकती हैं। कहा जाता है कि एक समय एक मनुष्य लकड़ी काट रहा था। उसमें एक सर्पका जोड़ा बैठा हुआ था। पार्श्वनाथ जी उस ओरसे निकले और अपने ज्ञाननेत्र द्वारा उस सर्पके जोड़ेका कष्ट देखकर लकड़ी काटनेवालेको बतलाया कि इस लकड़ीके भीतर सर्पका जोड़ा है। उस समय पारश्र्वनाथजीकी कुमार अवस्था थी। उस लकड़ी काटनेवालेने इनके शब्दोंपर कुछ ध्यान नहीं दिया। अन्तमें उसकी कुल्हाड़ीसे वह सर्पका जोड़ा कट गया। मरकर वह दोनों सर्प नागकुमार जातिके देवोंमें उत्पन्न हुए और उन्होंने एक समय, अपने हितैषी पार्श्वनाथजी की रक्षा वर्षाके घोर उपसर्गोंसे अपने फन उनपर फैला कर की, इसी कारणसे सर्प इनका चिन्ह बन गया।

जैन धर्मके अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी थे। ये महात्मा बुद्धके समकालीन थे। बौद्ध ग्रन्थोंमें भगवान महावीरका ज्ञात पुत्रके नामसे बहुत स्थानोंपर उल्लेख आया है। जैनी उस समय निर्ग्रन्थ कहलाते थे। यूनानी लेखकोंने भी जैनियोंका वर्णन जिम्नोसोफिस्ट (Gymnosophists) के नामसे किया है। बौद्ध मतके शास्त्र मज्झिमनिकायमें (देखो भाग १) एक स्थान पर बुद्धदेवने महानाम नामी व्यक्तिसे ज्ञातपुत्र (भगवान महावीर) और निर्ग्रन्थ (जैनी) लोगोंका वर्णन इस प्रकार किया है :—

म० बुद्ध कहते हैं, "हे महानाम मैं एक समय राजगृहमें गृद्धकूट नामक पर्वत पर बिहार कर रहा था। उसी समय ऋषिगिरिके पास कालशिला (नामक पर्वत) पर बहुतसे निर्ग्रन्थ (मुनि) आसन छोड़ उपक्रम कर रहे थे और तीव्र तपस्यामें प्रवृत्त थे। हे महानाम मैं सायङ्कालके समय उन निर्ग्रन्थोंके पास गया और उनसे बोला 'अहो निर्ग्रन्थ! तुम आसन छोड़ उपक्रम कर क्यों ऐसी घोर तपस्याकी वेदनाका अनुभव कर रहे हो?' हे महानाम, जब मैंने उनसे ऐसा कहा तब वे निर्ग्रन्थ इस प्रकार बोले—'अहो निर्ग्रन्थ ज्ञात पुत्र सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं; वे अशेष ज्ञान और दर्शनके ज्ञाता हैं। हमारे चलते, ठहरते, सोते, जागते समग्र अवस्थाओंमें सदैव उनका ज्ञान और दर्शन उपस्थित रहता है। उन्होंने कहा है, निर्ग्रन्थो तुमने पूर्व (जन्म) में पापकर्म किये हैं उनकी इस घोर दुश्चर तपस्यासे निर्जरा कर डालो। मन, वचन और कायकी समवृत्तिसे (नये) पाप नहीं बनते और तपस्यासे पुराने पापोंका व्यय हो जाता है। इस प्रकार नये पापोंके रुक जानेसे और पुराने पापोंके व्ययसे आयति रुक जाती है। आयति रुक जानेसे कर्मों का क्षय होता है। कर्मक्षयसे दुःख-क्षय होता है। दुःख-क्षयसे वेदना-क्षय और वेदना-क्षयसे सर्व दुःखोंकी निर्जरा हो जाती है। इसपर बुद्ध कहते हैं "यह कथन हमारे लिये रुचिकर प्रतीत होता है और हमारे मनको ठीक जँचता है।"

महावीर भगवान कुण्डलपुर (बिहार) के क्षत्रिय राजा

सिद्धार्थके पुत्र थे। इनकी माता त्रिशला देवी थीं। महावीर स्वामीके जन्मको अबसे २५२३ वर्ष हुये। आप ब्रह्मचारी ही रहे थे। ३० वर्षकी आयुमें आपने संन्यास धारण किया था। ४२ वर्षकी अवस्थामें आपको सर्वज्ञता प्राप्त हुई और ७२ वर्षकी आयुमें सब प्रकारके पुद्गलमई (प्राकृतिक) लेशोंसे मुक्त होकर मोक्ष-क्षेत्रको सिधारे। ४२ वर्षकी अवस्थामें तीर्थङ्कर पदवीको प्राप्त होनेके पश्चात् महावीर स्वामीने ३० वर्ष तक भारतवर्षके वङ्गदेशमें बिहार किया और लोगोंको धर्मोपदेश देते रहे। इन्हींके बिहारके कारण बाराहनसीके पूर्वी देशका नाम बिहार हो गया। महावीर स्वामीका दूसरा नाम बर्द्धमान स्वामी भी था। अनुमानतः बर्द्वान नामी शहर प्रारम्भमें इन्हीं भगवानके नाम पर बर्द्धमान कहलाता था। बिहारके प्राचीन स्मारकोंसे स्पष्ट विदित होता है कि इस देशमें जैनियोंकी कैसी उन्नति रही है। राजा श्रेणिक राजगिरीके स्वामी प्रथम बुद्ध मतावलम्बी थे परन्तु पश्चात्को उन्होंने जैन धर्मको स्वीकार किया। यह बड़े भारी जैन सम्राट गुजरे हैं।

जैन मतमें दो मुख्य सम्प्रदायें, दिगम्बरी और श्वेताम्बरी हैं। इन दोनों सम्प्रदायोंमें बहुत सी बातोंमें मतभेद पाया जाता है परन्तु तत्व भेद बहुत ही कम हैं। श्वेताम्बरी सम्प्रदायके अनुसार महावीर स्वामीका विवाह राजकन्या यशोदाजीके साथ हुआ था और उनके एक पुत्री भी उत्पन्न हुई थी जिसका नाम प्रिय दर्शना था जिसका पति जमाली हुआ। इन दोनों सम्प्र-

दायोंका एक विशेष भेद यह है कि दिगम्बरी सम्प्रदाय तो केवल नग्न मूर्त्तिकी पूजा करते हैं और उनके साधू भी नग्न ही होते हैं। श्वेताम्बरी मतमें दोनों प्रकारके साधू अर्थात् वस्त्ररहित और वस्त्र-सहित माने गये हैं। श्वेताम्बरी मन्दिरोंमें मूर्त्तियाँ वस्त्र सहित अवस्थाको दर्शाती हैं और उनका श्रृङ्गार संसारी विभूतिको दर्शाता है, परन्तु दिगम्बरी मन्दिरोंमें वैराग भाव ही मूर्त्तियोंका होता है।

इन दोनों सम्प्रदायोंके मत-भेदको अनुमानतः १८००, १६०० वर्ष हुए। यह प्रतीत होता है कि सम्राट चन्द्रगुप्तके समयके थोड़े पश्चात् इस मत-भेदका प्रारम्भ हुआ। इतिहासके लेखकोंको अब इस विषयमें सन्देह नहीं रहा कि चन्द्रगुप्त जैन राजा थे, उनके समयमें एक भारी दुर्भिक्ष पड़ा और जैन मुनि-सङ्घके दो दल हो गये। कुछ मुनि तो भद्रबाहुकी अध्यक्षतामें दक्खिनकी ओर इस विचारसे चले गये कि ऐसे दुर्भिक्षकालमें ठीक आच-रणका पालन नहीं हो सकेगा। उस समय दक्षिण देशमें दुर्भिक्ष नहीं था। कुछ मुनि लोग दक्षिणको नहीं गये और उनको दुर्भिक्षकी पूरी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा और अनुमानतः उन्होंने आहार सम्बन्धी आवश्यकताओंके कारण वस्त्र धारण कर लिया। फिर दुर्भिक्षके पश्चात् जब दक्षिणवाले साधू फिर लौट कर आये तो फिर दोनों दलोंमें भेद ही बना रहा। इन्साइक्लोपीडिया-ब्रिटेनिका (जिल्द १५) की सम्मति इन संप्रदायोंके मत-भेदके बारेमें यह है कि प्रारंभिक मत दिगम्बरी है और श्वेताम्बरियोंका पता ईसाकी पहिली शताब्दीके पूर्व नहीं लगता है। श्वेताम्बरी

संप्रदायवाले दिगम्बरी संप्रदायको अपने बादका बताते हैं परन्तु उनको यह स्वीकार है कि प्रथम तीर्थङ्कर स्वयं दिगम्बरी भेष धारण किये थे और अन्तिम तीर्थङ्कर भी वस्त्र रहित थे। डाक्टर वेल्सनकी राय है कि दिगम्बरी पहिले होंगे। अनुमानतः वस्त्ररहितका वस्त्र स्वीकार कर लेना सम्भव है। यदि वस्त्रधारी अपने वस्त्रको त्याग कर दे तो वह निर्लज्ज माना जायगा और उसकी पूजा-प्रतिष्ठा लोकमें नहीं होगी। श्वेताम्बरी लोग स्त्री व शूद्रकी मोक्ष मानते हैं, किन्तु दिगम्बरी लोग नहीं मानते। जैन साधुओंकी बहुत सी शाखायें हैं, परन्तु उनमें अपने अपने सम्प्रदायमें बहुत थोड़ा मत-भेद है। इनमें ८४ शाखायें मुख्य हैं जिनको गच्छ कहते हैं। श्वेताम्बर १२ स्वर्ग और ६४ इन्द्र मानते हैं, दिगम्बर लोग १६ स्वर्ग और १०० इन्द्र मानते हैं। दिगम्बर साधू कमण्डल और मोरके परोंकी पीछी अपने साथ रखते हैं और अपने पास किसी प्रकारके परिग्रह, शास्त्रके अतिरिक्त, नहीं रखते। यह केशोंको मुंड़वाते नहीं हैं वरन् हाथसे उखाड़ डालते हैं। आहारके समय पात्रके स्थान पर हाथसे काम लेते हैं और खड़े खड़े आहार करते हैं। आचार पालनेमें वे अत्यन्त दृढ़ होते हैं और तीव्र कष्टोंको सहन करते हैं। इसे परिषहजय कहते हैं। श्वेताम्बरी साधू भी करीब करीब ऐसा ही आचरण रखते हैं परन्तु वह लंगोटी और चादर रखते हैं।

गत समयमें जैन धर्मके संरक्षक बड़े बड़े राजा हुए हैं। इन्हीं मेंसे ईसाकी बारहवीं शताब्दीमें होनेवाले राजा कुमारपाल

हुए हैं। इनके पश्चात्से जैन धर्मकी अवनति प्रारंभ होगई। सन् १४७४ ई० में लुंपक नामक अहमदाबाद्के एक लेखकने एक नवीन पन्थ, स्थानकवासी नामी, श्वेताम्बर संप्रदायमेंसे निकाला। इस पन्थके अनुयाई मूर्त्ति-पूजाका विरोध करते हैं। सन् १७०६ ई० में सूरत निवासी लवजी बोराने मुख पर पट्टी बांध रखनेका सिद्धान्त निश्चित किया जिस मतको लोग ढुंढ़ीये कहते हैं। विक्रमकी अठारहवीं शताब्दीमें धरमदास नामक मनुष्यने एक "धरमदासका टोला" इस ढूंढ़ियोंके मतमें स्थापित किया। इनके अतिरिक्त और भी कई शाखा विभाग जैन संप्रदायोंमें हुई उनमें तेरह पन्थी और बीस पन्थी दो भेद मुख्य हैं। तेरह पन्थी भेद दिगम्बरी व श्वेताम्बरी दोनोंमें पाया जाता है। परन्तु अहिंसा धर्मके निमित्त किसी संप्रदाय या पन्थमें कोई भेद नहीं है। सभी अहिंसाको परम धर्म मानते हैं।

जैनी केसर या चन्दनकी बिन्दी भी लगाते हैं। गत मनुष्य-गणनाके अनुसार इस धर्मके अनुयाइयोंकी संख्या लगभग १२ लाख है। इनमें अधिकांश लोग व्यापारी और श्रीमान् हैं। जैन धर्मका पुस्तक-भण्डार विशाल है और सब प्रकारके ग्रन्थों अर्थात् सिद्धान्त, साहित्य इत्यादिसे पूर्ण है। गिरनार, अष्टापद, पावापुरी, चम्पापुरी, पालीताना, आबू और संमेद शिखर यह सात उनके मुख्य धाम (तीर्थ स्थल) हैं। इस धर्मके पण्डितोंने योग, प्राणायाम, तत्वज्ञान तथा न्याय, व्याकरण, कोष इत्यादि विषयोंकी ओर अच्छा ध्यान दिया है।

जैन सिद्धान्तका सप्तभङ्गी नय जानने योग्य है। इसीको स्याद्वाद भी कहते हैं। जैन धर्ममें प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द तीनों ही प्रमाण माने जाते हैं। मोक्ष मार्ग सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूप है। सम्यक् दर्शनका अर्थ जिनोक्त तत्वोंमें श्रद्धाका होना है। जीव आदि तत्वोंका ठीक ठीक ज्ञान संशय, विपर्य्य और अनध्यवसायसे रहित सम्यक् ज्ञान कहलाता है। बताये हुए नियमोंके अनुसार आगममें चलना और व्रतों आदिका पालन सम्यक् चारित्र है।

तत्व, ज्ञानके मुख्य विषयको कहते हैं। ये सात (१) जीव (२) अजीव (३) आश्रव (४) बन्ध (५) समवर (६) निर्जरा (७) मोक्ष हैं। इनके ठीक ठीक ज्ञानके विना मोक्षकी अभिलाषा करना व्यर्थ है। सम्यक् दर्शनका बड़ा महत्व है। यह एक दफा प्राप्त हो जाने पर जीव विना मोक्ष पाये नहीं रह सकता।

जीव तत्वसे अभिप्राय आत्माके ज्ञानसे है। आत्मा स्वभावसे परमात्म स्वरूप है और अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यसे भरपूर है। दूसरे शब्दोंमें यह जीव द्रव्यके स्वाभाविक गुण हैं। संसारी जीवकी अवस्थामें यह स्वाभाविक गुण-कर्मोंके मैलके कारण अप्रगट और दबे पड़े रहते हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुतसे शुभ गुण जीव द्रव्यमें हैं जो सब कर्मों से मुक्त होनेपर प्रगट हो जाते हैं। कर्म दो प्रकारके हैं—एक भाव कर्म, दूसरे द्रव्य कर्म। भाव जीवके आन्तरिक भावोंको कहते हैं और इन आन्तरिक भावोंके कारण जीवसे आकर मिलनेवाले

पुद्गल द्रव्यको द्रव्य कर्म कहते हैं। भावार्थ यह है कि आन्तरिक भावोंके कारण संसारी जीवमें एक प्रकारकी आकर्षण शक्ति उत्पन्न हो आती है जो सूक्ष्म पुद्गल वर्गणाओंको (प्रकृति या माद्दाकी सूक्ष्म वर्गणाओं) खींचकर जीवके साथ मिश्रित कर देती है। जीव और पुद्गलके मिश्रित होनेके कारण ही जीवके स्वाभाविक गुण घटते जाते हैं परन्तु यह गुण नष्ट नहीं होते केवल अप्रगट हो जाते हैं। इसी कारण जब जीव पुद्गलसे सम्यक् चारित्र तपादि द्वारा अपने आपको प्रथक कर लेता है तब यह गुण फिर उसकी सत्तामें पूर्ण रूपसे प्रगट हो जाते हैं, और इस कारणसे कि गुण और गुणीमें भेद नहीं होता है फिर सदैवके लिये विद्यमान रहते हैं।

अजीव तत्व पाँच आकाश, काल इत्यादि हैं। इनमें पुद्गल (माद्दा = प्रकृति) द्रव्यका कर्त्तव्य विशेष जानने योग्य है। कारण कि जीवके साथ एक यही अजीव द्रव्य मिश्रित हो सकता है। मिश्रित होनेका स्वरूप ऊपर वर्णन किया जा चुका है। पुद्गलके आश्रव हीसे तीसरा तत्व आश्रव नामी लिया गया है। चौथा तत्व बन्ध है जिससे अर्थ कर्म बन्धनसे है। जीव और पुद्गलका मिश्रित होना ही कर्म बन्धन है। इसके ८ मूल और १४८ उत्तर भेद हैं। शरीरकी रचना व पुनर्जन्मकी दशाओंका निर्माण इत्यादि कर्म बन्धनके ही रूप रूपान्तर हैं। पाँचवाँ तत्व आश्रवके रूपसे सम्बन्ध रखता है, कारण कि बिना नवीन आश्रवके रुके पुद्गलसे सर्वथा प्रथकता कैसे सम्भव है। छटा तत्व निर्जरा

नामी बन्धके नष्ट करनेसे सम्बन्ध रखता है। और सातवां मुक्तिका द्योतक है।

मुक्त जीव परमात्मा कहलाते हैं। वह तपाये हुए सोनेकी भाँति विशुद्ध दिव्य छविको धारण करते हैं। वे अनन्तानन्त ईश्वरी गुणों से पूर्ण और सुशोभित होते हैं। उनके बारेमें "अमरजीवन" और सुखका संदेश" नामी पुस्तकमें निम्न प्रकार उल्लेख मिलता है।

"शुद्ध पूर्ण ज्ञान जिसमें तीनों लोकों—ऊर्ध्व, मध्य और अधो-लोक (पाताल नर्क इत्यादि) और तीनों कालों—भूत, भविष्य व वर्त्तमान—के पदार्थों का ज्ञान शामिल है। अनन्त दर्शन अवि-नाशी – अन्तरहित—कभी कम न होनेवाला सुख और अन्य अनंत परमात्मिक गुण उनकी आत्माओंमें निवास करते हैं। मौत, रोग, रञ्ज, दुर्बलता आदि उनपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते हैं, वह दुर्भाग्य और कष्टकी पहुंचसे परे हैं। जो लोग उनका अनु-सरण करते हैं वह उनके महानपद और उनकी पूर्णताको प्राप्त और सब प्रकारसे उनके सदृश होके लोकके शिखर निर्वाण-क्षेत्र पर जा विराजमान होते हैं और वहां सदैवके लिये अनन्त शांति समता और परमानन्दका उन सब गुणों अर्थात् सर्वज्ञता, अम-रत्व इत्यादिके साथ जो परमात्मिक गुण कहलाते हैं, उपभोग करते हुए तिष्ठते हैं।"

आज तक अनन्तानन्त जीव तीर्थङ्कर व सिद्ध होकर परमात्म पदवीको प्राप्त हो चुके हैं। जैन धर्म परमात्माके गुणोंमें दो गुण

स्वीकार नहीं करता अर्थात् सृष्टिरचना और जगत शासन। इस विषयमें उनका मत सांख्य, पूर्व मीमांसा इत्यादिके सदृश है। कर्मोंका फल देनेके लिये जैन मतमें किसी जगतकर्त्ता या शासक की आवश्यकता नहीं मानी गई है। भाव कर्म और द्रव्य कर्म स्वयम् फल देनेके लिये यथेष्ट हैं। इनका व्योरेवार वर्णन श्री गोमतसारजी आदि शास्त्रोंमें मिलता है। संसार अनादि है। जो जीव मुक्त हो जाते हैं केवल वह ही आवागमनके चक्करके बाहर निकल कर अमरत्व पदको प्राप्त होते हैं, शेष एक योनिसे दूसरी योनिमें भ्रमण किया करते हैं।

धर्म भी अनादि है। जब जब तीर्थङ्कर उत्पन्न होते हैं तब तब वह कालान्तरके दोषोंको दूर करके नये सिरेसे सत्य धर्मका उपदेश देते हैं, पश्चातमें अज्ञानतावश मत मतान्तर हो जाया करते हैं। वर्त्तमान समयमें भारतक्षेत्रसे मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। यह निकृष्ट समय है। अब साढ़े इक्यासी हजार वर्ष तक कोई और तीर्थङ्कर उत्पन्न नहीं होंगे और इस कारण मोक्ष मार्ग भी साढ़े इक्यासी सहस्र वर्षके पश्चात ही फिर भारतनिवासियोंके लिये खुलेगा।

सम्यक् चारित्र दो प्रकारका है, गृहस्थ धर्म और मुनि धर्म। इनमेंसे गृहस्थ धर्म प्रारम्भिक पैढ़ी चारित्रकी है। गृहस्थको श्रावक भी कहते हैं, इसके आठ * मूल गुण होते हैं और छ + आवश्यक

---

* आठमूल गुणमें अभक्ष, अन्याय और निर्दयताके त्यागादि हैं

+ छ क्रियायें देवपूजा, गुरुउपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, दान हैं

क्रियायें हैं। सबसे प्रथम सप्त व्यसन—चोरी, जुवा, शिकार, मांस, मदिरा, वेश्या सेवन, पर स्त्री सेवनका त्याग, इसके पश्चात् पाँच अणुव्रत अर्थात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य (चोरी न करना) अब्रह्म (पर स्त्रीसे बचना) अपरिग्रह (बहुतायतकी लालसा न करना) है, इनके अतिरिक्त और भी व्रत हैं जो गुण और शिक्षा व्रत कहलाते हैं, इनका पालना भी श्रावकके लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। श्रावकके चारित्रके ग्यारह दर्जे हैं जिनको प्रतिमा कहते हैं। प्रतिमा नाम मूर्ति का है। इन ग्यारह दर्जों से उत्तीर्ण हो कर श्रावक धर्म-मूर्ति रूप धारण करता हुआ साधुताको प्राप्त होता है, इसी कारण इन ग्यारह दर्जों को प्रतिमा कहते हैं। साधुओंके भी वही पाँच व्रत हैं, परन्तु अब यह महाव्रत कहलाते हैं और साधूको अत्यन्त दृढ़तासे पालने पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त ध्यान और तपकी और भी विधि साधूके लिये नियमित हैं और आहार बिहारके नियम भी शास्त्रोंमें वर्णित हैं। जब सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रय-मार्गपर चलकर साधू अपने घातिया कर्मों का नाश कर डालता है तब वह सर्वज्ञताको प्राप्त होता है। उस समय वह जीवनमुक्त कहलाता है। फिर जब उसका आयु-कर्म पूर्ण हो जाता है तब उसके बाहिरी स्थूलदेह और दो भीतरी सूक्ष्म, कार्मत और तेजस नामी, शरीरोंका नाश हो जाता है और इस प्रकार विशुद्धतम दशाको प्राप्त हुआ जीव निर्वाण क्षेत्रमें जा विराजमान होता है।

तीर्थंकर भगवान और साधारण सिद्धमें केवल इतना भेद है

कि तीर्थंकर की पदवी एक विशेष पदवी है जो जीवके पिछले जन्म या जन्मोंमें विशेष पुण्य कार्यों द्वारा उत्पन्न होती है। तीर्थंकरको अर्हंत, जिन, जिनेन्द्र आदि भी कहते हैं। इनके गर्भ, जन्म, दीक्षा, तप, मोक्ष पाँच कल्याणक होते हैं जिनमें स्वर्ग आदिके देव भी आकर मनुष्योंके साथ हर्ष मनाते हैं। इनका सभामण्डप कुबेर द्वारा रचा जाता है और अद्भुत शोभा सम्पन्न होता है।

मन्त्रोंमें नमोकार × मंत्र जैन धर्ममें बहुत प्रसिद्ध है और जैन धर्मका महावाक्य "अहिंसा परमो धर्मः" है जिसको जैनी लोग पूर्णतया पालनेका प्रयत्न करते हैं। ब्राह्मण धर्मपर इस धर्मका बड़ा प्रभाव पड़ा है। उन्हें २४ तीर्थंकरोंकी भाँति विष्णुके २४ अवतार निश्चित कर मूर्तिपूजा प्रचलित करनी पड़ी। जैनोंके सात तीर्थोंकी भाँति उन्होंने भी मथुरा, माया, कांची, इत्यादि सात पुरियाँ निश्चित कीं और उनकी महिमा बढ़ानेके लिये उनके चित्ताकर्षक माहात्म्य लिखे। यज्ञमें पशुकी आहुति बन्द करनेके लिये विवश हुये और "अहिंसा परमो धर्मः" स्वीकार करना पड़ा। साधु नाम-धारीको दान देनेकी प्रणालीका आरम्भ हुआ, मूर्तिपूजा तथा उपवासादि जो कष्ट-कारक व्रत इस समय हिन्दुओंमें प्रचलित हैं, उनमें बहुतसे, इससे लिये गये हैं।

× नमोकार मंत्र :—णमों अरहंताणं
णमों सिद्धाणं
णमों आइरियाणं
णमों उवज्झायाणं
णमों लोए सव्व साहूणं

भारतका धार्मिक इतिहास

बौद्ध धर्म.



गौतम बुद्ध।

पृष्ठ संख्या १३२

बौद्ध सम्प्रदाय।

भारतीय आर्यवंशियोंके इतिहासमें, वैदिक धर्मपर बौद्ध धर्म का आक्रमण भी एक स्मरणीय और महान घटना है। उस समय वैदिक धर्म और वर्ण विभागपर एक भीषण आघात हुआ। इससे एक भयानक धार्म्मिक विप्वल मच गया अर्थात् ईसाके पूर्व पाँचवीं या छठीं शताब्दीमें नेपालके पासवाले कपिलवस्तु नामक स्थानमें क्षत्रिय-कुलमें शाक्य मुनि अर्थात बौद्धमत प्रचार करने वालेका जन्म हुआ। यह कपिलवस्तुके राजाके पुत्र थे। राजाका नाम शुद्धोधन था। शुद्धोधनके पुत्रका नाम गौतम बुद्ध था। इन गौतम बुद्धने ही बौद्धमतका प्रचार किया। इनकी माताका नाम मायादेवी और स्त्रीका नाम यशोधरा तथा पुत्रका राहुल था। ये बड़े बुद्धिमान और मेधावी थे। संसारको दुःखमय देख, इस दुःखसे छुटकारा पानेके लिये, और संसारवासियोंको इस दुःखसे मुक्त करनेके लिये, ये उदासीन हो, घर, द्वार, स्त्री, पुत्र, त्याग घरसे निकल पड़े। पहले वे मगधके राजगृह, फिर बुद्ध गया, ..के बाद बनारस जा पहुंचे। यहाँ इनकी साधना अच्छी अवस्थापर जा पहुँची। इनकी जीवनीपर आलोचना करनेसे मालूम पड़ता है, कि प्रयागके पूर्व, गोड़के पश्चिम, हिमालयसे दक्षिण और गङ्गाके उत्तर, इसी सीमाके बीचके अयोध्या, मिथिला काशी, मगध इन समस्त स्थानोंमें वे सरलता पूर्वक अपने धर्मका प्रचार कर सके थे।

उन्होंने परम पुरुषार्थों साधनेच्छुक एक उदासीन सम्प्रदायकी उत्पत्ति की।* शाक्य मुनिने वेदोंपर अनास्था प्रकट की थी, पर वर्ण भेदको मिटानेकी चेष्टा न की थी, परन्तु वर्ण-विचार न कर सबको धर्मोपदेश दिया था। यहाँतक कि अंत्यज जातिके मनुष्य तक उनके भिक्षुदलमें सम्मिलित हो सकते थे। अतः बौद्धधर्मावलम्बी जन समाजमें पहले जैसा वर्ण भेद प्रचलित था, वैसा ही

---

* बौद्ध सम्प्रदायके उदासियोंका नाम भिक्षु है। ये दल बाँधकर रहते हैं। इनके वास-गृहका नाम बिहार है। परन्तु वर्षके कई महीने ये केवल वृक्षके नीचे ही बिताते हैं। ये साधुओंकी भाँति पीले वस्त्र धारण करते, मूँछ दाढ़ी और माथा मुड़ाये रहते हैं। स्त्री सहवास तथा नृत्यगीतादि इन्द्रिय सुखके सभी साधन त्याग देते हैं। ये दरवाजे दरवाजे भीख मांगकर एक ही स्थानपर एकत्र हो, केवल एकवार ही भोजन करते हैं और एक प्रकारसे बैठे बैठे ही सोते हैं। साथ ही किसी कीड़ेके मुँहमें चले जानेके भयसे मुँहपर पट्टी बाँधे रहते हैं। इस सम्प्रदायके मतसे अहिंसाही परम धर्म है। दान, ध्यान, शील, तितिक्षा, वीर्य, प्रज्ञा—इनका सम्पादन करना इनका परमावश्यक कर्त्तव्य है। बौद्ध संन्यासियोंके और भी दो नाम हैं। श्रमण और श्रावक। गृहियोंका नाम उपासक और उपासिका है।

बौद्ध सम्प्रदायकी स्त्रियाँ भी धर्म व्रत पालनके उद्देश्यसे गृहस्थाश्रम त्यागकर बाहर आ सकती हैं। उन्हें भिक्षुणी या श्रमणा कहते हैं। बौद्ध शास्त्रोंसे मालूम होता है, कि गौतम बुद्धके समयसे ही वे कार्य क्षेत्रमें अवतीर्ण हो पड़ी थीं। पर श्रमणोंकी अपेक्षा ये निकृष्ट समझी जाती हैं, श्रमणोंका आदेश पालन करना और उपदेश ग्रहण करना ही इनका कर्त्तव्य है।

अब भी है। केवल ब्राह्मण वर्णका अस्तित्व उसमें दिखाई नहीं देता। पहले उन्होंने बड़ी कठोर तपस्या की थी। जिससे उनमें असाधारण शक्ति उत्पन्न हो गयी थी और अपनी अस्सी वर्षकी अवस्थामें भी वे आनन्दसे उपदेश प्रदान कर सकते थे।

शाक्य मुनि कोई लिखित ग्रन्थ न छोड़ गये। उनकी मृत्युके बाद बौद्धोंकी चार महा सभायें हुईं। ई० पू० पाँचवीं शताब्दिमें मगध देशके राजा अजातशत्रु, उनके एक शताब्दि बाद सम्राट कालाशोक, ई० पू० २४६ या २४७ ई० में अशोक और ई० पू० १४३ में काश्मीरके राजा कनिष्कने एक एक सभा की। इनकी प्रथम सभामें बुद्धका उपदेश और बातें संग्रह कर बौद्ध-शास्त्र प्रस्तुत हुआ। यह शास्त्र तीन प्रकारका था। सूत्र-पिटक, विनय पिटक और अभिधर्म पिटक। इन तीनोंका सम्मिलित नाम त्रिपिटक है। इनमें बौद्ध सम्प्रदायका मत, नीति, उपाख्यान, आध्यात्मिक विद्यादिका विषय लिखा हुआ है। नेपालमें इन त्रिपिटकोंके भाष्य और अन्यान्य व्याख्यायें सम्बन्धी पुस्तकें अब तक विद्यमान हैं। बौद्ध शास्त्रके द्वादश विभाग हैं। उनके नाम अङ्ग—सुसु,—गेय, व्याकरण, गाथ, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अवभूत, वेदल्ल, निदान, अवदान, और उपदेश हैं। इनमें प्रथमोक्त नव अङ्ग प्राचीन हैं। बौद्ध ग्रन्थकार बुद्धघोष ४५० ई० में सुमङ्गल विलासिनी नामक ग्रन्थमें इन नव अङ्गोंकी बातें बता गये हैं। ये अङ्ग विशेष विशेष, विषयोंके नाम हैं। जैसे इतिहासका नाम इतिवुत्तक,

गाथाका नाम गाथ, व्याकरणका नाम वेयाकरण, इत्यादि है। इसके अतिरिक्त तन्त्र नामके और भी कितने ही शास्त्र हैं। हिन्दुओंके तन्त्रमें जिस तरह हिन्दू देवताओंके उद्देश्यसे सब मन्त्र रखे गये हैं, बौद्धोंके तन्त्रमें भी उसी तरह विभिन्न बुद्ध, बोधिसत्व उनकी शक्ति, समूह और उसके साथ ही बहुतसे हिन्दू देवताओंके सम्बन्धमें भी मन्त्र विनिवेशित हुए हैं।

बौद्ध शास्त्र पहले संस्कृत भाषामें रचे गये, उसके बाद तिब्बती भाषामें उनका अनुवाद हुआ। दोनों ही अब तक प्रचलित हैं। दोनों ही बड़े प्रकाण्ड ग्रन्थ हैं। एकका नाम कहग्युर और दूसरेका तनग्युर ! ※

प्राचीनतम बौद्ध सम्प्रदायी ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। उनके मतसे जड़ पदार्थ नित्य हैं और उन्हीं जड़ पदार्थोंकी शक्ति द्वारा ही समस्त संसारकी सृष्टि हुई है। यदि बीच बीचमें प्रलय भी हो जाता है, तो इन्हीं जड़ पदार्थोंके अन्तर्भुक्त गुणके प्रभावसे फिर सृष्टि होती है।

उत्तरकालमें नेपाल प्रान्तमें इस धर्मके एक विशेष सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई। उस सम्प्रदायवाले एक आदि बुद्धका अस्तित्व भी स्वीकार कर गये हैं + वे नित्य, निराकार, ज्ञानवान, न्यायवान

※ ई० पू० ७ वीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दीतक इनका अनुवाद होता रहा।

+ Turnour's Mahawanso p. p. 11. 19. 42. Weber's History of Indian Literature p.p. 287.290. Monier Wlliams Indian wisdom p. 60.

और दयावान हैं। वे इनसे एकदम स्वतन्त्र हैं। स्वेच्छानुसार सभी क्रियायें सम्पन्न करते हैं। यदि इन्हें आस्तिक बौद्ध कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं। इनके भी दो दल हैं। एक दलका कथन है कि केवल वे ही थे और कुछ न था। दूसरे दलका कथन है कि बुद्धके साथ जड़ पदार्थकी सत्ता भी सम्मिलित है। आदि बुद्ध अपनी इच्छाके अनुसार आत्म स्वरूपसे अन्य पाँच या सात बुद्ध उत्पादन करते हैं।—इनका नाम ध्यानी बुद्ध है। इन ध्यानी बुद्धोंसे भी पाँच सात बुद्धोंकी उत्पत्ति होती है। इस अमय अनलोकितेश्वर नामक चतुर्थ बोधिसत्वका अधिकार है। ये अमिताभ नामक बुद्धसे उत्पन्न हैं। *

नैपाली बुद्ध आस्तिक और सिंहली बुद्ध नास्तिक हैं। नेपाल और चीन देशके बौद्ध आदि बुद्ध, ज्ञानी बुद्ध बोधिसत्व और अन्य कितने ही देवी देवताओं पर विश्वास करते हैं। शाक्यमुनिका जीवन वृत्तान्त उनमें पाया जाता है। परन्तु लङ्का और ब्रह्म देशके बौद्ध यह सब नहीं मानते। बौद्धगण भी हिन्दुओंकी भाँति अपने अपने कर्मानुसार बार बार योनि भ्रमण और स्वर्ग, नर्कके उपभोग पर विश्वास करते हैं। दो प्रकारके कार्यों के कारण इनके दो विभाग हो गये। एक हीनयान और दूसरा महायान। लङ्का, श्याम, भारत और ब्रह्मदेशके बौद्ध हीनयान कहे जाते हैं और अशोकके संस्करणको प्रामाणिक मानते हैं। चीन, जापान, तिब्बत तथा उत्तरीय एशियाके समस्त बौद्ध कनि-

* Asiatic Researches Vol. XVI. pp. 441. 435. & 445.

ष्कका संस्करण प्रामाणिक मानकर तदनुसार आचरण करते हैं और महायान नामसे सम्बोधित किये जाते हैं। हीनयानवाले सांसारिक कर्त्तव्याकर्त्तव्यका अनुशीलन कर स्वर्ग प्राप्तिकी इच्छासे उपवासादि करते हैं और महायान सम्प्रदायके बौद्ध-संन्यासी निर्वाण लाभ का आशामें अध्यात्म-ज्ञानका अनुशीलन और ध्यान-योगका अवलम्बन करते हैं। इनकी धारणा है कि ध्यान द्वारा समस्त सांसारिक दुःख, माया ममता आदि यन्त्रणायें दूर हो सकती हैं। इतना हो जानेसे निर्वाण रूप परम पुरुषार्थ प्राप्त होता है। बौद्ध मतसे ध्यान-बल सब बलोंमें प्रधान है। बौद्धोंका विश्वास है, कि शाक्यमुनि ध्यानमें इतने पारङ्गत थे, कि देवता या मनुष्य कोई भी ध्यान योगमें उनकी समता न कर सकता था।

हिन्दू शास्त्रमें जिस तरह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर नामकी त्रिमूर्त्ति हैं, उसी तरह बौद्धोंमें भी त्रिमूर्त्ति हैं। उनका नाम बुद्ध, धर्म और सङ्घ है। यद्यपि ये तीनों भिन्न भिन्न पदार्थ वाचक हैं, पर वास्तवमें ये एक ही पदार्थ हैं। इनकी प्रकृति भी एक ही है।

बौद्ध मतानुयायी पश्चाल्लिखित चार प्रधान तत्व बौद्ध समाज में धर्म-चक्र नामसे प्रसिद्ध हैं। यही बौद्धमत प्रणालीका मूलीभूत है। इनके ही विस्तार और पर्यालोचना द्वारा निर्वाणका उपाय निर्धारित किया गया है।

१—जीवोंकी यन्त्रणा और दुःख सर्वव्यापी है।

२—स्नेह, ममता, कामना, राग, द्वेषादिसे दुःख और कष्टादिकी उत्पत्ति होती है। मनः कल्पित विषय-वासना ही इसकी जड़ है।

३—दुःख और यन्त्रणाका कारण ध्वंस होनेसे दुःख और यन्त्रणाका भी नाश हो जाता है अर्थात् ममतादिके बन्धनसे आत्माको मुक्त करनेसे ही दुःख और यन्त्रणाका अवसान हो जाता है।

४—निर्वाण-प्राप्तिके जो चार पथ हैं उनमें प्रवेश करने पर आत्मा मुक्ति साधन सम्पन्न हो सकता है। वे चार पथ ये हैं—पूर्णश्रद्धा, पूर्णचिन्ता, पूर्ण वाक्य और पूर्ण क्रिया।

ई० पू० तीसरी शताब्दिमें मगधके राजा अशोकने बौद्ध धर्म अवलम्बन किया। पता लगता है, कि एक पहाड़ी मनुष्यने समुद्र नामक एक बौद्ध भिक्षुकका प्राण हरण करनेकी अनेक चेष्टायें कीं, परन्तु किसी तरह भी वह सफल न हुआ। इससे विस्मित होकर उसने यह विषय राजा अशोकसे कहा। अशोकने उस भिक्षुसे भेंट की और उससे सब वृत्तान्त सुनकर उस पहाड़ी मनुष्यका सर काट डाला और उस भिक्षुको असाधारण दैवी शक्ति सम्पन्न मनुष्य समझ कर उन्होंने उसीसे बौद्ध धर्मकी दीक्षा ग्रहण की।* इसके बादसे बौद्धधर्मको और भी बल प्राप्त हो गया। उन्होंने इतने चैत्य, स्तूप और इतने प्रकारके कीर्त्ति-

* Rajendralal Mitra, in the proceedings. Asiatic Society of Bengal for January 1918.

निकेतन बनवाये कि लोग उन्हें धर्माशोक कहने लगे। इनके कालमें बौद्ध धर्म्मकी खूब उन्नति हुई।

अभी तक प्राचीन धर्म ही राज-धर्म माना जाता था। परन्तु अशोकने उसे अमान्य कर बौद्ध धर्मको राज धर्म नियत किया। उन्होंने बौद्ध धर्मको निश्चित करनेके लिये ई० स० पू० २४५ में बौद्ध साधुओंकी एक महान सभाकर उनके पवित्र बचनोंको एकत्र किया और उन्हें मागधी किंवा पाली भाषामें अङ्कित किया। उन पवित्र बचनोंसे सार रूप चौदह सिद्धान्त चुनकर जहाँ तहाँ शिला और स्तम्भों पर खुदवा दिये और काश्मीर, तिब्बत, ब्रह्म देश, दक्षिण और लङ्कामें साधुओंको भेज कर वहां धर्म-प्रचार कराने लगे। इस प्रकार राज्याश्रय पाकर बौद्ध धर्म उन दिनों पूर्ण उन्नतावस्थाको प्राप्त हुआ।

कालकी कुटिल गति तथा अस्तोदयके नियमानुसार अशोकके वंशजोंकी शक्ति क्षीण हो गयी और मगधका राज्य आन्ध्र कुलके राजाओंके हाथ चला गया। इस वंशमें २४ राजा हुए। इनके राजत्वकालमें इस धर्म्मका प्रचार रुक गया। फिर मध्य एशिया के तातारोंकी सिथियन जातिने काश्मीर पर अधिकार कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। उनकी एक अन्य शाखा (हूण) ने आन्ध्र कुलके अन्तिम नरेश समुद्रगुप्तको पराजित कर मगधके अतिरिक्त दिल्लीके सिंहासन पर भी आधिपत्य जमा लिया। काश्मीरके सिंहासन पर ई० स० ४० में कनिष्क नामक राजा अधिष्ठित था। यद्यपि इसने भी इस धर्मके उपदेशकों-

को तिब्बतादि देशोंमें भेज कर धर्म-प्रचार करावाया था, परन्तु मालवाके प्रख्यात राजा वीर विक्रमादित्यने ई० स० पू० ५६ में शक (सिथियन और हूण इत्यादि) लोगोंको पराजित कर यहांसे भगा दिया था और अपनी राजधानी उज्जैन नियत कर सर्वत्र शासन करने लगे थे। तबसे बौद्ध धर्मको राज्याश्रय मिलना बन्द हो गया था, क्योंकि वे शैव धर्मावलम्बी थे।

जैन धर्मवालोंने बौद्ध धर्मकी वृद्धि रोकनेके लिये प्रयत्न किया परन्तु उन्हें यथेष्ट सफलता प्राप्त न हो सकी। परन्तु ईसाकी आठवीं शताब्दिमें कुमारिल भट्टके प्रयत्नसे अनेक लोगोंने बौद्ध धर्मका त्याग किया तथा अनेक लोग यह देश छोड़ चीन, तिब्बत, ब्रह्मदेश, श्याम, लङ्का तथा जापान इत्यादि देशोंको चले गये। अब भी उन देशोंमें इस धर्मके माननेवालोंकी संख्या बहुत बड़ी है। पृथ्वी भरमें करीब ४० करोड़ मनुष्य इस धर्मके अनुयायी हैं।

परन्तु ईश्वरके अस्तित्व पर इस धर्मने कुछ भी विचार नहीं किया। हिन्दू धर्मवाले इसी कारणसे इसकी नास्तिक मतमें गणना करते हैं।

इस धर्म पर भी अन्तमें पुराणोंका प्रभाव पड़ गया। फलतः इसमें अवतार, मूर्त्ति-पूजा, कर्म, धर्म, आचार, जप, इत्यादि की भली भांति वृद्धि हुई और अनेक कुतर्क-पूर्ण वाक्य भी प्रविष्ट हो गये। इन्हीं बातों पर मतभेद हो जानेसे शून्यवाद * योगाचार,

---

* वैभाषिक अर्थको खासकर ज्ञानान्वित मानते हैं। सौत्रान्तिक

सौत्रान्तिक और वैभाषिक—यह चार पन्थ हो गये। इस धर्ममें मांसाहारका पूर्ण निषेध होने पर भी आर्यावर्त्तके बाहरवाले बौद्ध मांसाहार करते हैं।

गया बौद्धोंका प्रधान तीर्थस्थल है। चीन तकके लोग यहां यात्राके निमित्त आया करते थे। बौद्ध साधुओंने दक्षिण भारतके पहाड़ोंमें अपने रहनेके लिये अनेक गुफायें बनायी थीं। इनमें हजारों मनुष्य रह सकते हैं। लोग इन्हें देखकर आज भी चक्करमें पड़ जाते हैं। तत्कालीन कारुकलाका इनसे अच्छा परिचय मिलता है। इलोरा, अजण्टा तथा बम्बईके निकट धारापुरीकी गुफायें विख्यात हैं। विहारका नालिन्द विद्यालय, जहां ईसाने धर्मज्ञान प्राप्त किया था, एक अद्वितीय विद्यालय था। उसके सञ्चालक बौद्ध ही थे।

धीरे धीरे बौद्ध धर्मका प्रचार खूब ही हुआ और क्रमसे

वहिर अर्थको प्रत्यक्ष ग्राह्य नहीं मानते। योगाचार बुद्धि आकार सहित है ऐसा मानते हैं। शून्यवादी सभी कुछ शून्य मानते हैं। चारों प्रकारके बौद्ध रागादिक वासनाओंके उच्छेदसे मुक्ति मानते हैं।

अनेक विद्वानोंका कथन है कि अहिंसा परमो धर्मः तथा दया धर्मका मूल है—इन सूत्रोंपर अहिंसा वादियोंने अधिक जोर देकर आर्योंके हृदयको हीन सत्व, सभ्य और कोमल बनाकर देशको पराधीनताके महासागरमें डुबो दिया। यद्यपि यह धारणा सर्वथा सत्य नहीं है किन्तु इतना तो अवश्य है कि इस अहिंसाकी पुकारने क्षत्रियोंको बनिया बना दिया और क्षात्र धर्मको बड़ी हानि पहुंचाई। परन्तु अवनतिका सत्य कारण वर्णाश्रम और उसमें भी खासकर ब्रह्मचर्याश्रमके धर्म कर्मका लोप होना ही है।

यह आगे बढ़ता ही चला गया। हुएनसङ्ग नामक विख्यात चीनी यात्री ६२९ से ६४५ तक भ्रमण कर भारतवासी हिन्दू और बौद्ध दोनों ही धर्मोंके विषयमें लिख गया है। उस समय गान्धार तक्षशिला, मथुरा, कान्यकुब्ज, श्रावस्ति, कपिलवस्तु, वैशाली, मगध, पाटलिपुत्र, नालिन्द, राजगृह, गया, बनारस, काँचीपुरम्, कोशल प्रभृति नाना स्थानोंमें हजारों भिक्षु दिखाई देते थे। इसके समयसे बौद्ध धर्मका कुछ ह्रास आरम्भ हो गया था। परन्तु फाहियानके समयमें इसका प्रचार विशेष था। फाहियानने जिन बुद्ध तीर्थ और देवालयोंका कार्य सुन्दर रूपसे होता देखा था, हुएनसङ्गने उनके स्थान भग्न और भग्नप्राय तथा शून्य देखे थे। इत्सिङ्ग नामक एक चीन देशीय ग्रन्थकारने चीना भाषाके ग्रन्थमें ५६ बौद्ध तीर्थ यात्रियोंका विवरण लिख रखा है। ये ई० सन् ६१८ से ९०७ तक बौद्ध तीर्थोंका दर्शन करते हुए भ्रमण करते रहे। उस समय भी यहाँ बौद्ध धर्म प्रचलित था। इसमें सन्देह नहीं है।

परन्तु अब इसके ह्रासका समय आ गया था। हिन्दू और जैन, दोनों ही बौद्धोंको हटानेकी प्रबल चेष्टा कर रहे थे। कान्यकुब्जाधिपति श्रीहर्षने बौद्ध धर्म त्याग कर जैन धर्म ग्रहण कर लिया था। इसके बाद ही जैन सम्प्रदायका बल बढ़ा। महीशूर, विजयनगर, आबू प्रभृति अनेक स्थानोंकी खोदित लिपिसे यह बात स्पष्ट मालूम होती है।※ इधर जैन धर्मकी ज्यों ज्यों उन्नति

※ Dr. Rajendralal Mitra in the proceedings. Asiatic society of Bengal for January 1918.

होती गयी त्यों त्यों बौद्ध धर्मकी अवनति होती चली। ई० सन् की आठवीं शताब्दिमें अकलङ्क नामक एक जैन यतिने हेमशीतल नामक बौद्ध राजाके सामने कांची प्रदेशके बौद्धगणको विचारमें परास्त किया। अतः उस राजाने भी बौद्ध धर्मका परित्याग कर दिया और बौद्ध वहाँसे निकाल बाहर किये गये। मदुराधिपति वरपाण्डवने जैन धर्म अवलम्बन कर बौद्धोंको कष्ट दे, इस देशसे भगा दिया। ※ यह घटना दशवीं शताब्दि या उसके कुछ आगे पीछे की भी हो सकती है। देवगोन्द और बेलपल्लम इन दो स्थानोंमें ग्यारहवीं शताब्दिमें देवालय वर्त्तमान थे, परन्तु जैन राजाने उन्हें नष्ट कर दिया। × पहले गुजरातमें भी बौद्ध राजाओंका अधिकार था पर बारहवीं शताब्दिमें वहाँ जैन राजा बैठे। यह घटना सम्भवतः ११७४ ई० में हुई, तबसे गुजरात, मलावार आदि दक्षिण पश्चिम भागके अन्यान्य स्थानोंमें जैन धर्म खूब प्रबल हो उठा। सप्तम शताब्दिमें मथुरामें बौद्धों की बड़ी प्रबलता थी। पर एकादशवीं शताब्दिमें जब महमूद-शाहका मथुरापर आक्रमण हुआ, उस समय वहाँ हिन्दुओंकी प्रबलता दिखाई दी। इन बातोंसे मालूम होता है, कि यद्यपि बारहवीं शताब्दिमें भी कुछ कुछ बौद्ध वहाँ विद्यमान थे, पर वे एकदम अवसन्न हो रहे थे और निःशेष होते जाते थे।

भिन्न भिन्न धार्मिक सम्प्रदाय एक स्थान पर रहनेके कारण

※ Asiatic Researches Vol XVII p. 280-286.

× Mackenzie collection Vol I p. LXVII.

उनमें आपसमें कुछ धार्मिक नियमोंका आदान प्रदान हो ही जाता है। इसी कारणसे नेपाली बौद्धोंने अपनी प्रणालीके साथ हिन्दुओंकी तान्त्रिक प्रणाली मिला ली, यह प्रणाली तान्त्रिक थी। इसीके अनुसार उन्होंने शिव, शक्ति, गणेश, कुमार, भैरव, हनुमान, रुद्र, महारुद्र, महाकाल, महाकाली, अजिता, अपराजिता, उमा, जया, चण्डी प्रभृति देवी देवताओंकी तान्त्रिक उपासना तथा ओं, ह्रीं हूं फट प्रभृति तान्त्रिक बीज भी उसमें मिला लिये। क्रियास्थलमें तन्त्रोंका यन्त्रमण्डल अङ्कित करनेका विधान भी हो गया। अस्तु,

हिन्दुओंने जिस समय बौद्धोंका बढ़ता हुआ प्रभाव देखा। देखा कि समस्त भारत ही नहीं, दूर दूरके स्थानों और देशोंमें भी बौद्ध धर्म फैल रहा है। उस समय वे उस धर्मका प्राधान्य अस्वीकार न कर सके। उन्होंने हजारों मनुष्योंको बौद्ध धर्म ग्रहण करते देखा। इसी लिये वे एक ओर तो बौद्धोंका सर्वनाश साधनको प्रस्तुत थे और दूसरी ओर बौद्ध धर्म परसे लोगोंकी श्रद्धा हटानेको कहते थे कि भगवान विष्णुने बुद्धका रूप ग्रहण कर अवतार धारण किया है। इसीलिये उन्होंने असुरोंको विमुग्ध और विपथगामी करनेके लिये बौद्धधर्मका प्रचार किया है।

ततः कलौ सम्प्रवृते संमोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नामाञ्जन सुतः कीकरेषु भविष्यति॥

भागवत १।३।२५॥

पीछे कलियुग आजानेपर असुरोंके सम्मोहनके लिये अञ्जन सुत बुद्धने गयामें जन्म ग्रहण किया।

इसीलिये बुद्ध वेदादि हिन्दू शास्त्रके विरुद्ध धर्म प्रवर्त्तक होने पर भी विष्णुके अवतार माने गये हैं।

पुराणकाल।

स्मृति-कालमें भारतकी धार्मिक स्थिति कैसी थी, इसका दिग्दर्शन हम संक्षेपमें करा चुके हैं, तथा यह भी दिखा चुके हैं, कि बौद्ध कालमें यहाँकी धार्मिक अवस्थामें कैसा परिवर्त्तन आया और बौद्धोंके प्रभावसे भारतकी धार्मिक स्थिति कैसी हो गयी। साथ ही यह भी दिखा चुके हैं, कि जैनियोंका दबदबा किस तरह बढ़ा और बौद्ध सम्प्रदाय पर अपना आधिपत्य जमा कर उन्होंने किस तरह अपने धर्मका प्रचार करना आरम्भ किया।

इसमें सन्देह नहीं, कि बौद्धोंके प्रभावसे वैदिक धर्मको बड़ा धक्का लगा। साथ ही प्रक्रिया भी आरम्भ हो गई। लोग अपने अपने धर्मकी रक्षाके लिये सावधान हो गये। कितने ही इतिहासज्ञोंका तो यहाँ तक मत है, कि उस समयकी धार्मिक स्थितिके अनुकूल स्वधर्मकी रक्षा करनेके लिये ही इन भक्ति प्रधान पुराणोंकी रचना हुई है। पुराणोंकी रचनाके समयके

सम्बन्धमें मतभेद है, कितनोंका ही कथन है, कि पुराण ईसाकी प्रथम शताब्दि अथवा उससे पहले ही रचे जाने आरम्भ हो गये थे। भगवान तिलकका मत है, कि इनका समय ईसाकी दूसरी शताब्दि है। परन्तु प्राचीन ग्रन्थोंको देखनेसे मालूम होता है, कि उनमें पहले भी पुराणोंका जिक्र आया है।

अध्वर्यु स्ताक्ष्यों वैपश्यन्तो राजेत्याह....
पुराणं वेदः सोऽयमिति किञ्चित् पुराण माचक्षीत।

शतपथ ब्राह्मण १३।४।३।१३॥

शतपथ और गोपथ ब्राह्मण एवं सांख्यायन और आश्वलायन सूत्रमें पुराण वेदके नामसे एक शास्त्रका उल्लेख है, जिसे अश्वमेध यज्ञमें नवें दिवस अध्वर्यु पाठ करते थे।

"ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यानु व्याख्यानानि व्याख्यानानि।"

शतपथ ब्राह्मण १४।६।१०।६।

इतिहासः पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्च।

अथर्व संहिता १५।६

'इतिहासः पुराणः विद्या उपनिषदःश्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि।

बृहदारण्यक २।४।१०।

सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेद आथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पञ्चमं ।

छान्दोग्योपनिषद् । सप्तम प्रपाठक

अर्थात् उन्होंने कहा, भगवन् ! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, आथर्वण नामक चतुर्थ वेद और पञ्चम वेद स्वरूप इतिहास पुराण ज्ञात है ।

अस्य महतोभूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः इतिहासः पुराणं ।

बृहदारण्योपनिषदः ।

इसी परमात्मासे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास और पुराण उत्पन्न हुए हैं ।

रामायणमें भी राजा दशरथके सारथी सुमन्त्रको बारम्बार पुराणवित् कहा गया है :—

इत्युक्तवान्तः पुरद्वारमाजगाम पुराणवित् ।
सदा सक्तश्च तद् वेश्य सुमन्त्रः प्रविवेशह ॥

अयोध्याकाण्ड । १५ सर्ग । १६ श्लोक

अर्थात् यह कह, पुराणज्ञ सुमन्त्र अन्तःपुरके द्वारदेश पर जा पहुँचे और खुले हुए दरवाजेवाले गृहमें चले गये ।

इसी तरह रामायणके सोलहवें सर्गके प्रथम श्लोक और बालकाण्डके नवम सर्गके प्रथम श्लोकमें सुमन्त्र द्वारा पुराण कथनका भी जिक्र आया है। साथ ही यह भी लिखा है :—

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्रे धर्मशास्त्राणि चैवहि
अख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च।

ऋग्वेदोपोद्घात

श्राद्ध क्रियामें ब्राह्मणोंको वेद, धर्मशास्त्र, आख्यान, इतिहास, पुराण और खिल * नामक शास्त्र सुनाना चाहिये।

जब संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, कल्प सूत्र, उपनिषद, रामायण और मनु संहिता आदिमें पुराणोंका प्रसङ्ग है, तब पुराणोंका अवहेलना नहीं की जा सकती। तब वे पुराण कौन थे?

महाभारतमें भी अनेकानेक पौराणिक उपाख्यान आये हैं। इतिहास और पुराणका अर्थ भी समर्थन किया गया है।

साङ्गोपनिषदांचैव वेदानां विस्तरः क्रियाः।
इतिहास पुराणानामुन्मेषं निर्म्मितञ्च यत्॥

महाभारत आदि पर्व।६२।६२ श्लोक

इन बातोंकी पर्य्यालोचना करनेसे मालूम होता है, कि महाभारत रचित या सङ्कलित होनेके पूर्व पुरातन कथा विषयक ग्रन्थ विशेष पुराण और इतिहासके नामसे प्रसिद्ध थे। उपनिषदोंमें पुराण और इतिहासका जो प्रसङ्ग हैं, उस विषयमें सायना-

* उल्लूक भटने लिखा है—श्रीसूक्त शिव संकल्प प्रभृति शास्त्रका नाम खिल हैं।

चार्यने लिखा है, वेदके अन्तर्गत देवासुरोंका युद्ध वर्णनका नाम इतिहास और सृष्टि प्रक्रिया विवरणका नाम पुराण है।

देवासुराः संयत्ता आसन्नित्यादयः इतिहासाः मरे वाऽग्रे नैव किंचिदासीदित्यादिके जगतः प्रागवस्थामुपक्रम्य सर्ग प्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणं।

ऋग्वेदोपोद्घात

शङ्कराचार्यने पुराणोंके विषयमें लिखा है। उनका मत है, कि उर्वशी पुरुरवान्त कथोपकथनादि स्वरूप ब्राह्मण भागका नाम इतिहास सृष्टि प्रक्रिया घटित वृत्तान्तका नाम पुराण है?

इतिहासहत्युर्वशीपुरुरवसोः सम्बादादि रूर्वशीहाप्सरा इत्यादि ब्राह्मणेव पुरणामस इदमग्र आसीदित्यादि।

बृहदारण्यकोपनिषदके चतुर्थ ब्राह्मणका भाष्य।

अतएव शङ्कराचार्य और सायनाचार्यके मतसे वेदके अन्तर्गत सृष्टि प्रक्रिया घटित वर्णनोंका नाम पुराण और देव, अप्सरा, गन्धर्व, मनुष्यादि कार्य्य सम्बन्धी परम्परागत पुरावृत्तका नाम इतिहास था। रामायणके बालकाण्डके नवम सर्गसे लेकर एकादश सर्गके ग्यारहवें अध्याय तक ऋष्य शृङ्गकाचरित्र, लोमपाद राजाके राज्यमें अकाल, उनकी कन्या शान्ताका ऋष्यशृङ्ग ऋषिके साथ विवाह, इत्यादि पुरानी बातें पुराण कही गयी हैं।

इससे यह मालूम होता है, कि रामायणकी रचनाके समय पुरानी बीती बात विषयक ग्रन्थ और उपाख्यान विशेषका नाम पुराण था।

आजकल प्रचलित पुराणोंमें ऐसा वर्णन है, कि वेदव्यासने पुराण प्रस्तुत कर सूत लोमहर्षणको समर्पण किया, इसीलिये वे पुराण वक्ता हुए। इसलिये बहुतसे व्यास शिष्य लोमहर्षणको ही पुराण वक्ता समझते हैं। उनका एक दूसरा नाम सूत भी था। उनके पूर्व पुरुष पौराणिक न थे, पर उनका पुत्र उग्रश्रवा इसी कारणसे पुराणवक्ता हुआ, कि बलदेवने ऋषियोंके अनुरोधसे उन्हें अधिकारी बनाया। ये बातें कहाँ तक प्रामाणिक हैं सो ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता, पर बातें ऐसी ही हैं।

पुराणोंके सम्बन्धमें कहा है :—

पुराणेहि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्
कथ्यन्ते ये पुरास्माभिः श्रुतपूर्वाः वितुस्तवः।

महाभारत आदि पर्व। पंचमो अध्याय ६ श्लोक

पुराण समुदायमें मनोहर कथा और बुद्धिमान व्यक्तियोंके आदिवंशजोंका वृत्तान्त है। पूर्वमें तुम्हारे पितासे जो बातें हम-लोगोंने सुनी थीं।

उग्रश्रवाने कहा :—

इमं वंशमहं पूर्वं भार्गवन्ते महामुने।
निगदामि यथायुक्तं पुराणाश्रय संयुतम्॥

आदि पर्व। पांचवां अध्यायः ६ और ७ श्लोक

अर्थात् हे महामुनि ! पुराणोंमें इस पुरातन भृगु वंशका जो वृत्तान्त है, मैं वही यथोपयुक्त वर्णन करता हूं।

इन श्लोकों पर विचार करनेसे यह स्पष्ट मालूम होता है, कि पुराणमें गत घटनाओंका वर्णन अवश्य है, पर जिन पुराणोंका उल्लेख किया गया है, क्या वे ये ही पुराण हैं जो इस समय प्रचलित हैं ?

इस समय वेद शास्त्रका जैसा विभाग और शृङ्खला प्रचलित हैं, वह महर्षि कृष्ण द्वैपायनका किया हुआ प्रसिद्ध है। अट्ठारह पुराण और समग्र महाभारत उनका ही बनाया हुआ कहा जाता है। परन्तु रचना और मतामतोंका ऐसा पार्थक्य दिखाई देता है, कि समस्त पुराण एक मनुष्य की रचना मालूम नहीं होती। भ्रम हो जाता है, कि पुराण भिन्न भिन्न समय और भिन्न ग्रन्थकारोंके रचे हुए हैं।

विष्णु पुराणमें लिखा है :—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराण संहिता चक्रे पुराणार्थ विशारदः॥
प्रख्यातो व्यास शिष्योऽभूत सूतो वै लोमहर्षणः
पुराण संहिता तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः॥
सुमतिश्चाग्निवर्च्चाश्च मित्रायुः शांशपायनः॥

अकृत व्रणोऽथ सावर्णिः षट् शिष्यास्त्रस्य चाभवन् ॥

काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिः शांशपायनः ।

लौमहर्षिणिका चान्या तिसृणां मूल संहिता ॥

विष्णु पुराण । ३ अंश । ६ अध्याय । १६-१९ श्लोक

पुराणका अर्थ जाननेवाले वेद्व्यासने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि लेकर पुराण संहिताकी रचना कर सुप्रसिद्ध शिष्य सूतकुलोद्भव लोमहर्षणको प्रदान की थी। सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु, शांशपायन, अकृतव्रान, और सावर्णि नामक उनके छः शिष्य थे। उनमें काश्यप, सावर्णि, शाशम्पायन इन्होंने मिलकर एक पुराण संहिता रची। लोमहर्षणने लोमहर्षणिका नामक जो पुस्तक प्रस्तुत की थी, वही इनका मूल है।

भागवतमें पुराण सङ्कलनके सम्बन्धमें जो वृत्तान्त हैं, वह प्रायः ऐसा ही है। श्रीधर स्वामीने उसकी टीका करते हुए लिखा है, कि वेद्व्यासने छः पुराण संहिताएं प्रस्तुत कर लोमहर्षणको प्रदान की थीं, लोमहर्षणने उन्हें त्र्यारुणि प्रभृति छः शिष्योंको पढ़ाया और उनसे ही उग्रश्रवाने पढ़ा। *

इसी तरह पुराणोंके विषयमें बड़ा मत भेद है। विष्णु

---

* प्रथम व्यासः ट्षसंहिताः कृत्वा मत्पित्रे लोमहर्षणाय प्रादात तस्य च मुखादेते त्र्यारुणादयः एकैकां संहितामधीयन्त एतेषां षण्णां शिष्योऽहं ताः सर्व्वाः समधीतवान् ।

पुराणके उपर्युक्त श्लोकसे मालूम होता है, कि वेद व्यासने एक ही पुराण संहिता रची और वह लोमहर्षणको दी। इससे मालूम होता है, कि पहले एक ही पुराण था और समय पाकर मत-मतान्तरोंके प्रादुर्भावके साथ ही साथ इनकी संख्या भी बढ़ती चली गयी। पर साथ ही यह निरूपण करना भी कठिन है, कि विष्णु पुराणमें जिस पुराण संहिताका उल्लेख है, वह कौन सी है। विष्णु पुराणके कर्ताने लिखा है, वेद व्यासने, आख्यान, उपाख्यान, गाथा, कल्पशुद्धि, इन चार विषयोंको लेकर पुराण संहिता रची। इसी पुराणके टीकाकारने लिखा है :—

स्वयं दृष्ट्वार्थ कथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः।
श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते।
गाथास्तु पितृ पृथ्वी प्रभृति गीतयः।
कल्पशुद्धिः श्राद्ध कल्पादि निर्णयः॥

अर्थात् स्वयं देखकर जो विषय कहे गये हैं, उनका नाम आख्यान, परम्परासे सुनी हुईका नाम उपाख्यान, पितृ विषयक और पृथ्वी विषयक गीत और अन्यान्य किसी विषयके गीतका नाम गाथा और श्राद्ध कल्पादि निरूपणका नाम कल्पशुद्धि है।

कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन कालमें पुराण प्रचलित थे, और समयके साथ ही साथ उनमें परिवर्त्तन होता गया है। अमरसिंहने अमरकोषमें लिखा है—पुराणं पञ्चलक्षणम् अर्थात् पुराणोंके पाँच लक्षण हैं। वे पाँच लक्षण ये हैं :—

सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितंचैव पुराणं पंच लक्षणम् ॥

इससे मालूम होता है, कि अमरसिंहके समयमें जो पुराण प्रचलित थे उनमें सृष्टि, विशेष सृष्टि, वंश विवरण, मन्वन्तर वर्णन और प्रधान प्रधान वंशोंमें उत्पन्न व्यक्तियोंका चरित्र विषयक वृत्तान्त था। धर्म्म सम्बन्धी बातें कम थीं, परन्तु आजकल जो पुराण प्राप्त हो रहे हैं, उनमें देव देवी माहात्म्य और देवार्चनकी क्रिया-विधि विशेष हैं, परन्तु साथ ही ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें पुराणके लक्षण कुछ दूसरे ही बताये हैं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें लिखा है :—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं विप्र पुराणं पञ्च लक्षणम् ॥
एतदुपपुराणानां लक्षणञ्च विदुर्बुधाः।
महताञ्च पुराणानां लक्षणं कथयामि ते ॥
सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थिति तेषाञ्च पालनम्।
कर्म्मणां वासना वार्ता मनूनाञ्च क्रमेण च ॥
वर्णनं प्रलयानाञ्च, मोक्षस्य च निरूपणम्।
उद्कीर्त्तत हरेरेव देवानाञ्च पृथक् पृथक् ॥
दशाधिकं लक्षणञ्च महतां परिकीर्त्तितम्।
संख्यानञ्च पुराणानां निबोध कथयामि ते ॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण १३२ अध्याय।

इस तरह यदि ब्रह्मवैवर्त्त पुराणका मत माना जाय तो महापुराणोंमें दस लक्षण होने चाहियें और उपपुराणोंमें पांच।

परन्तु कोषकार अमरसिंहकी पुराणोंकी व्याख्या भी अमान्य नहीं की जा सकती। इसलिये, साधारण दृष्टिसे विचार करनेसे यह मालूम होता है, कि पुराणोंमें भी बहुत मिलावट हुई है और भिन्न भिन्न समयमें ये पुराण बनते गये हैं, जो इस समय प्राप्त हैं। उपपुराणोंमें तो ये पाँच लक्षण भी नहीं मिलते। एक विष्णु पुराण और वायुपुराण ऐसे हैं, जो इन लक्षणोंसे संयुक्त मालूम होते हैं।

पुराण १८ हैं :—

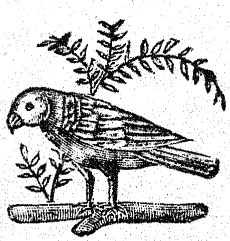
विष्णुपुराण, भागवत, शिव, नारदीय, गरुड़, पद्म, वाराह, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, लिङ्ग, स्कन्द, अग्नि, मत्स्य, कूर्म्म।

उपपुराण—सनतकुमार, नृसिंह, स्कन्द, नारदीय, महेश्वर, दुर्वासस, कपिल, ओशनस, वरुण, कालिका, साम्ब, नन्दी, सौर, पराशर, आदित्य, महेश्वर, भार्गव, या भागवत, वशिष्ठ, ब्रह्माण्ड, इनके अतिरिक्त मुद्गल, कल्कि, भविष्योत्तर और वृहद्धर्म्म नामक पुराण भी दिखाई देते हैं। इनकी संख्या अधिक होती है। इनपर ध्यान देनेसे ही मालूम होता है, कि विशेष विशेष देवताओंके सम्बन्धमें ये उपपुराण रचे गये हैं।

अतः इन पुराणोंका समय निर्धारित करना, बड़ा ही कठिन काम है। कितनोंका ही मत हैं, कि ईसाकी प्रथम शताब्दिके समयसे पुराणोंमें हाथ लगा। कितनोंका कथन है, कि ईसाकी पाँचवीं—या छठी—शताब्दिमें पुराणोंका प्राबल्य बढ़ा। इस

अनुमानको सिद्ध करनेके लिये कुछ ऐतिहासिक अमरसिंहका समय छठी शताब्दि नियत कर कहते हैं, कि ये पुराण अमरसिंहके बाद बने हैं, क्योंकि उन्होंने पुराणोंके पाँच लक्षण बताये हैं, जो इनमेंसे वहुत कममें पाये जाते हैं।

हम इस परम विवाद-ग्रस्त विषयमें पाठकोंका समय नष्ट न कर, संक्षेपमें यह कहना चाहते हैं, कि जैन और बौद्ध धर्मसे हिन्दू धर्मकी पुराणोंने खूब रक्षा की। इन पुराणोंके प्रतापसे हिन्दू धर्म डूबता-डूबता बचा। साथ ही एक बात यह भी स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते, कि पुराणों द्वारा देशमें भक्ति रसका कुछ विलक्षण प्रभाव फैल गया। साथ ही पंच देवोंकी उपासना आदिका प्रभाव खूब बढ़ा। इनके प्रसारके कारण उस समय अन्य प्रचलित धर्म न टिक सके और हिन्दू धर्म्मने अपना सिक्का फिर जमा लिया।



शैव सम्प्रदाय।

शैव धर्म प्रचारके जो प्रमाण मिलते हैं, उनसे ज्ञात होता है, कि शिवकी उपासना भी बहुत प्राचीन है। शैव सम्प्रदाय कब प्रचलित हुआ, यह ठीक ठीक नहीं बतलाया जा सकता। किन्तु पौराणिक धर्मोंके आरम्भ कालमें ही उसकी सृष्टि हुई हो ऐसा प्रतीत होता है। वेद और वैदिक धर्मोंका प्रतिपादन करनेवाले रामायण और महाभारत प्रभृति ग्रन्थोंमें भी शिव और शक्तिके नाम एवम् उनका माहात्म्य दृष्टिगोचर होता है। शूद्रक का मृच्छकटिक और कालिदासका अभिज्ञान-शाकुन्तल अर्वाचीन कवियोंके ग्रन्थोंमें प्राचीन माने जा सकते हैं। उनसे भी पता चलता है, कि उन दिनों शिवोपासना भारतमें भली भाँति प्रचलित थी। उन नाटकोंके आरम्भमें ही शिव-वन्दना दृष्टिगोचर होती है और किसी किसी ग्रन्थमें तो शिवकी अष्टमूर्त्ति, उनकी विशेष संज्ञायें तथा तद्विषयक अनेक विषयोंका विस्तृत वर्णन अङ्कित है। * कालिदास प्रणीत कुमार सम्भव केवल शिव और दुर्गाका लीला-कथन एवम् गुण-कीर्त्तन मात्र है।

प्रामाणिक इतिहास और अन्यान्य कथाओंसे भी शिव-पूजा प्राचीन सिद्ध होती है। जिस समय भारतवर्ष पर मुसलमानोंका

---

* पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बु दोपमः।
गौरी भुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते।

मृच्छकटिक—नान्दी।

अधिकार हुआ उस समयका हिन्दू धर्म प्रायः साम्प्रत हिन्दू धर्मके ही समान था। ई० स० १०२४ में सुलतान महमूदने सोमनाथ नामक महेश मन्दिर और मूर्त्तिकी जो दुर्दशा की थी, वह देशके सुशिक्षित लोगोंसे छिपी नहीं है। उससे भी शताब्दियों पूर्व यहाँ विविध प्रकारकी शिवोपासना प्रचलित थी, यह बात तत्कालीन शिलालेख और मुद्राओं पर अङ्कित शिवकी मूर्त्ति और नाम प्रभृति चिन्होंको देखनेसे प्रमाणित होती है। * ईसाकी आठवीं शताब्दिमें श्रीमान् शङ्कराचार्यका प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने अपना सम्प्रदाय चलाया। उनके आनन्दगिरि नामक शिष्यने शङ्करदिग्विजयकी रचना की। उसमें तत्कालीन शिवादि पौराणिक देवताओंकी उपासनाका विषय भली भाँति वर्णित है।

मेवाड़की पश्चिम ओर, सिरोही प्रदेशस्थ, अर्बुद गिरिके शिव मन्दिरमें सं० ७२७ से लेकर १८७७ पर्यन्तके अनेक शैवधर्मावलम्बी नृपतियोंके नाम शिलाओं पर अङ्कित हैं। इससे भी शैव सम्प्रदायकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

प्रसिद्ध चीन देशीय तीर्थयात्री हुएनसङ्गने अपनी यात्राका जो विवरण लेखबद्ध किया है, उससे भी इस विषय पर अच्छा

---

* H. H. Wilson's Ariana Antiqua, Asiatic Researches, Journals of the Asiatic Society of Bengal, Journals of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland. प्रभृति ग्रन्थोंमें इस विषयके अनेक प्रमाण प्रस्तुत हैं।

प्रकाश पड़ता है। वह यहाँ ईसाकी सातवीं शताब्दिमें आया था। उसे काशी, कन्नौज, कराची, मालावार, गन्धार प्रभृति अनेक स्थानोंमें शिव मन्दिर और पाशुपत नामक विभूति संयुक्त शैव सम्प्रदायी लोग दिखाई दिये थे। काशीमें उसने अनेक भव्य मन्दिर और एक सर्वावयव सम्पन्न विशाल शिव मूर्त्ति देखी थी। वह मूर्त्ति पीतलकी बनी हुई थी और लगभग छः हाथ ऊंची थी। उसके विषयमें हुएनसङ्ग लिखता है, कि वह अतीव गाम्भीर्यशाली और सजीव प्रतीत होती थी। उसके दर्शनसे हृदयमें एक साथ ही भय और भक्तिके भाव उदय होते थे।

इसके अतिरिक्त उसके विवरणमें भस्म विलेपित पाशुपत, विवस्त्र, जटाधारी, निर्ग्रन्थ और अन्यान्य शैव सम्प्रदायोंका उल्लेख है। कहीं कहीं शक्तिकी उपासना भी प्रचलित थी। शक्ति उपासक प्रति वर्ष एक मनुष्य बलिदान किया करते थे। अयोध्या होकर पूर्वकी ओर जाते समय स्वयं हुएनसङ्गको बलि देनेके लिये कुछ लोग पकड़ ले गये थे, परन्तु अचानक अन्धड़ आ जानेके कारण उन्होंने भयभीत हो उसे छोड़ दिया था।

प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् बराहमिहिरने भी अपने एक ग्रन्थमें तत्कालीन हिन्दू धर्मकी व्यवस्था वर्णन की थी। एक ग्रन्थकारने उस ग्रन्थका अरबीमें अनुवाद किया था। उसमें शिव प्रभृति प्रायः उन्हीं पौराणिक देवताओंका वर्णन पाया जाता है, जिनकी

उपासना आज भी यहाँ प्रचलित हैं। केवल श्रीकृष्णकी उपासनाके विषयमें कोई उल्लेख नहीं है। ❀

मृच्छकटिक नाटक संस्कृत साहित्यमें एक प्राचीन ग्रन्थ है। उसके द्वारा तत्कालीन आचार विचार और व्यवहारोंके विषयमें बहुत सी बातें जानी जा सकती हैं। उसमें शिव रूपाङ्कित मुद्राओंका उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है, कि उन दिनों शिव की उपासना प्रचलित थी।

ईसाकी द्वितीय शताब्दिमें कान्यकुब्ज प्रदेश पर गुप्त उपाधिधारी नरेशोंका शासन आरम्भ हुआ था। वे भी शिव-भक्त थे। उनके राजत्वकालकी मुद्राओं पर नन्दी, त्रिशूल, सिंहवाहिनी, शिव, शक्ति प्रभृतिके चिन्ह अङ्कित हैं। चतुर्थ शताब्दि और उसके बादकी सौराष्ट्र देशीय मुद्राओं पर भी ऐसे ही चिन्ह पाये जाते हैं। +

एरियन नामक एक ग्रीक ग्रन्थकारने जो ईसाकी द्वितीय शताब्दिमें हुआ था, भारत सम्बन्धी अनेक विषयोंका वर्णन किया है। उसने कन्या कुमारीका नाम कुमार लिखा है। यह नामकरण वहांकी एक देवीके नाम परसे हुआ है। उस ग्रन्थकारके समयमें वहां उसकी प्रतिमा प्रस्तुत थी। दुर्गाका एक

❀ Journal Asiatique, Tome VIII, IV Series, October 1846 P. 305.

+ Ariana Antiqua by . H. H. Wilson 1841 P. P. 419, 422, 425, 427, 407, 410, 412, & 413.

नाम कुमारी है। अद्यापि वहां एक मूर्त्ति विद्यमान है। प्रतीत होता है, कि वह मूर्त्ति दुर्गाकी ही है।

मालवपति वीर विक्रमादित्य, जिनका संवत् प्रचलित है, वे भी शिवोपासक थे। उनके जीवन वृत्तान्तमें अनेक स्थानों पर शिव और शिवभक्ति विषयक वर्णन दृष्टिगोचर होता है। *

शक, हूण और जाट प्रभृति असभ्य जातियोंका, ईसाके कुछ पूर्वसे लेकर विक्रमकी पांचवीं या छठीं शताब्दि तक, सिन्धु नदीके पश्चिम प्रान्त पर अधिकार रहा। उनमेंसे कितने ही आरम्भमें अग्नि और अन्यान्य हिन्दू—देवताओंकी

---

* उज्जयिनीके सिंहासनको विक्रमादित्य नामक अनेक नरेशोंने अलंकृत किया है। अतः सम्भव है, कि एक विक्रमादित्यके गुणागुण दूसरे विक्रमादित्य में आरोपित हो गये हों। किन्तु, उन दिनों शिव पूजा प्रचलित थी, इस बातके और भी प्रमाण दिये जा सकते हैं। महा मुनि पतंजलिका प्रादुर्भाव विक्रम सम्वत्के बहुत पहले हुआ था। देखिये पाणिनिका एक सूत्र और उसपर पतंजलिका भाष्य।

"जीविकार्थे चापराये"

पाणिनि सूत्र।

"अपराय इत्युच्यते तत्रेदं न सिध्यति। शिवः स्कन्दं विशाख इति। किंकारणम्। मौर्यैर्हिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः भवेत्। तासु नस्यति। यास्त्वेताः संप्रति पूजार्थाः तासु भविष्यति।" पतञ्जलि।

इसे देखनेसे प्रतीत होता है कि पतञ्जलिके समयमें शिव और कार्त्तिककी पूजा प्रचलित थी।

उपासना करते थे। उनकी मुद्राओंमें नन्दी, त्रिशूल और अर्द्धनारीश्वर प्रभृतिके आकार अङ्कित हैं। *

प्रसिद्ध ग्रीक सम्राट सिकन्दरने ई० स० पू० ३२७ में भारत पर आक्रमण किया था। उसके बाद सेल्युकसने, जो ग्रीसके राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुआ था—महाराज चन्द्रगुप्तके पास अपना एक दूत भेजा था। उस दूतका नाम था मेगास्थिनिस। वह चन्द्रगुप्तकी राजसभामें कई वर्ष रहा। उसने तत्कालीन भारतीय जनताके आचार-विचार-नीति रीति और धर्म्मादिकके विषमें जो बातें देखीं, वह अपनी मातृभाषामें अङ्कित कर लीं। उसने लिखा है, कि हिन्दू लोग बेकस और हरक्युलिस—इन दो देवताओंकी अनेक प्रकारसे पूजा करते हैं। किन्तु, यह दोनों देव ग्रीक लोगोंके उपास्य देव हैं—हिन्दूओंके नहीं। ज्ञात होता हैं, कि उसने उन दिनों यहां जिन दो देवताओंकी उपासना प्रचलित देखी वे उसे ग्रीस देशीय उपरोक्त देवताओंके तुल्य प्रतीत हुए। अतः उसने उन्हें उन्हीं नामोंसे सम्बोधित किया। + ग्रीस देशमें महादेवके समानही बेकसकी लिङ्ग पूजा प्रचलित थी। इसीलिये उसने महादेवको बेकस लिखा। यह बात सर्वथा अनुमान-सिद्ध और सम्भावित कही जा सकती है।

---

* Ariana Antiqua by H. H. Wilson 1841. P. P. 349 to 359, 361, 363, 366, 373, 377 to 380, 439 & 440.

+ देखिये:—Transactions of the Royal Asiatic Society Vol. III Article VI and Tod's Rajsthan Vol. I Chap.II & V.

भारतके दक्षिण भागमें पाण्ड्य और चौल नामक दो समृद्धिशाली राज्य थे। स्ट्रैबो नामक ग्रीक लेखकने लिखा है, कि एक पाण्ड्य नरेशने रोमके सुप्रसिद्ध अगस्तस नामक सम्राटके पास अपना एक दूत भेजा था। खोज करने पर मालूम हुआ है, कि ईसाके पूर्व पांचवी या छठीं शताब्दिमें पाण्ड नामक एक अयोध्यानिवासी मनुष्यने उपरोक्त पाण्ड्य राज्यकी स्थापना की थी और ई० स० पू० ३२० से ५१४ के बीच वह चौल राज्यमें सम्मिलित हो गया था। आरम्भमें, इन दोनों राज्योंके नरेश परम शिवभक्त थे और उन्होंने शिवमूर्त्तियोंकी स्थापना की थी। ×

बौद्धोंके सूत्र नामक प्राचीन शास्त्र तथा अन्यान्य ग्रन्थोंमें भगवान बुद्धदेवका जो चरित्र अंकित है, उसमें शिव, ब्रह्मा और विष्णु प्रभृति पौराणिक देवताओंके सम्बन्धमें अनेक बातोंका उल्लेख है। बुद्धदेवकी मृत्युके बाद बौद्ध धर्म्मावलम्बियोंने भिन्न भिन्न सभायें कर तीन शास्त्र निरूपित किये थे। सूत्र, विनय और अभिधर्म्म। पहली सभा उनकी मृत्युके कुछ ही दिन बाद हुई थी। उसीमें सूत्र सङ्कलित हुआ था। अतः वह बौद्ध शास्त्रोंमें सर्वापेक्षा प्राचीन कहा जा सकता है। उसकी रचना इतनी सरल और तात्पर्यार्थ इतना सहज है, कि किसी प्रकार अर्थका

× W. Taylor's Fxamination and Analysis of the Mackenzie Manuscripts P. P. 19. 181 etc. H. H. Wilson's Mackenzie collections P. P: LXI and LXXVI—XCII and Royal Asiatic Society's Journal Vol. 3 P. P. 202—213.

अनर्थ नहीं हो सकता। अतः प्रतीत होता है, कि बुद्धदेवके समयमें उपरोक्त देवताओंकी पूजा भलीभांति प्रचलित थी।*

अशोक और अलोक नामक दो राजा काशीमें राज्य करते थे। श्रीयुत एच, एच, विल्सनके कथनानुसार वे ई० स० पू० पांचवीं या छठीं शताब्दिमें विद्यमान थे। वे दोनों भी प्रसिद्ध शिव-भक्त थे।

विजयेश्वर नन्दीश क्षेत्र ज्येष्ठेश पूजने।
तस्य सत्य गिरोराज्ञ प्रतिज्ञा सर्वदा भवत्॥

राजतरंगिणी प्रथम तरंग।

इसका राजतरङ्गिणीके अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं। किन्तु यह कहा जा सकता है, कि ई० स० पू० पाँचवीं या छठीं शताब्दिमें यदि दक्षिण भारतमें शिवाराधना प्रचलित थी तो उत्तर भारतमें उसका प्रचलित होना असम्भव नहीं। राजतरङ्गिणीके कथनानुसार तो इसके भी पहले काश्मीरमें शिवोपासना प्रचलित थी। किन्तु अन्य प्रमाणों द्वारा पुष्टि न होनेके कारण यह बात निश्चित रूपसे नहीं कही जा सकती।

इन सब बातोंसे शैवधर्मकी प्राचीनता सिद्ध होती है, किन्तु कब और किस प्रकार उसका आरम्भ हुआ, यह नहीं बतलाया जा सकता। सम्भवतः मूर्त्ति पूजाके आरम्भकालमें ही उसकी सृष्टि हुई और वह भारतकी सीमा अतिक्रमकर दूर दूरके अनेक

* Introduction a l' Histoire du Buddhisme Par. E. Burnauf. P. P. 131—132.

देशोंमें परिव्याप्त हो गया। बलुचिस्तानमें हिन्दुओंका हिंगलाज नामक एक तीर्थ-स्थान है। अब भी शैव और शाक्त तीर्थयात्री वहाँ दर्शन करने जाते हैं। प्राचीन कालके हिन्दुओंमें प्रवास-प्रथा भलीभाँति प्रचलित थी। वेद, स्मृति, इतिहास प्रभृति संस्कृत साहित्यके ग्रंथोंमें इसके अनेकानेक प्रमाण विद्यमान हैं। हिन्दू उन दिनों भारत समुद्र पारकर बाली और यवद्वीप (जावा) तक गये थे और वहाँ उन्होंने हिन्दू-शास्त्र, हिन्दू-धर्म और विशेषतः शिवोपासनाका प्रचार किया था।

आज भी यवद्वीपमें ऐसी बहुतसी बातें दिखाई देती हैं, जिनसे सिद्ध होता है, कि वहाँ हिन्दू धर्म भलीभाँति प्रचलित था। प्रम्बनन नामक एक स्थानमें कहीं कहीं दो सौ से भी अधिक देव मन्दिर एवम् शिव, दुर्गा, गणेश और सूर्यकी पीतल किंवा पाषाणमयी प्रतिमायें अबतक विद्यमान हैं।

जब यवद्वीपमें बौद्ध धर्मका प्राबल्य हुआ, तब कुछ हिन्दू लोग समीपवर्त्ती बालि नामक छोटे द्वीपमें जा बसे। वे अब तक यथाविधि हिन्दू धर्मका पालन करते हैं। प्राचीन हिन्दुओंकी भाँति वे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंमें विभक्त हैं। अद्यापि वहाँ हिन्दू राजा राज्य करते हैं। ब्राह्मण निरामिष भोजी हैं। उनका यहींकी तरह सम्मान होता है। इतना ही नहीं उनकी रीति, नीति, आचार विचार, भाषा और साहित्य प्रभृति अनेक बातें ऐसी हैं, जो उन्हें हिन्दू सिद्ध करती हैं। वेद, पुराणादि अनेक हिन्दू शास्त्र और महाभारत, रामायण,

कामन्दकीय नीतिसार, अर्जुन-विजय प्रभृति ग्रन्थ भी वहाँ विद्यमान हैं। उनमें एक दन्तकथा प्रचलित है और तदनुसार वे अपने को कलिंग देशके आदि निवासी बतलाते हैं। शिवोपासना ही उनका प्रधान धर्म है, किन्तु ब्राह्मण लोग मूर्त्ति-पूजा नहीं करते।*

उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें रामेश्वर, पश्चिममें हिंगलाज और पूर्वमें भारतीय द्वीप-पुञ्ज पर्य्यन्त आज भी विभूति तथा रुद्राक्ष विभूषित विशाल शैव धर्म व्याप्त हो रहा है।

अन्यान्य देवताओंकी भाँति शिवके भी एकाक्षरीसे लेकर बीसाक्षरी तक बीज-मन्त्र पाये जाते हैं। प्रत्येक मन्त्रकी साधना और ध्यान-विधि एक दूसरेसे भिन्न हैं। कृष्णानन्द कृत तन्त्रसार तथा अन्यान्य ग्रंथोंमें शिवोपासना विषयक विस्तृत वृत्तान्त अङ्कित है। शिवोपासकके लिये विभूति लेपन और रुद्राक्ष धारण नितान्त आवश्यक बतलाया है।

जिस प्रकार शाक्तोंमें सुरापानको प्राधान्य दिया गया है, उसी प्रकार शैवोंमें भाँगके सेवनको इष्टसाधनाका एक अङ्ग माना है। साधकको मन्त्र द्वारा पवित्र कर ध्यान और भक्तिपूर्वक सानन्द उसका पान करना चाहिये। इसी प्रकार प्राणतोषिनी नामक ग्रन्थमें मन्त्र द्वारा शोधित विजया-धूम्र-पानको भी पाप-हर बतलाया है।

समस्त भारतके गृहस्थाश्रमी अनन्य भावसे शिवोपसना

---

* I. Crawford's History of the Indian Archipelago, 1820 Vol. II & Journal of Indian Archipelago, Vol. II, III & IV.

करते हैं, किन्तु बङ्ग-देशमें उसका अधिक प्रचार नहीं है। दक्षिण भारत, मध्यप्रान्त, युक्तप्रान्त और राजस्थानमें शिवोपासनाका विशेष प्रचार है। मेवाड़ प्रदेशके राजवंशी पहले शिवोपासक ही थे। वहाँ स्थान स्थानपर भव्य मन्दिर और मनोहर शिवलिङ्ग विद्यमान हैं। एकलिङ्ग नामक महेश-मन्दिर तो बड़ा ही विशाल और दिव्य है। उसकी द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें गणना होती है।

दक्षिण भारतमें शिवोपासना बहुत पहलेसे प्रचलित है, अतः वहां भी त्यागी और गृहस्थ उभय प्रकारके शिवोपासक अधिक परिमाणमें पाये जाते हैं। बङ्गदेशमें विशुद्ध शिवोपासक अधिक न मिलेंगे। वहाँ शाक्तोंका प्राबल्य है। किन्तु "पूजयित्वा शिवं आदौ शक्तिपूजा ततः परं।" (प्राणतोषिनी—धृत तोड़ल तन्त्र) अर्थात् पहले शिवकी पूजा करे, बादको शक्तिकी—इस नियमके वशीभूत हो वे शक्ति-पति शिवकी अर्च्चना और व्रतादि धर्म्मका पालन करते हैं।

शैवोंमें उदासीन सम्प्रदायी अधिक हैं। वे प्रायः संन्यासी और गोसाईं नामसे सम्बोधित किये जाते हैं। वैष्णव वैरागियोंको भी लोग गोसाईं कहते हैं। किन्तु कौन गोसाईं शैव हैं और कौन वैष्णव हैं यह उनका तिलक देखनेसे ज्ञात हो जाता है। वैरागी नासामूलसे लेकर केश पर्य्यन्त खड़ी और शैव ललाटके बाम पार्श्वसे दक्षिण पार्श्व पर्य्यन्त भस्मकी तीन रेखायें अङ्कित करते हैं। वैष्णवोंके तिलकको ऊर्ध्व-पुण्ड्र और शैवोंके तिलकको त्रिपुण्ड्र कहते हैं।

वेदोक्त कर्मकाण्डकी पुनः प्राण-प्रतिष्ठा.

जैन और बौद्ध धर्मके प्राबल्यसे वेदके कर्मकाण्डको क्षति पहुंची हुई देख, ईसाकी आठवीं शताब्दिमें कुमारिल भट्टने उसकी पुनः प्राणप्रतिष्ठा करनेका प्रयत्न किया। उनका जन्म ई० स० ७४१ में महानदीके तटवर्ती जयमङ्गल ग्राममें तैलङ्गी ब्राह्मण यज्ञेश्वर भट्टकी चन्द्रगुणा नामक स्त्रीके उदरसे हुआ था। उन्होंने बौद्ध धर्माचार्य श्रीनिकेतके निकट अध्ययन कर उस धर्मका ज्ञान प्राप्त किया और प्रचलित हिन्दू धर्मको नष्ट करनेके लिये वे अपने शिष्योंको कैसे कुतर्क वाक्योंकी शिक्षा देते हैं, यह भी जान लिया।

एक दिन वह चम्पा नगरीमें भ्रमण कर रहे थे और वेद धर्मकी स्थापना किस प्रकार की जाये इसी विचारमें मग्न थे। ज्यों ही वह राजप्रासादके नीचे पहुंचे, त्यों ही राजमहिषी, जो वैष्णव मतावलम्बिनी थीं चिन्तावश अकस्मात बोल उठीं—"किं करोमि-कगच्छामि कोवेदानुद्धरिष्यति" अर्थात् क्या करूं? कहां जाऊँ? ऐसा कोई नहीं दिखाई देता, जो वेदोंका उद्धार करे।

रानीके यह शब्द सुनते ही भट्टाचार्यने उत्तर दिया—"माविषीद बरारोहे भट्टाचार्य्योस्मिभूतले" अर्थात् हे रानी! चिन्ता न कर। मैं भट्टाचार्य अभी पृथ्वीपर विद्यमान हूं।

रानीने यह सुनते ही उन्हें अपने पास बुला भेजा और कहा, कि राजा मुझे बौद्ध धर्म स्वीकार करनेके लिये विवश कर रहे हैं, अतएव आप शीघ्र ही कोई उपाय कीजिये। इस प्रकार अचानक

एक उत्तम अवसरको प्राप्त होते देखे भट्टाचार्यने उसे बौद्धमत खण्डनके कितने ही श्लोक सिखा कर सूचित किया, कि प्रसंगवशात् राजाको यह सुनाते रहना। रानी प्रतिदिन ऐसा करने लगी। फल यह हुआ, कि कुछ दिनोंमें राजाके विचार परिवर्त्तित हो गये और बौद्ध धर्मपरसे उसकी आस्था उठ गई।

कुमारिल भट्टने * इतने दिनोंमें बौद्ध धर्म खण्डनके सात ग्रन्थ तैयार किये और विश्वरूप, मुरारिमिश्र, प्रभाकर, पार्थ-सारथी तथा मण्डन मिश्र प्रभृति अनेक शिष्योंको पढ़ाकर तैयार किया। बादको वे शिष्य मण्डली सहित चम्पा नगरीके राजा सुधन्वाके दरबारमें गये। वहां बौद्ध धर्मके आचार्यसे वादविवाद होना प्रारम्भ हुआ। परस्पर खण्डन होने लगा। बौद्ध वेदोंका खण्डन करनेमें कुतर्क वाक्योंका प्रयोग करने लगे, परन्तु भट्टाचार्यने युक्तिके कुल्हाड़ेसे उन कुतर्क रूपी वृक्षोंको छिन्न भिन्न कर डाला। बौद्धाचार्योंका कथन था, कि बुद्धि आत्मा है। भट्टाचार्यने उसे केवल पाखण्ड सिद्ध कर दिया। अन्तमें बौद्धोंके तर्क निर्बल प्रमाणित हुए, अतः वह मौन धारण कर बैठे। सुधन्वा राजाके मनमें यह बात पूर्णतया जँच गई, कि प्राचीन

---

* व्याकरणादि किसी एक शास्त्रके ज्ञाताको शास्त्री और अनेक शास्त्रोंके ज्ञाताको भट्ट कहते थे। भट्टमें जो लोग आचार्य होने योग्य होते थे, उन्हें भट्टाचार्यकी उपाधि मिलती थी। इस प्रकार यहाँ उपनाम, उपाधि किंवा आस्पद सप्रयोजन होते थे, परन्तु इस समय उनसे कोई अर्थ नहीं निकलता। मिश्र, त्रिवेदी, पाठक, शुक्ल, बाजपेयी, अग्निहोत्री, त्रिपाठी और अवस्थी प्रभृति उपाधियाँ कितने ज्ञान और कर्त्तव्य परायणताकी द्योतक हैं, इसपर विचार करना चाहिये।

ईश्वर प्रेरित वेदोक्त धर्म ही सत्य धर्म है। अतएव उसने उसका स्वीकार किया।

इस समय बौद्ध बुद्धकी शिक्षाको सर्वथा भूल गये थे। बुद्ध यद्यपि बेदका प्रमाण नहीं मानते थे, तथापि उन्होंने कभी उनकी निन्दा नहीं की थी। आत्मसंयम, भूतदया तथा अहिंसा—इन्हीं तीन बातोंका उनकी शिक्षामें प्राधान्य था। उनके अनुयायी शताब्दियोंके बाद उनकी यह शिक्षा भूल गये और ईर्ष्या-द्वेषके कारण वेदोंको निन्दाको ही अपना कर्त्तव्य समझने लगे थे।

बुद्धने लोगोंको पवित्र जीवन व्यतीत करनेकी शिक्षा दी थी। परन्तु उन्होंने उसे भी भुला दिया था। अब वे बौद्ध यती पहलेकी तरह ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए बिरक्तोंकी भांति न रहते थे। उनका शरीर अब विषयोंका निवासस्थान बन गया था। केवल कहने ही भरको वे सदाचारका पालन करते थे। बुद्धने स्त्रियोंको जिस द्रुष्टिसे देखनेको कहा था, अब वे उन्हें उस द्रुष्टिसे न देखते थे। धर्मकी आड़ लेकर वे दुराचार भी करने लगे थे। भट्टाचार्यने इन सब बातोंको प्रकाशित कर दिया। अपनेको सदाचारी बतलाते हुए बौद्ध कहांतक अनाचार करते हैं, यह उन्होंने स्पष्ट कर दिया। उन्होंने सिद्ध कर दिया, कि बौद्धोंके सिद्धान्त भ्रान्तिमूलक और वेदोंके प्रतिकूल हैं। उनका आचरण पाप पूर्ण और उन्हींकी शिक्षाके प्रतिकूल है।

भट्टाचार्यकी इन बातोंको सुनकर राजसभामें जो बौद्ध उपस्थित थे उनका मुख सूख गया। चारों ओरसे उनपर धिक्कारकी

बौछार होने लगी सभी उन्हें तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने लगे। अतः उनमेंसे अनेकोंने किसी अन्य प्रचलित पंथका स्वीकार कर लिया और कितने ही इस देशको छोड़ चीन, जापान, तिब्बत, ब्रह्मदेश, और सिंहल द्वीप प्रभृति स्थानोंको चले गये। इस प्रकार इस देशसे बौद्ध-दीप निर्वापित हुआ और पूर्ववत् (देखो वेदकालमें कर्म अर्थात् वर्णाश्रम धर्म) यज्ञादि क्रियाओंका पुनः आरम्भ हुआ।

इस प्रकार कुमारिल भट्टने बौद्धाचार्योंसे शिक्षा ग्रहण कर उन्हींसे वादविवाद किया और बौद्ध सिद्धान्तोंका खण्डन कर उन्हें पराजित किया। यद्यपि उनका कार्य पूरा हो गया परन्तु उन्होंने गुरु-द्रोहके पातकका प्रायश्चित्त करनेके लिये प्रयाग तीर्थमें त्रिवेणी तटपर चिता रच जल मरनेका निश्चय किया। वह अग्नि प्रवेश करने जा रहे थे, कि उसी समय वेदके ज्ञान कांडका उपदेश देते हुए श्रीमान शङ्कराचार्यजी वहाँ आ पहुंचे और शास्त्रार्थकी इच्छा प्रकट की। उन्होंने उत्तर दिया कि "मैं अग्नि प्रवेश करनेकी तयारी कर चुका हूं अब वादविवाद नहीं कर सकता। परन्तु आपकी इच्छा हो तो मेरे शिष्य मण्डन मिश्रसे शास्त्रार्थ कर लीजियेगा। बादको भट्टाचार्यने अग्नि प्रवेश किया और शङ्कराचार्यने मण्डन मिश्रसे वादविवाद कर विजय प्राप्त की।* उन्होंने कर्म मार्गको गौण तथा ज्ञान मार्गको प्रधान सिद्ध किया।

---

* इस वादविवादका निर्णय करनेके लिये मंडन मिश्रकी स्त्री सरस्वती मध्यस्थ बनाई गई थीं। उन्होंने निरपेक्ष भावसे शंकराचार्यका विजयी

केवलाद्वैत।

इस मतके संस्थापक श्रीशङ्कराचार्यका जन्म ई० स० ७८९ में केरल देश निवासी शिवगुरु ब्राह्मणकी सती नामक स्त्रीके उदरसे हुआ था। उनका जन्म नाम शङ्कर था। जब वह तीन वर्षके हुए तब उनके पिताका देहान्त हो गया। पाँच वर्षकी अवस्थामें उनका उपनयन संस्कार हुआ और वह वेदाध्ययन करने लगे। उनकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी, कि वह एक बार भी जो बात गुरु-मुखसे श्रवण कर पाते वह उन्हें याद हो जाती थी। सात वर्षकी अवस्थामें वह शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष इन छः अङ्गों सहित वेदादि विद्या पारङ्गत हो अपनी माताके पास रहने लगे।

शङ्करकी इस अलौकिक शक्तिकी प्रशंसा वहाँके राजा राजशेखरने सुनी। उसने बहुमूल्य भेंट दे, अपने मन्त्रीको शङ्करके पास भेजा और उन्हें बुला लानेको कहा। मन्त्रीने राजाकी आज्ञा पालन की, परन्तु शङ्करने वह भेंट लेना अस्वीकार किया। उन्होंने कहा,—"हम ब्रह्मचारियोंके लिये भिक्षा ही भोजन है? मृगचर्म ही वस्त्र हैं और त्रिकाल सन्ध्यादिक वेदोक्त कर्म ही सुयशके साधन हैं। इन्हें छोड़ हम हाथी, घोड़े

होना प्रकाशित किया। ऐसे गहन और ज्ञान-गम्य धार्मिक वादविवादका निर्णय करनेके लिये जिस स्त्रीको मध्यस्थ बनाना उभय धर्माचार्योंने स्वीकार किया था. वह स्त्री शास्त्रोंमें कितनी प्रवीण होगी स्त्री शिक्षाके विरोधी इसपर विचार करें।

और सुवर्ण मुद्रादिको लेकर क्या करें? इन्हें आप वापस ले जाइये।" *

उनकी ऐसी निस्पृहता देख मन्त्री वापस चला गया और सब वृत्तान्त राजासे निवेदन किये। मन्त्रीकी बातें सुन राजाकी आकाँक्षा और भी बढ़ गयी। वह स्वयं उनके दर्शनार्थ उपस्थित हुआ। उसने स्वरचित तीन नाटक शङ्करको दिखलाये। शङ्करने उन्हें पढ़, सराहना की और हर्ष प्रदर्शित किया।

देशमें प्रचलित अनेक मत-पंथोंका जाल नष्ट कर वेदोक्त ज्ञानकाण्डका उद्धार करनेकी शङ्करको तीव्र इच्छा हुई। उन्होंने कई बार संन्यास लेनेका विचार कर अपनी मातासे कहा, किन्तु उन्होंने आज्ञा न दी। शङ्कराचार्य व्यग्र रहने लगे। एक दिन वह अपनी माताके साथ कहींसे आ रहे थे। मार्गमें एक नदी पड़ती थी। उन दिनों वह सूखी रहती थी। परन्तु दैवयोगसे ज्यों ही वह दोनों उसके बीचतक पहुँचे त्योंही अकस्मात बर्षा हुई और नदीमें बाढ़ आ गई। पीछे लौट कर उस किनारे भी पहुंचना असम्भव था और इस पार पहुँचना भी कठिन था। अचानक डूब मरनेका समय आ उपस्थित हुआ। यह देखकर उनकी माता घबड़ा उठीं परन्तु उन्होंने समयसूचकताको काममें लाते हुए मातासे कहा, कि यदि आप मुझे संन्यास ग्रहण करनेकी आज्ञा प्रदान करें तो मैं बचनेका प्रयत्न करूँ अन्यथा आज दोनों जन डूब

---

* कहां आद्य शंकराचार्यकी निस्पृहता और कहां मठाधिकारके लिये वर्त्तमान शंकाराचार्योंकी मुकद्दमेबाजी।

मरेंगे।" माताने भयभीत हो घबड़हटमें "तथास्तु" कह दिया। शङ्करने प्रसन्न हो, उन्हें अपनी पीठपर बैठाल लिया और बड़े वेगसे दौड़ने लगे। क्षणमात्रमें वह नदीको निर्विघ्न पार कर गये। पुत्रके जीवनको अपना प्राण माननेवाली माता ठगीसी रह गई। शङ्करको जीवित रखनेके लिये संन्यास लेनेकी आज्ञा तो देदी परन्तु अब उनका बियोग उसे असह्य प्रतोत होने लगा।

माता आर स्वजनोंके लाख समझानेपर भी कुछ ही दिन बाद शाङ्करने सबको प्रणाम कर संन्यास ग्रहण किया। सर्व-प्रथम वे महात्मा गोविन्दनाथके पास गये। गोविन्दनाथ एक धर्मनिष्ठ तपस्वी थे। उन्होंने शङ्करको परमहंसकी दीक्षा दे उनका नाम शङ्कराचार्य रक्खा। शङ्कराचार्य दीर्घकाल पर्यन्त उनके निकट वेदान्त और उपनिषदोंका विशेष रूपसे अध्ययन करते रहे। अन्तमें उन्होंने प्रचार कार्यके लिये उनसे आज्ञा मांगी। गोविन्दनाथने बिदा करते समय उन्हें काशीसे कार्या-रम्भ करनेका उपदेश दिया।

स्वामी शङ्कराचार्यने प्रचार करनेके पूर्व कुछ काल बद्रीनारा-यणमें व्यतीत किया। वहांपर कई शिष्य उनके पास एकत्र हो गये। शङ्कराचार्य उन्हें पढ़ाते और वेदान्त सूत्र तथा उप-निषदोंपर व्याख्यायें लिखते रहे। बादको काशीमें जाकर उन्होंने कार्यारम्भ किया। उन्होंने वेदोक्त ज्ञान-काण्डका उपदेश देते हुए जीव और ब्रह्मकी एकता सिद्ध की और अद्वैत मार्गकी स्थापना कर उसका नाम केवलाद्वैत रक्खा। उन्होंने सर्व-प्रथम

सनन्दन नामक ब्राह्मणको संन्यास दीक्षा दे, अपना शिष्य बनाया और उसका नाम पद्मपादाचार्य रक्खा।

एक दिन वह नित्यनियमानुसार आह्निक कर्म करनेके लिये गंगातटकी ओर जा रहे थे। मार्गमें उन्हें चार भयङ्कर कुत्ते अपने साथ लिये हुए एक चाण्डाल मिला। जब शङ्कराचार्यने उसे दूर हटनेका संकेत किया तब उस चाण्डालने उत्तर दिया, कि आप वेदान्तमें कुशल होते हुए भी इस प्रकार भेदभाव क्यों रखते हैं? आप मुझे दूर रहनेको कहते हैं परन्तु मेरी देह आपकी देहसे भिन्न तो नहीं है! यह सुनकर शंकराचार्यके हृदयसे भेद-भाव दूर हो गया।

उन्होंने पाशुपत मतका खण्डन किया और कुमारिल भट्टकी सूचनानुसार उनके शिष्य मंडन मिश्रसे वाद-विवाद कर उसमें विजय प्राप्त की। इस वादविवादमें उन्होंने ज्ञानकाण्डको प्रधान और उपासना तथा कर्मको गौण सिद्ध कर दिया। मण्डन मिश्र भी उनके शिष्य हो गये। उन्होंने सुरेश्वराचार्य नाम धारण किया। एक बार दक्षिणमें भैरव मतके एक कापालिकने शंकराचार्यको एकान्तमें समाधिस्थ देख त्रिशूल उठाकर मारनेकी तैयारी की। परन्तु इतनेमें पद्मपादाचार्य आ पहुंचे और उन्होंने कापालिकको मारकर उनका प्राण बचाया। पूर्व परिचित सुधन्वा राजा भी उनका शिष्य हो गया और उनके सहायतार्थ सैन्य सहित उनके साथ रहने लगा। शङ्कराचार्यने आर्यावर्त्तमें सर्वत्र भ्रमण कर, उपदेश दे, हजारों शिष्य बनाये। उन्होंने उस समयके

प्रचलित सभी धर्म और मत पंथोंके आचार्योंसे वाद-विवाद कर ज्ञान मार्गका मण्डन किया और विजय प्राप्त कर अद्वैत मार्गका प्रचार किया।

परन्तु, उनको कुछ ही कालमें यह ज्ञात हो गया, कि साधारण जन-समाजमें अद्वैत मार्गका पूर्ण प्रचार होना कठिन है। अतएव उन्होंने लोकरुचिको मान्य कर समय संयोगोंको समझते हुए 'परमात्मा साकार' और 'मूर्तिपूजा' को कायम रहने दिया। यद्यपि वह ज्ञान मार्गके ही पूर्ण पक्षपाती थे, किन्तु कर्म और भक्तिको ज्ञानके अवान्तर साधन समझ कर वर्णाश्रमके अनुसार कर्मादि करनेकी आज्ञा प्रदान करते थे। केवल मोक्षके लिये ज्ञानमार्ग श्रेष्ठ है, यह बतलाते हुए वह "अहिंसा परमोधर्मः" "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" "जीवो ब्रह्मैव नापरः" और "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" अर्थात् अहिंसा परम धर्म है, ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या है, जीव और ब्रह्म दोनों एक ही हैं तथा विश्वमात्र ब्रह्म स्वरूप है, यह उपदेश देते थे और एकात्म भावका प्रचार करते थे।

अद्वैत मार्गका विशेष प्रचार करनेके लिये उन्होंने + द्वारि-

+ कुछ दिन हुए शारदामठके लिये झगड़ा हो गया और डाकोर प्रभास पाटन तथा द्वारिकामें पृथक पृथक संन्यासियोंने मठोंकी स्थापना कर ली। श्रृंगेरी मठके भी विभाग हो गये हैं और मैसूर, शंखेश्वर, नाशिक तथा करवीर (कोल्हापुर) में गद्दियां स्थापित हुईं। ज्योतिर्मठका उच्छेद हो गया है फिर भी कितने ही वेषधारी संन्यासी उस मठके शंकराचार्यकी उपाधि धारण कर भ्रमण करते हुए पाये गये हैं। इनके अतिरिक्त धोलका-पाटन, डेसर तथा अन्यान्य स्थानोंके साधुओंने शंकराचार्यकी उपाधि धारण कर ली है।

कामें शारदामठ, जगन्नाथपुरीमें गोवर्धनमठ, हरिद्वारमें ज्योतिर्मठ, मैसूरमें श्रृंगेरीमठ और काशीमें सुमेरुमठकी स्थापना कर उनके द्वारा जन-समाजको सतत उपदेश मिलता रहे ऐसा प्रबन्ध किया।* ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता और दशोपनिषद् इत्यादिपर ब्रह्म-विद्या प्रतिपादक भाष्योंकी रचना की। इस प्रकार ज्ञान, कर्म और

---

* जब जीव और शिव (ब्रह्म) एक ही हैं तो किसकी भक्ति किसे करनी चाहिये? किसी जीवको दुःख भी क्यों हो? ऋग्वेदमें "द्वे सुपर्णा सयुजा सखाया" अर्थात् जीव और ब्रह्म भिन्न हैं ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। यदि जगत मिथ्या है तो कहनेवाले सुननेवाले और उनका उपदेश भी मिथ्या ठहरा! भूतकालके ग्रन्थोंसे ज्ञातहोता है, कि पूर्वकालमें जगत था। वर्त्तमान समयमें प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और भूतकालकी भाँति भविष्यमें भी होना चाहिये। संसार असार है, जगत मिथ्या है ऐसे निराशाजनक तत्व वेदमें नहीं हैं। यह शरीर केवल हाड़, माँस और चामका पिन्जर नहीं है! संसार असार नहीं है, परन्तु वह—संसार—सारयुक्त ही है। सार वस्तु मोक्ष है। शरीर उसे प्राप्त करनेका साधन है। संसार विस्तृत कार्य क्षेत्र है। उसमें रहकर सार—अभ्युदय—मोक्ष साधन ही कर्त्तव्य है। तभी तो वेदोंमें "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः" अर्थात् "कर्म करते हुए सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहो" और "त ऋते श्रांतस्य सख्या देवा" (ऋग्वेद ४-३३-६१) "बिना परिश्रम किये देव मित्रता नहीं करते" अर्थात् पुरुषार्थ और प्रयत्न करनेवालेकी ही देव सहायता करते हैं, इस प्रकारके स्पष्ट उल्लेख हैं। इनपर विचार करनेसे ज्ञात होता है, कि शरीर और संसार मिथ्या नहीं है परन्तु मोक्ष प्राप्तिके क्षेत्र और साधन हैं।

वेदमें जीव, ब्रह्म और प्रकृति इन तीनोंको अनादि माना है। परन्तु जैन और बौद्ध धर्मवाले केवल जीव और प्रकृतिको ही अनादि मानते हैं। अतः

भक्ति मार्गका यथोचित उपदेश दे, वेद धर्मकी पुनः प्राणप्रतिष्ठा कर केवल ३२ वर्षकी छोटीसी अवस्थामें शंकराचार्य बदरिकाश्रममें समाधिस्थ ❋ हुए।

उनके बाद उनके शिष्य उपदेश देनेका काम चलाने लगे और वह अब तक चल रहा है। परन्तु आर्यावर्त्तमें आज कहीं भी शुद्ध अद्वैत मतका पालन नहीं होता। पुराणोंके संसर्गसे उसमें बहुत कुछ अन्तर आ गया है। कितनेही लोग शङ्कराचार्यके सत्य उपदेशको न समझ सकनेके कारण शुष्क वेदान्ती—केवल बातोंके ज्ञानी हो गये हैं फिर भी प्रकारान्तरसे यह मत भली भाँति प्रचलित है और ब्राह्मण मात्र इस धर्मके अनुयायी हैं। हिन्दू समुदाय आज भी आदि शङ्कराचार्यको जगद्गुरुके गौरवपूर्ण उपनामसे सम्बोधित करता है। उनके उपदेशसे वर्ण-व्यवस्थाका दृढ़ सङ्गठन हुआ और जैन एवम् बौद्ध सम्प्रदायका प्रचार होना बन्द हो गया।

ज्ञात होता है, कि शंकराचार्यने उनको परास्त करनेके लिये ब्रह्मके अनादित्वको विशेष महत्व देना आवश्यक समझ "जीव और ब्रह्म एक ही हैं" तथा "ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या है" इन सिद्धान्तोंका प्रचार किया।

❋ शाक्त पंथके एक मनुष्यने शंकराचार्यको विष खिला दिया था। इससे उनका स्वास्थ्य नष्ट हो गया था। यद्यपि पद्मपादाचार्यकी चिकित्सा से कुछ लाभ पहुंचा, परन्तु अन्तमें वह उसीके कारण छोटी अवस्थामें समाधिस्थ हुए थे। कितने ही प्रधान धर्माचार्योंको इसी प्रकार अपना जीवन उत्सर्ग करना पड़ा है।

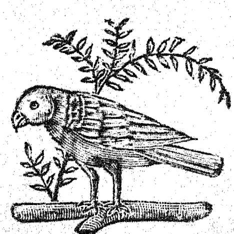
इस मतमें पीछेसे कितनेही पंथ हो गये । दशनामी*
संन्यासी जो ब्राह्मण जातिके ही होते हैं, मठाधीश आचार्यों को
मानते हैं, शिव लिङ्गका पूजन करते हैं और त्रिदण्ड, कमण्डल,
रुद्राक्ष तथा भस्म धारणकर भ्रमण किया करते हैं। खाखी
भी संन्यासियोंकी भाँति रहते हैं। नागा साधुओंका समुदायही
भिन्न है। वे किसी मठके शङ्कराचार्यको नहीं मानते। गेरुवा
वस्त्र पहनते और शिव लिङ्गका पूजन करते हैं। संन्याससे
भी ज्ञानमार्गमें आगे बढ़ सर्वमयता ग्रहणकर परब्रह्म भावको
प्राप्त हो गये हों ऐसे परमहंस भी स्वतन्त्र हैं! इनके अतिरिक्त
अतीत, अलखनामी अवधूत, कुटीचर, बहुदुक, कड़ालिङ्गी,
ऊर्ध्ववाहु, आकाशमुखी, नखी, रुखरस, सुखरस इत्यादि
साधुओंके अनेक पन्थ इसके अन्तर्गत हैं। + यह सभी शिव-लिङ्ग-

---

* गिरि, पुरी, भारती, सागर, आश्रम, पर्वत, तीर्थ, सरस्वती, वन और आचार्य-इनमेंसे किसी एक शब्दको नामके अन्तमें प्रयोग करने वाले दशनामी संन्यासी कहे जाते हैं। इनमें भी पांच श्रेष्ठ माने जाते हैं।

+ अतीत, शिव और देवी दोनोंके उपासक हैं और उनके मन्दिरोंके पुजारी हैं। विवाह नहीं करते। व्यवसाय नहीं करते और सदा त्यागी रहते हैं। इनमें भी अनेक भेद हैं। कोई कोई विवाहकर संसारी होते हैं और उद्योग भी करते हैं। हैदराबाद और कच्छके अतीतोंकी पोरबन्दर, बम्बई, भुज और हैदराबाद इत्यादि स्थानोंमें शराफे की बड़ी बड़ी दूकानें हैं। कितनेही नौकरी करते हैं। कितनेही लक्षाधिपति हैं और कितनेही जमीन्दार भी हैं। लखनऊ, सीतामढ़ी, गोरखमण्डी, तारनेतर, वींगनाडा गोपनथ इत्यादि स्थानोंके मठाधीश बड़े मालदार हैं। यह लोग इस देशके

का पूजन करते हैं। इन सबोंका एक मात्र व्यवसाय भिक्षाटन है। उसीसे निर्वाह करते हैं।



प्रत्येक भागमें पाये जाते हैं। युक्त प्रदेशके अतीत सबसे नमो नारायण कहते हैं।

अलखनामी—मिस्टर क्रूकके कथनानुसार इस मत का स्थापक लालगीन नामक चमार था। ये भीख मांगते समय अलख शब्दका उच्चारण करते हैं और ऊँची टोपी धारण करते हैं।

अवधूत—मंत्र तंत्राके लिये प्रसिद्ध हैं। तीर्थ यात्रा और भिक्षाटन इनका कार्य है। इनकी स्त्रियां भी अन्य स्त्रियोंको गुरु मंत्र दे अपने पन्थमें दीक्षित कर लेती हैं। अधिकांश दक्षिण भारतमें पाये जाते हैं।

आकाशमुखी—मुखको आकाशकी ओर रखकर फिरते हैं। ऊर्ध्ववाहु हाथको ऊंचा उठाये रहते हैं। नखी नख बढ़ाते हैं। कड़ालिंगी शिव लिगांकित कड़े धारण करते हैं। इसी प्रकार औरोंमें भी कुछ न कुछ विशेषता पाई जाती है। किन्तु सभी शिव लिंगकी पूजा करते हैं।

रसेश्वर ।

इस मतवाले भी शैव हैं। इसकी भी स्थापना ईसाकी छठीं शताब्दिमें हुई हो ऐसा प्रतीत होता है। प्रत्यभिज्ञा मार्ग में मोक्षकी व्यवस्था की है। सो उचित है, परन्तु शरीर रूपी साधन द्वाराही उसका सम्पादन हो सकता है अतः सर्व प्रथम शरीरको अमर बनाना चाहिये। इस विचारको लेकर अभिनव गुप्ताचार्यके किसी शिष्यने इसकी स्थापना की हो, ऐसा ज्ञात होता है।

इस मतका सिद्धान्त यह है कि पारदादिके विधिवत पाना-दिसे इस शरीरको अजरत्व और अमरत्वकी प्राप्ति हो सकती है। पारद (पारा) का मारण, मूर्च्छित करण और बन्धनादि क्रियाओंका विवरण और स्वरूप बतलाकर उसका उपयोग बत-लाया है। पारदके दर्शन, दान, पूजन और भक्षणसे भी अनेक फलकी प्राप्ति मानी गयी है। पारदके शिव लिङ्गका माहात्म्य काशी आदिके लिङ्गसे भी अधिक और पारदकी निन्दा करनेवाले को पातकी कहा है। वे अपने मतकी पुष्टिमें पारदको रस बतला कर "रसो वै ब्रह्म" इस श्रुति वाक्यका प्रयोग करते हैं। अध्यातम विद्यावाले इसका अर्थ आध्यात्मिक रीतिसे करते हैं। वे जीवन रूप जड़ धातुको ज्ञान-रूप रसायनसे ब्रह्मरूप सुवर्ण बनाना बतलाते हैं। इस मतमें भी गोसाईं, साधु और सन्यासी अधिकांश हैं। यह भी शिव लिङ्गकी पूजा करते हैं। त्रिपुण्ड्र, भस्म और रुद्राक्ष धारण करते हैं तथा शिव भक्ति-परायण रहते हैं।

प्रत्यभिज्ञा ।

यह मार्ग काश्मीरमें अभिनव गुप्ताचार्य्य द्वारा ईसाकी छठीं शताब्दिमें स्थापित हुआ था। इस मार्गका मुख्य सिद्धान्त यह है कि जीव शिवसे भिन्न नहीं है और दृश्य जगत शिवका आभास है। अर्थात् शिव स्वेच्छा और स्वक्रियासे जगत रूपमें अवभासित होता है। प्रमेय और प्रमाता एक दूसरेसे भिन्न नहीं हैं, परन्तु अनादि अज्ञान (अविद्या) से प्रमाता अपनेको प्रमेयसे भिन्न देखता है। अतः अज्ञानकी निवृत्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। इस सम्प्रदायमें गोसाईं, साधु और संन्यासी बहुत पाये जाते हैं। त्रिपुण्ड्र, भस्म और रुद्राक्ष धारण करते हैं। शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं और शिव भक्ति परायण रहते हैं। इस मतको माननेवाले काश्मीरमें* विशेष पाये जाते हैं।

---

* काश्मीरके ब्राह्मण मांस भक्षण करते हैं, मुसलमानके चूल्हेपर रोटी बना लेते हैं और जल भरनेवाला नोकर मुसलमान रखनेमें दोष नहीं मानते। जब वहाँ मुसलमानोंका विशेष प्राबल्य था तबसे इस प्रथाका प्रचार हुआ होगा। इन लोगोंका आचार यद्यपि वहाँ ऐसा ही है परन्तु जब वे भारतके दूसरे प्रान्तोंमें जाते हैं तो अच्छे से अच्छे ब्राह्मणके हाथका भी भोजन ग्रहण नहीं करते !

पाशुपत मार्ग ।

इस मार्गके स्थापक नकुलीशका जन्म दक्षिण भारतमें ईसा की पांचवीं शताब्दिमें हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है। उन्होंने पाशुपत नामक सूत्र-ग्रन्थकी रचना की है। इस मार्गवाले ललाट, हृदय, नाभी इत्यादि स्थानोंमें शिव लिङ्गका चिह्न अङ्कित करते हैं। हठ योगसे इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस मतके माननेवालोंकी नित्यचर्या देखनेसे उनका कापालिक और अघोरी लोगोंसे सम्बन्ध हो, ऐसा प्रतीत होता है।

लाभ, मल, उपाय, देश अवस्था, विशुद्धि, दीक्षाकारीत्व और बल यह आठ पञ्चक और भैक्ष्य, उत्सृष्ट तथा उपलब्ध इन तीन वृत्तियोंको जाननेवाले तथा उनका ज्ञान अन्योंको कराने वाले गुरु माने जाते हैं। मिथ्या ज्ञानादि पञ्चमल पशुत्व (जीवत्व) के मूल हैं अतः गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्तकर उसमें वृद्धि करना इष्ट है। भिक्षा मांगकर रास्तेमें पड़ा हुआ अन्न अथवा जूठन खानेसे मिथ्या ज्ञानादि मलमें न्यूनता होती है। जप ध्यानादि क्रियाओंसे आत्मा और ईश्वरमें सम्बन्ध स्थापित होता है। भस्म स्नान, भस्म शयन प्रभृति क्रियायें व्रत हैं। जागृत होनेपर भी सोते हुएके सदृश चिह्न दिखलाना, शरीर कम्पायमान करना, प्रभृति योगके द्वार हैं। दुःखोच्छेद और ऐश्वर्य प्राप्ति—यह दो इस शास्त्रके फल हैं और उसे वह मोक्ष मानते हैं। इस मतके माननेवाले अधिकांश दक्षिणमें पाये जाते हैं।

दत्तात्रेय पन्थ।

ऋषि प्रणीत योगी मार्गमें मतभेद हो जानेके कारण ईसा की पाँचवीं शताब्दिमें उससे पृथक हो किसी योगीने दत्तात्रेय पन्थकी स्थापना की। महात्मा दत्तात्रेय परम ब्रह्मनिष्ठ योगी थे। उनका जन्म त्रेतायुगमें अत्रि ऋषिकी पत्नी महासती अनुसूया के उदरसे हुआ था। उन्होंने षट्शास्त्रोंका अध्ययन किया था और उनके सत्य तत्वोंकी जाँच की थी। उन्होंने सहस्रार्जुना-दिको ब्रह्म उपदेश दिया था। मायासे विरक्त रहनेके लिये उन्होंने अपने आप २४ गुरु* मान लिये थे और उनके गुणोंका स्वीकार तथा दोषोंका त्याग किया था। यही ज्ञान उन्होंने गोदावरी+ के तटपर यदुराजको समझाया था। ऐसे ज्ञानी और परम महात्माका ज्ञान जैसा तैसा न था। इसीलिये उनके नामपर उनके उपदेशको ही प्रमाण मान इस धर्मकी स्थापना की गयी।

गुरु दत्तात्रेयने ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य जातिके पुरुषोंको ब्रह्मचर्या, वानप्रस्थ और संन्यास धारण करने तथा परमहंस, योगी, मुनि और साधु होनेकी आज्ञा प्रदान की है। इस पंथ-

---

*पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, कपोत, अजगर, समुद्र, पतंग, भ्रमर, हस्ती, व्याध, हरिण, मत्स्य, पिंगला, चील, बालक कुमारिका, लुहार, सर्प, मकरी और भंवरी इन चौबीसोंके स्वाभाविक गुणोंका अवलोकनकर अच्छे अच्छे गुणोंको स्वीकार कर दत्तात्रेय इन्हें अपना गुरु मानते थे।

+ गोदावरीके तटपर नरसोवा वाडीमें उनका मन्दिर है।

वाले अपनी आत्माको ईश्वर रूप और सर्वज्ञ मानते हैं। उसे मूर्त्तिमान समझ, अखण्ड समाधिमें रहनेके लिये अष्टांग योगकी सभी क्रियायें करते हैं। अहिंसा धर्म और जीव दयाकी ओर विशेष ध्यान देते हैं। यह लोग अपने गुरुकी आज्ञा मानते हैं और सत्य शास्त्रका अध्ययन करते हुए मोक्ष-साधनामें कालक्षेप करते हैं।

ईश्वर निराकार है। सर्व सृष्टि आत्माकी भ्रान्तिसे कल्पित हुई है। प्रकृतिके सर्व धर्मोंका तिरस्कार करना, निवृत्ति रूप गङ्गामें निमग्न रहना, अकृत्य और अचिन्त्य भाव ज्ञानी-जनोंका स्वभाव है। सत्य, तप, अपरिग्रह, दया, क्षमा, धर्म, अर्थ, मोक्ष और वैराग्य संपादन, मादक द्रव्योंका त्याग इत्यादि ज्ञान-मार्गके बोधक, इनके धर्म सिद्धान्त हैं। परन्तु बादको पुराणों का प्रभाव इनपर भी पड़ गया। योग ज्ञान न समझ सकनेके कारण मूर्त्तिपूजा प्रचलित हुई और मद्यमांसका भी प्रयोग होने लगा।



ऋषि प्रणीत योगी मार्ग।

यह ऋषि प्रणीत योगी मार्ग श्रीरामचन्द्रजीके गुरू वशिष्ठ मुनि द्वारा स्थापित हुआ था, परन्तु ज्ञानागम्य और कठिन होनेके कारण परमहंस तथा संन्यासियोंको छोड़, जन साधारणने इसका स्वीकार नहीं किया था। इसीसे इसका विशेष प्रचार न हो पाया।

वेदके ज्ञान काण्डको प्रधान मानकर वेदोक्त यज्ञादि क्रियायें करना, जीव हिंसा न करना, गायत्रीका जप करना और प्राणायामादिसे चित्तको शुद्ध कर सर्वव्यापक, निराकार निरञ्जन, तथा ज्योतिस्वरूप परमात्मामें लीन रहना—यह इस धर्मके मुख्य सिद्धान्त हैं। महात्मा वेदव्यास भी इसी मतके अनुयायी थे। आत्मा सर्वत्र एक ही है। वेदका ज्ञानकाण्ड ही सत्य धर्म है। पूर्णज्योति एक प्रकारकी आत्मदृष्टि है। अविद्या संसारका मूल है। स्त्री सङ्ग नरकका द्वार है। देव कल्पित है। सभी क्रियायें मनोविकारकी गढ़न्त हैं। गुरू आज्ञाही महावाक्य है। अहं ब्रह्मास्मि यह मन्त्र है। सोहं शब्द ज्ञानका घर है। ॐ माननीय मन्त्र है। नादाभ्यास स्वर्ग दर्शन है। धौति, नेति, वस्ती, नौलि प्रभृति क्रियाओं द्वारा सिद्धि प्राप्त होती हैं। इत्यादि तत्वोंको इस मतमें वेदव्यासने ही सम्मिलित किये हैं। इसी मार्गमें पतञ्जलि नामक ऋषि हुए। उन्होंने इस मार्गके सिद्धान्त सरलता पूर्वक समझे जा सकें, इस लिये योगानुशासन किंवा योगदर्शन नामक ग्रन्थकी

रचना की। इनकी परंपरामें ई० स० के प्रारम्भ कालमें मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोरक्षनाथ नामक सुप्रसिद्ध योगी उत्पन्न हुए। उन्होंने हठयोगप्रदीपिका नामक ग्रन्थ लिखा है।

इस धर्मके अनुयायियोंने बौद्ध और जैनादिकोंके साथ बाद-विवाद भी किया था। वास्तवमें पुराणोक्त आचार्य तथा इन योगियोंने ही बौद्ध व जैनोंका सामनाकर हिन्दूधर्मकी रक्षा की थी। इस मतके कितने ही तत्व जैन व बौद्धादिकोंने स्वीकारकर अपने धर्मों में सम्मिलित कर लिये हैं। इस मतके आचार्य त्यागी और फलाहारी होते हैं। उनके शिष्य मौनव्रत धारण कर सकते हैं। इसमें भी मत भेद हो जानेके कारण अनेक पन्थ हो गये हैं। ईसाकी पांचवीं शताब्दिमें नाथ* और दत्तात्रेय नामक दो भेद हो गये तथा पौराणिकोंके संसर्गसे देवी देवताओंकी पूजा और हवनादि कर्मों का प्रचार हुआ। अब भी कितनेही योगी शुद्ध धर्म पालन करते हैं परन्तु इनका अधिकांश मत-भ्रष्ट हो जानेके कारण

---

* नाथ पंथ—धर्मनाथ नामक परमहंसने ईसाकी पाँचवीं शताब्दिमें स्थापन किया था। "निराकार, निरञ्जन, ज्योतिस्वरूप परमेश्वरको मानना, होम, हवन इत्यादि करना, भैरव, महावीर, देवी, शिव और सूर्य यही उपास्य देव हैं। अलखने खलककी रचना की है। सर्व प्रथम खप्पर उत्पन्न हुआ। मृत्यु तथा काल खप्परके शिष्य हैं। समाधि मोक्षस्थान है। स्वकल्पना ही माया है। हठ योग तन व मनको शुद्ध करनेवाला है। क्रिया न करनेवाले पापी हैं। यन्त्र तन्त्र सर्वथा सत्य हैं। जीव दयाके पालनमें पुण्य है। अधर्मियोंके मारनेसे देवादि प्रसन्न होते हैं—इत्यादि इनके धर्मसिद्धांत हैं।

'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तंत इति धारयन' इन वाक्योंके "मैं ब्रह्म हूं" अतः प्रत्येक पापोंसे अलिप्त हूँ इन्द्रियां स्वयम् अपना काम करती हैं उसमें पाप कैसा" इस प्रकारके अर्थ कर पापाचारमें पड़ गये हैं। नाथ पन्थमें भी कनफटा + कनिया, जोगी, कालबेलिया इत्यादि अनेक पेटा पंथ हो गये हैं।

+ कनफटा—राजपूतानेमें विशेष हैं। गोरखनाथको गुरू मानते हैं। गोरखपुरमें गोरखनाथका मन्दिर तथा नैपालमें पशुपतिनाथका मन्दिर इनका तीर्थ है। वही देव इनके इष्टदेव हैं। (२) कानियाजोगी—इनकी धारणाएँ भी कनफटाओंके समान हैं। सांप दिखाकर पेट पालते हैं। (३) कालवेलिया—यह राजपूताना तथा युक्त प्रदेशमें पाये जाते हैं। (४) ज्ञानदेव तथा एक नाथके पन्थ महाराष्ट्रमें प्रचलित हैं। वे इसी नाथ पन्थकी शाखायें हैं।

शाक्त सम्प्रदाय ।

शाक्त सम्प्रदाय भी कम प्राचीन नहीं। किन्तु, उसकी कब और किसने स्थापना की, यह नहीं बतलाया जा सकता। ऐसी कोई जाति और धर्म्म नहीं है, जिसमें शक्तिके उपासक न हों। प्राय: समस्त संसारमें स्त्री-तत्वकी उपासना प्रचलित है। वेदोंके आधारपर स्त्री तत्वको ईश्वरसे भिन्न माननेके कारण ही इसकी सृष्टि हुई है।

वेदोंमें ईश्वरकी इच्छा किंवा वासनाको विश्वोत्पत्तिका कारण बतलाया है। ऋग्वेदका कथन है, कि प्रथम ईश्वरके हृदयमें इच्छाका उद्भव हुआ। बादको वह इच्छा ही विश्वोत्पादक बीज बन गयी और उससे संसारकी सृष्टि हुई। सामवेदका कथन है, कि ईश्वरको अकेला रहना अच्छा न लगा। अत: उसे किसी दूसरेकी इच्छा हुई। इच्छाके साथ ही उसने आपको दो भागोंमें विभक्त किया। एक स्त्री तत्व हुआ और दूसरा पुरुष तत्व। उन्हीं दोके संयोगसे सृष्टि उत्पन्न हुई। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणका कथन है, कि सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छा कर ईश्वरने द्विधा रूप धारण किया। दक्षिण अर्द्ध भाग पुरुष और वाम अर्द्ध भाग स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया। बादको उनसे सृष्टिका विस्तार हुआ।

इस प्रकार ईश्वरने जो स्त्री तत्व उत्पन्न किया वही प्रकृतिके नामसे सम्बोधित हुआ। अनेक धर्म्मावलम्बियोंने उसे ही माया, महामाया किंवा शक्तिके नामसे पुकारा हैं। उसका और ब्रह्मका

स्वभाव एक ही माना गया है। जैसे ब्रह्म अनादि और अनन्त है, वैसे ही प्रकृति भी अनादि और अनन्त है। ब्रह्मसे उत्पन्न होनेके कारण वह ब्रह्मके सभी गुणोंसे युक्त है।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराणका कथन है, कि बादको सृष्टि विस्तारके लिये प्रकृतिने अनेक रूप धारण किये। ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी सावित्री, लक्ष्मी और दुर्गा किंवा पार्वती नामक पत्नियां उसीके प्रधान रूप हैं। इनके अतिरिक्त प्रकृतिने अपने अंश, कला, कलांश और अंशांशसे अनेक रूप धारण किये। अंशसे गङ्गा, तुलसी, मनसा, शान्ति किंवा देवसेना और काली प्रभृति स्वरूपोंकी सृष्टि हुई। कलाओंसे स्वाहा, स्वधा, दक्षिणा, स्वस्ति, पुष्टि, तुष्टि और दिति तथा अदिति नामक दैत्य और देवोंकी मातायें उत्पन्न हुईं। इसी प्रकार कलांश और अंशांश द्वारा अनेक प्रकारकी देवियाँ, अप्सरायें, मानव :स्त्रियाँ और स्त्री शरीर धारी पशुओंका प्रादुर्भाव हुआ।

कहनेका तात्पर्य्य यह है, कि संसारमें जितने स्त्री तत्व किंवा स्त्रियोंके स्वरूप हैं, उतने सब, उसी अनादि अनन्त प्रकृतिके स्वरूप माने गये हैं। जिस सम्प्रदायमें उनकी उपासनाका प्रचार है, उसे ही शाक्त सम्प्रदाय कहते हैं। प्राचीन ग्रन्थोंको देखनेसे ज्ञात होता है, कि यहाँ बहुत पहलेसे प्रकृति—पूजा किंवा शक्तिकी उपासना प्रचलित है। बौद्धोंने भी विघ्न विनाशनी तारादेवीका अस्तित्व स्वीकार किया है।

इस प्रकार शाक्त सम्प्रदायकी प्राचीनता और उसके मूल-

तत्वोंको देखनेसे ज्ञात होता है, कि वेदमन्त्रोंके आधारपर प्राचीन कालमें ही इसकी सृष्टि हुई थी। सम्भव है, कि ऋषि मुनियोंने ही इसका प्रचार किया हो। किन्तु कालान्तरमें अन्यान्य धर्मोंकी भाँति इसमें भी अनेक परिवर्तन हुए। यहाँ तक, कि उन परिवर्तनोंने इस सम्प्रदायका महत्वही नष्ट कर दिया। लोग इसे घृणा और तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने लगे। उन परिवर्तनोंके बाद इस सम्प्रदायका जो रूप सङ्गठित हुआ उसका वर्णन नीचे दिया जाता है।

शाक्त सम्प्रदायकी धार्मिक विधि और क्रियायें निश्चित करनेके लिये "तन्त्र शास्त्र" नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ मालाकी सृष्टि हुई। तन्त्र ग्रन्थ बहुधा शिव और पार्वतीके सम्बाद रूपमें लिखे गये हैं। पार्वती मन्त्र प्रयोगादि धर्म विधि विषयक नाना प्रकारके प्रश्न करती हैं और शिव उन प्रश्नोंका विस्तार पूर्वक उत्तर दे, उन्हें धर्म-रहस्य समझाते हैं। बीच बीचमें वे उन्हें सावधान करते हैं, कि यह बातें अधर्मियोंके कान तक न पहुँचने पावें। अधर्मी शब्दका तात्पर्य, जिनकी शाक्त सम्प्रदाय पर श्रद्धा न हो, उन्हींसे है।

शाक्त सम्प्रदायी तन्त्र शास्त्रको पञ्चम वेद कहते हैं और उसे उतनाही प्राचीन तथा प्रमाण भूत मानते हैं जितना वेदको। कुछ तन्त्र ग्रन्थ प्राचीन हैं सही, किन्तु अधिकांश दशवीं शताब्दिके बाद ही लिखे गये हैं। अनेक तन्त्र ग्रन्थ ऐसे भी हैं, जिनकी सृष्टि बङ्ग, आसाम और पूर्व भारतमें हुई है और उनका वहीं प्रचार है।

दक्षिण किंवा पश्चिम भारतमें लोग उनका नाम तक नहीं जानते।

इन्हीं तन्त्र ग्रन्थोंपर शाक्त सम्प्रदाय अवलम्बित है। वेद और योगशास्त्रकी कितनी ही बातें उनमें पाई जाती हैं, अतः सम्भव है, कि प्राचीन तन्त्रोंकी रचना आरम्भमें उनके आधारपर हुई हो ; किन्तु बादको उनसे और वेद तथा शास्त्रोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रहा।

तन्त्रोक्त उपासना वैदिक उपासनासे भिन्न है। तान्त्रिक मूर्त्तिकी स्थापनाकर मन्त्र द्वारा पहले उसकी प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। बादको उसे सजीव और साक्षात् देवता मान, उसका आवाहन कर, उसे पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, नैवेद्य तथा वस्त्रादि अर्पण करते हैं।

समस्त शाक्त एक ही शक्तिकी उपासना नहीं करते। कोई काली, कोई तारा, कोई सिंहवाहिनी, कोई जगद्धात्री और कोई किसी अन्य स्वरूपको अपना उपास्य देव मानते हैं।

तन्त्रोंमें यह भी बताया है, कि गुरु और शिष्यमें कौन कौन गुण होने चाहियें, कैसे शिष्योंको दीक्षा देनी चाहिये, कैसे गुरुके निकट दीक्षा लेनी चाहिये—यह सब बातें उनमें भली भांति वर्णित हैं। अनधिकारी गुरु किंवा शिष्य होनेपर दोनोंकी जो दुर्गति होती है, वह किसीसे छिपी नहीं। यदि उन नियमोंके अनुसार गुरु और शिष्योंमें गुणोंकी खोज की जाय तो इसमें सन्देह नहीं, कि अधिकांश गुरु और शिष्य अनधिकारी ही प्रमाणित हों।

तन्त्र ग्रन्थोंमें दीक्षाके समय शिष्योंको गुरु द्वारा बीजमन्त्र ग्रहण करनेका आदेश दिया गया है। भिन्न भिन्न देवताओंके बीजमन्त्र भी भिन्न भिन्न हैं। तन्त्र ग्रन्थोंमें वे बड़ी युक्तिके साथ छिपाकर रक्खे गये हैं। छिपानेके लिये भी कितनेही नवीन शब्द और कितनेही शब्दोंके नवीन अर्थोंकी सृष्टि की गयी है। वैसे शब्द और अर्थ तन्त्र भिन्न अन्य ग्रन्थोंमें नहीं दिखाई देते। उदाहरणके लिये हम दो एक मन्त्र यहां उद्धृत करते हैं।

काली बीज।

"वर्गाद्यं वन्हि संयुक्तं रतिविन्दु समन्वितम्"

वर्गाद्य अर्थात् "क्," वन्हि अर्थात् "र" रति अर्थात् "ई" और विन्दु अर्थात् अनुस्वार। इन सबको एकत्र करनेसे "क्रीं" बनता है। यही कालीका बीज मन्त्र है। और देखिये:

भुवनेश्वरी बीज।

"नकुलीशो अग्निमारूढ़ो वामनेत्रार्धचन्द्रवान्।"

नकुलीश अर्थात् "ह्" अग्नि अर्थात् "र्" वामनेत्र अर्थात् "ई" और अर्धचन्द्र। इन सबको एकत्र करनेसे "ह्रीं" बना। यही भुवनेश्वरी बीज है। इसी प्रकार लक्ष्मी, दुर्गा, वागीश्वरी, सरस्वती, महालक्ष्मी, श्मशान कालिका, श्यामा, भद्रकाली, महाकाली, त्रिपुरा, नित्य भैरवी, रुद्र भैरवी, प्रभृतिके बीज मन्त्र तन्त्र ग्रन्थोंमें अङ्कित हैं। किन्तु, उन सबका सम्प्रति प्रचार नहीं है।

कुलार्णवके कथनानुसार शाक्तोंके मुख्य दो भेद हैं—पश्वाचारी

और वीराचारी। वीराचारी मद्य और मांसका व्यवहार करते हैं और पश्वाचारी इसे निषिद्ध मानते हैं। किन्तु, पशु पक्षी और मनुष्य तकके बलिदान द्वारा देवीको रक्त नैवेद्य अर्पणकर सन्तुष्ट करना दोनोंही अपना धर्म्म समझते हैं।

भिन्न भिन्न आचारोंके कारण यह दोनों प्रकारके शाक्त सात श्रेणियोंमें विभक्त हैं। श्रेणी भेदसे उनके नाम यह हैं—वेदाचारी, वैष्णवाचारी, शैवाचारी, दक्षिणाचारी, वामाचारी, सिद्धान्ताचारी और कौलाचारी। नित्य तन्त्रमें प्रत्येकके आचार विस्तार पूर्वक वर्णित हैं। वेदाचारी, वैष्णवाचारी, और शैवाचारी यह नाम भ्रमोत्पादक हैं। उपरोक्त ग्रन्थ देखनेसे ज्ञात होता है, कि वे किसी प्रकारका वैदिक अनुष्ठान नहीं करते, न वैदिक आचारही पालते हैं। अन्यान्य शाक्तोंकी भाँति उनके लिये भी आचार नियत हैं और वे उन्हीं तन्त्रोक्त आचारोंका पालन करते हैं।

तन्त्र ग्रन्थोंमें उपरोक्त सात प्रकारके शाक्तोंको क्रमशः एक दूसरेसे श्रेष्ठ बतलाया है। उनके कथनानुसार कौलाचारी सर्व श्रेष्ठ हैं। उनके लक्षण यह हैं :—

दिक्काल नियमोनास्ति तिथ्यादि नियमो न च।
नियमोनास्ति देवेशि, महामन्त्रस्य साधने॥
क्वचित् शिष्टः क्वचित् भ्रष्टः क्वचित् भूत पिशाचवत्।

नानावेश धराः कौला विचरन्ति महीतले ॥
कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं पुत्रे शत्रो तथा प्रिये।

*   *   *   *

श्मशाने भवने देवि तथैव काञ्चने तृणे।
न भेदो यस्य देवेशि सकौलः परिकीर्तितः ॥

नित्यतन्त्र—तृतीय पटल।

अर्थात्—अन्यान्य शाक्तोंके लिये तो नियमादिका पालन करना आवश्यक है, किन्तु कौलोंके लिये कोई नियम नहीं। उनके लिये यह आवश्यक नहीं, कि वे महामंत्रके साधनार्थ दिशा, काल, तिथि और नक्षत्रादिके नियमोंका पालन करें। कहीं शिष्ट, कहीं भ्रष्ट, कहीं भूत-पिशाचवत्—इस प्रकार नाना रूपधारी कौल संसारमें विचरण करते हैं। शंकर पार्वतीसे कहते हैं, कि हे प्रिये! जिसे कीचड़ और चन्दन, पुत्र और शत्रु, श्मशान और गृह तथा काञ्चन और तृणमें कोई भेद नहीं दिखाई देता, उसे कौल कहते हैं।

इस प्रकार तंत्र ग्रन्थोंमें यद्यपि सात प्रकारके शाक्तोंका निरूपण किया गया है, किन्तु संसारकी दृष्टिमें वे दो ही प्रकारके दिखाई देते हैं—दक्षिणाचारी और वामाचारी। इनके लक्षण उपरोक्त पश्वाचारी और वीराचारी शाक्तोंके समान ही हैं। दक्षिणाचारी मद्य-मांसका सेवन नहीं करते। उपासना विधि भी सार्वजनिक-वैदिक किंवा पौराणिक पद्धतिके समान ही है।

वेदाचारक्रमेणैव पूजयेत् परमेश्वरीम ।
स्वीकृत्य विजयांरात्रौ जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥

नित्यातन्त्र—प्रथम पटल ।

अर्थात्, दक्षिणाचारी, वेदाचार ※ के नियमानुसार भगवती-की पूजा करें और रात्रिको विजया ग्रहण कर स्थिर चित्तसे मंत्रका जप करें ।

इस प्रकार दक्षिणाचारियोंकी उपासना वाम विधियोंसे भिन्न एवम् पवित्र है किन्तु भगवतीको सन्तुष्ट करनेके लिये पशु बलिको वे भी अनुचित नहीं मानते । यही एक बात ऐसी है, जो उनकी उपासनाको भ्रष्ट बनाती है । + काशीराज प्रणीत दक्षिणा-चार तंत्रराजमें उनके कर्त्तव्याकर्त्तव्योंका विस्तृत विवरण अङ्कित है । उसका कथन है, कि :—

दक्षिणाचार तन्त्रोक्तं, कर्म्मतच्छुद्ध वैदिकम् ।

दक्षिणाचार तन्त्रराज ।

अर्थात् दक्षिणाचार तंत्रराजमें जिन कर्मोंका वर्णन है, वे विशुद्ध वैदिक हैं ।

———

※ यहां वेदाचारका मतलब तन्त्रोक्त वेदाचारसे है, किन्तु तन्त्रोक्त वेदाचारमें भी कोई ऐसी विधि नहीं है, जिससे हम उसे दूषित कह सकें ।

+ बलि किंवा नैवेद्यके दो प्रकार हैं । राजसिक किंवा रक्त नैवेद्य और सात्विक किंवा दूध शर्करा और अन्नप्रभृति पदार्थोंका नैवेद्य । दक्षिणा-चारियोंके लिये सात्विक नैवेद्य ही प्रदान करनेकी आज्ञा दी गई है—देखो दक्षिणाचार तन्त्र ।

वामाचारी।

यह शाक्तोंका सबसे अधिक उग्र और भयङ्कर समुदाय है। मत्स्य, मांस और मदिरा प्रभृतिका पान और सेवन इनका प्रधान कर्म्म है।

पंचतत्वं ख पुष्पंच पूजयेत कुल योषितम्।
वामाचारो भवेत्तत्र वामा भूत्वा यजेत् पराम्॥

आचार भेद तन्त्र।

अर्थात्, वामाचारी शक्तिस्वरूपा कुल स्त्रीकी पूजा करें और उसमें पञ्च तत्व तथा ख पुष्प* का व्यवहार करें।

वामाचारियोंकी कोई धार्मिक क्रिया पञ्च तत्व किंवा पञ्च मकारके विना सम्पन्न नहीं होती। वे पञ्च तत्व यह हैं:—

मद्यं मांसंच मत्स्यंच, मुद्रा मैथुन मेवच।
मकार पंचकचैव, महापातक नाशनम्॥

श्यामा रहस्य।

अर्थात्, मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा + और मैथुन इन पञ्चमकारोंसे महापातक दूर होते हैं।

---

* वामाचारियोंका यह एक सांकेतिक शब्द है। रजस्वलाके रजको ख किंवा स्वयम्भू पुष्प, सधवाके रजको कुण्ड पुष्प, विधवाके रजको गोलक पुष्प और चांडालिनीके रजको पुष्प कहते हैं।

+ मद्यके साथ जो उपकरण सामग्री भक्षण की जाती है, उसे मुद्रा कहते हैं।

वामाचारी अनेक प्रकारसे आराधना और साधना करते हैं किन्तु उनकी कोई साधना इन पञ्चमकारोंके बिना पूर्ण नहीं होती। तंत्र ग्रन्थोंने भिन्न भिन्न साधनाओं द्वारा भिन्न भिन्न सिद्धियोंकी प्राप्ति बतलाई है। षट्चक्र प्रभृतिकी साधनायें योगसे सम्बन्ध रखती हैं, किन्तु भैरवी चक्र प्रभृति कुछ ऐसे भी विधान हैं, जिनसे योगसे कोई सम्बन्ध नहीं। तन्त्र ग्रन्थोंमें भैरवी चक्रके विषयमें लिखा है, कि साधकोंको अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ ललाटमें चन्दन लगाकर भैरव भैरवीके भावमें एकत्र हो चक्राकार किंवा एक पंक्तिमें बैठना चाहिये और बीचमें तंत्रोक्त नव-कन्याओंमेंसे किसी एकको बैठाल, उसे साक्षात् देवी समझ कर मद्य मांसादिसे उसकी अर्चना करनी चाहिये। उन नव कन्याओंका वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

नटी कापालिको वेश्या, रजकी नापिताङ्गना।
ब्राह्मणी शूद्र कन्या च तथा गोपाल कन्यका॥
मालाकारस्य कन्या च नवकन्याः प्रकीर्त्तिताः॥
विशेष वैदग्ध युता, सर्वाएव कुलाङ्गना।
रूप यौवन सम्पन्ना, शील सौभाग्य शालिनी।
पूजनीया प्रयत्नेन, ततः सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम्॥

गुप्त साधन तन्त्र, प्रथम पटल।

अर्थात्—नटी, कापाली, वेश्या, धोबिन, नाइन, ब्राह्मणी,

शूद्र कन्या, गोप कन्या और मालाकारकी कन्या—यह नव कुल कन्या कही गयी हैं। इनके अतिरिक्त परपुरुष गामिनी वैदग्धयुक्त सभी स्त्रियाँ कुलाङ्गना हैं। इनमें जो रूपवती, युवती, सुशीला और भाग्यवती हो, उसकी पूजा करे तो अवश्य सिद्धि प्राप्त हो।*

पीत्वा मद्यं पठेत् स्तोत्रं, साधकः कुल भैरवः।
कुलस्त्री सङ्ग निरतः कुल कार्यं समाचरेत्॥

—कुलार्णव।

अर्थात्—कुल भैरव स्वरूप साधक मद्यपान कर स्तोत्रका पाठ करें और कुलांगनाके संसर्गमें प्रवृत्त हो कुलकार्यका अनुष्ठान करें।

---

* इन कुल कन्याओंके विषयमें मतभेद है। रेवती तन्त्रमें चाण्डालिन यवनी, रजकी प्रभृति ६४ प्रकारकी कुलांगनाओंका वर्णन है। निरुत्तर तन्त्रकारका कथन है, कि रजकी और गोपिका प्रभृति नाम किसी विशेष जातिकी स्त्रियोंके नहीं बल्कि उनके कार्य किंवा गुणोंके विज्ञापक हैं। वह लिखता है, कि :—

पूजाद्रव्यं समालोक्य, रजोवस्थां प्रकाशयेत्।
सर्व वर्णोद्भवा रम्या, रजकी सा प्रकीर्तिता॥
आत्मानं गोपयेद्या च सर्वदा पशुशंकटे।
सर्व वर्णोद्भवा रम्या, गोपिनी सा प्रकीर्तिता॥

अर्थात्—चाहे जिस जातिकी स्त्री हो, किंतु पूजा-द्रव्य देखकर जो रजो अवस्था प्रकाशित करे उसे रजकी कहते हैं। इसी प्रकार चाहे जिस जातिकी स्त्री हो, किंतु जो परवाचारीको देखकर अपनेको गोपन करे (छिपावे) उसे गोपिका कहते हैं।

वामाचारियोंकी इस विधिको श्रीचक्र किंवा पूर्णाभिषेक भी कहते हैं।

तन्त्रोंके आदेशानुसार मैथुन किंवा आनन्दोल्लासके बाद इस उत्सवका अन्त होता है। तन्त्र ग्रन्थोंमें आनन्द उल्लास तथा लता साधनादि अन्यान्य विधियोंका भी वर्णन है, किन्तु अश्लील होनेके कारण उन बातोंको यहाँ अङ्कित करना किसी प्रकार उचित नहीं। जिन्हें जाननेकी इच्छा हो वे कुलार्णव, गुप्त-साधन तन्त्र, निरुत्तर तन्त्र, श्यामा रहस्य, प्राण तोषिनी प्रभृति ग्रन्थोंको पढ़ कर जान सकते हैं।

तन्त्र ग्रन्थोंमें इन विचित्र अनुष्ठानोंको कहीं एकान्तमें रात्रिके समय छिप कर करनेकी आज्ञा दी है और कहा है कि :—

न निन्देन्नहसेद्वापि, चक्रमध्ये मदाकुलान्।
एतचक्रगतां वार्त्तां, वहिर्नैव प्रकाशयेत्॥
तेभ्योभोजनं कुर्वीत नाहितंच समाचरेत्।
भक्त्या संरक्षयेदेतान् गोपयेच्च प्रयत्नतः॥

प्राण तोषिनी।

अर्थात्—चक्रमें कोई मद्यपानके कारण व्याकुल हो उठे तो उसकी निन्दा न करे, न उसे देख कर हँसे। चक्रकी बातें बाहर प्रकाशित करना भी उचित नहीं। उसके साथ भोजन करे, उसका अहित न होने दे, उसकी रक्षा करे और यत्न पूर्वक भेदको छिपावे!

रात्रौ कुलक्रियांकुर्यात् दिवा कुर्याच्च वैदिकीम् ।
दिवारात्रौ यजेत् देवीं, योगी योग प्रभेदतः ॥

निरुत्तर तन्त्र, प्रथम पटल ।

अर्थात्—रात्रिके समय कुल क्रिया करे और दिनको वैदिक नियमानुसार (दक्षिणाचारियोंकी भांति) पूजन करे। इस तरह भिन्न भिन्न प्रकारों द्वारा योगीजन (शाक्त) रात्रि-दिन देवी पूजा कर सकते हैं।

तंत्र ग्रन्थोंमें इन्हीं सब बातोंका विस्तार पूर्वक वर्णन है। सभी क्रियायें अनेक स्त्री पुरुषोंको साथ मिलकर करनेकी आज्ञा दी गयी है अतः कोई अकेला नहीं करता। मद्य-मांस और मैथुनको प्राधान्य देनेके लिये उनके बड़े बड़े माहात्म्य लिखे गये हैं। सुरापान और पर-स्त्री गमनकी भाँति मारण और उच्चाटन प्रभृति कर्म्म भी शास्त्र-सम्मत माने गये हैं :—

शान्ति वश्य स्तम्भनानि, विद्वेषोच्चाटने तथा ।
मारणं परमेशानि, षट् कर्मेदं प्रकीर्त्तितम् ॥

योगिनी तन्त्र पूर्व खण्ड ।

शंकर कहते हैं कि हे देवि ! शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेष, उच्चाटन और मारण यह छः कर्म्म प्रसिद्ध हैं।

शाक्त सम्प्रदायी व्यक्त और अव्यक्त दोनों प्रकारसे रह सकते हैं। जो अव्यक्त अर्थात् छिपकर रहते हैं उनके विषयमें कहा गया है कि :—

अन्तः कौला बहिःशैवा सभामध्ये च वैष्णवाः।
नाना रूप धरा शाक्ता विचरन्ति कलौयुगे ॥

अर्थात्—अन्दरसे कौल, बाहरसे शैव और सभामें वैष्णव—इस प्रकार नाना रूप धारण कर शाक्त विचरण किया करते हैं।

व्यक्त रहनेवाले शाक्तोंके विषयमें काशीनाथ तर्क पञ्चाननने लिखा है, कि कटि भागमें रक्त वस्त्र, ललाटमें सिन्दूर, अङ्गमें रक्त चन्दन और कण्ठमें रक्तवर्णकी माला—यह उनके चिह्न है।

प्राय: समस्त भारतमें किसी न किसी रूपमें देवी पूजाका प्रचार है, अतः शैव सम्प्रदायकी भांति हम इसे देशव्यापी सम्प्रदाय कह सकते हैं। किन्तु तन्त्रोंके आदेशानुसार आचरण करनेवाले शाक्त इस समय भारतमें बहुत कम हैं। आसाम और बङ्ग देशमें उनका प्राधान्य बतलाया जाता है। विहार और नैपालमें भी पाये जाते हैं। कहीं कहीं मद्रास, सिन्ध, कच्छ, काठियावाड़ और राजस्थानमें भी दिखाई देते हैं। कहते हैं, कि महीधर बाममार्गी किंवा कौल ही थे, जिन्होंने वेद भाष्य के बहाने वेद मन्त्रोंका अमङ्गल अर्थकर भ्रष्टाचारका प्रचार किया था।*

शाक्तोंका प्रधान तीर्थ स्थान आसाममें कामाक्षा देवीका मन्दिर हैं। मद्रास प्रान्तमें भी मीनाक्षी नामक एक देवीका

* देखो। हिन्दू जाति वर्ण व्यवस्था कल्पद्रुम।

मन्दिर है। वहाँ भी इन लोगोंका प्रावल्य था, किन्तु शृंगेरी मठके शङ्कराचार्यों ने उन्हें निर्वापित कर दिया। ज्वालामुखी, विन्ध्य-वासिनी, बाला, बगुलामुखी, काली प्रभृति देवियाँ और भैरव, उन्मत्त भैरव, काल भैरव, प्रभृति इनके उपास्य देव हैं।

वामाचारियोंका एक समुदाय चोली पंथी कहलाता है। उस मतके सभी स्त्री पुरुष निश्चित समयपर निर्दिष्ट स्थानमें उत्सव मनानेके लिये एकत्र होते हैं। उनके गुरुको चक्रेश्वर कहते हैं। सर्व प्रथम वे खूब मद्यपान करते हैं। फिर प्रत्येक स्त्री अपनी अपनी कंचुकी एक घड़ेमें डालती है। बादको चक्रेश्वरकी आज्ञा मिलते ही प्रत्येक मनुष्य उस घड़ेसे एक एक कंचुकी उठा लेता है। जिस स्त्रीकी कंचुकी जिस पुरुषको मिलती है, वह उसके साथ विहार करता है। उस समय बहिन, कन्या, माता अथवा पुत्रवधूका भी सङ्ग करना पाप नहीं।

इसी प्रकार शाक्तोंका एक अन्य दल करारी नामसे सम्बोधित किया जाता है। करारी लोग नर बलिदान करते थे। सम्प्रति उनका अस्तित्व है या नहीं—यह नहीं कहा जा सकता। इस समय इस देशमें कुछ ऐसे भिक्षुक पाये जाते हैं, जो लोगों को तङ्गकर पैसा वसूल करते हैं। कुछ लोगोंकी धारणा है, कि वही करारी हैं और इस समय अघोरी नामसे सम्बोधित किये जाते हैं। वे अपने अङ्गमें लौह शलाका भोंककर खून निकालते हैं। मूत्रसे भरी हुई खोपड़ी हाथमें रखते हैं और अनेक प्रकारके घृणित कार्यों द्वारा गृहस्थोंको तङ्ग करते हैं। वे अधि-

कांश नीच जातिके होते हैं और किसी जातिका भी मनुष्य उनके दलमें सम्मिलित हो सकता है। वे अपनेको सिद्ध बतलाते हैं और हड्डीकी माला धारण करते हैं।

कुछ शाक्त स्त्री-पुरुष भैरव और भैरवीके वेशमें रहते हैं। वे गैरिक वस्त्र, विभूति, रुद्राक्ष और त्रिशूल धारण करते हैं। कोई कोई भैरवी अपने साथ एक भैरव भी रखती है। कभी कभी काशी और कलकत्ता प्रभृति स्थानोंमें भी यह दिखाई देते हैं। कहते हैं, कि वे भी वामाचारियोंकी भाँति सभी क्रियायें करते हैं और यत्र-तत्र भ्रमण किया करते हैं।

इसी प्रकार आचार-भेदसे शीतला पन्थी, मार्गो, मातापंथी, कूँड़ा पंथी प्रभृति और भी भेद हैं। प्रायः ये सभी तंत्रोक्त कर्म किया करते हैं।

वैष्णव सम्प्रदाय ।

भारतमें विष्णु पूजाका प्रचार भी कुछ कम नहीं। शैव और शाक्त सम्प्रदायकी भांति यह सम्प्रदाय भी समूचे भारतमें फैला हुआ है। शिवोपासनाकी तरह इसका भी कब और किसने प्रचार किया यह नहीं बतलाया जा सकता। सम्भवतः पौराणिक धर्म्मके आरम्भ कालमें ही इसकी भी सृष्टि हुई थी। शङ्करदिग्विजयमें जिन वैष्णव सम्प्रदायोंका वर्णन है, सम्प्रति उनका कहीं प्रचार नहीं पाया जाता। इस समय विष्णुस्वामी रामानुज, माध्वाचार्य, निम्बार्क और चैतन्य—इन पाँच धर्माचार्यों द्वारा स्थापित पाँच प्रकारके वैष्णव सम्प्रदायोंका ही विशेष प्रचार है। इनके अतिरिक्त जो अन्यान्य सम्प्रदाय प्रचलित हैं, वे इनकी शाखा स्वरूप हैं।

उपरोक्त पांच सम्प्रदायोंमें विष्णु स्वामीका सम्प्रदाय सर्वापेक्षा अधिक प्राचीन माना जाता है। महात्मा विष्णुस्वामीका जन्म काल ठीक ठीक नहीं बतलाया जा सकता। सम्भवतः ईसाकी तीसरी शताब्दिमें उनका प्रादुर्भाव हुआ। कहते हैं, कि विष्णु स्वामीके पिता किसी द्रविड़ राजाके मन्त्री थे। वे चाहते थे, कि मेरा पुत्र भी मेरे ही समान व्यवहार-दक्ष और राजविद्या-विशारद हो, किन्तु विष्णुस्वामीने तुच्छ नरेशोंकी अपेक्षा उस सर्व शक्तिमान परमात्माकी सेवाको अधिक श्रेयस्कर मान, वेदशास्त्र और उपनिषदोंका अध्ययन किया।

शास्त्रोंके अध्ययनसे विष्णु स्वामीका चित्त शान्त और बुद्धि पवित्र हो गयी। उन्हें परमात्माके सत्य स्वरूपका ज्ञान हुआ। साथ ही उन्हें इच्छा हुई, कि कोई ऐसे सरल, पवित्र और काया-कष्ट-रहित धर्मकी सृष्टि की जाय जो सर्व मान्य बनाया जा सके। उन दिनों भारतमें शैव, शाक्त और बौद्ध प्रभृति जो धर्म प्रचलित थे, वे दो भागोंमें विभक्त किये जा सकते थे। एक ओर शाक्त जैसे सम्प्रदायोंमें अनाचार और अपवित्रता थी, तो दूसरी ओर शैव और बौद्ध प्रभृति धर्मों में कठिन नियम, योग-साधना और काया-कष्टका आधिक्य था। विष्णु स्वामीने इन दोनोंसे भिन्न एक ऐसे धर्मकी आवश्यकता अनुभव की, जिसमें न कायाकष्ट ही हो, न भ्रष्टाचार ही। उसकी प्रत्येक बात सरल, ग्राह्य और पवित्र हो।

उन्होंने इन बातोंका विचारकर लोक रुचिके अनुकूल वैष्णव सम्प्रदायकी स्थापना की। उन्होंने लोगोंको विष्णुकी उपासना का आदेश दिया। मूर्त्तिपूजा प्रचलित हो चुकी थी, अतः विष्णुके ही प्रतिमा-पूजनको शास्त्र-सम्मत बतलाया। उन्होंने बतलाया, कि विष्णुकी पूजा और उनकी भक्तिसे ही मुक्ति मिल सकती है।

हिन्दुओंके उपास्य देवोंमें विष्णु भक्त-वत्सल और दयालु माने गये हैं। वे किसी प्राणीका बलिदान ग्रहण नहीं करते। उनके सम्मुख रक्तपात करना महापाप है। उनका प्रत्येक कार्य संसारके कल्याणार्थ ही होता है। समय समयपर वे

अवतार ग्रहणकर भक्तजनोंका कष्ट दूर करते हैं। उनकी प्रकृति शान्त और हृदय उदार है। वही संसार भरका प्रतिपालन करते हैं। उन्हींकी इच्छासे उसका नाश होता है। वही देवाधिदेव, अनादि, अनन्त, अविकारी सच्चिदानन्द परब्रह्म हैं। उनकी उपासना किसे रुचिकर न होगी ?

विष्णुस्वामीने काया कष्टको निरर्थक और विष्णुके नामस्मरणको ही मोक्षका साधन बतलाया। फलतः अनेक बौद्ध और शैवोंने उसका स्वीकार किया। उनके शिष्योंने भी अनेक मनुष्योंको अपने सम्प्रदायमें दीक्षितकर वैष्णव सम्प्रदायका प्रचार किया।

विष्णुस्वामीने व्यास सूत्रपर भाष्य और गीतापर व्याख्या लिखी थी। उत्तरावस्थामें शरीरान्तके पूर्व, उन्होंने संन्यास ग्रहण किया था। उनके बाद ज्ञानदेव, नामदेव, केशव, त्रिलोचन, हीरालाल और राम प्रभृतिने उनका स्थान ग्रहण किया। केशवने वंश परम्पराके लिये स्वामीकी उपाधि धारण की। तबसे वे उसी नामसे सम्बोधित किये जाने लगे। श्रीरामके छः पुत्र थे। उनमेंसे श्रीधरने "प्रेमामृत" नामक ग्रन्थकी रचना कर परमात्माको साकार सिद्ध किया।

विष्णु स्वामीका उपदेश ब्राह्मणों तक ही परिमित था। वे अन्य लोगोंको दीक्षा न देते थे। फलतः उनके सम्प्रदायका प्रचार अधिक न हो पाया। शङ्कराचार्यके समयमें उनकी गद्दीपर बिल्वमंगल नामक मनुष्य अधिष्ठित था। ई० स०

विशिष्टाद्वैत.



श्रीरामानुजाचार्य ।

पृष्ठ संख्या २०६

८०६ में शङ्कराचार्यके किसी शिष्यने उसे पराजितकर "परमात्मा साकार" मतका खण्डन किया। तबसे विष्णु स्वामीकी गद्दी उच्छिन्न हो गयी और उसका प्रचार रुक गया। किन्तु फिर कुछ शताब्दियोंके बाद वल्लभाचार्य्य तथा अन्यान्य वैष्णव, धर्म्माचार्यों द्वारा उस स्थानके अधिकारी नियत किये गये और उन्होंने नवीनताके साथ उसका प्रचार किया। उसका नाम शुद्धाद्वैत किंवा पुष्टिमार्ग पड़ा। आगे चलकर हम यथा स्थान उसका वर्णन करेंगे।

विशिष्टाद्वैत किंवा श्रीसम्प्रदाय।

नवीं शताब्दिके आरम्भमें विष्णु स्वामीकी गद्दी उच्छन्न हो जानेपर वैष्णव सम्प्रदाय जर्जर हो गया। इसके विपरीत शंकराचार्य्य और उनके शिष्योंके उद्योगसे शैव सम्प्रदाय और शिवोपासना प्रबल हो उठी। शायद यही देखकर रामानुजके हृदयमें वैष्णव सम्प्रदायके उद्धारकी इच्छा जागरित हुई और उन्होंने विशिष्टाद्वैत किंवा श्रीसम्प्रदायकी स्थापनाकर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की।

रामानुजका जन्म मद्रासके पास पेनमुतूर नामक ग्राममें हुआ था। उनके पिताका नाम केशवाचार्य्य और माताका नाम कान्तिमती था। आठ वर्षकी अवस्थामें उनका उपनयन

संस्कार हुआ। फिर वे अपने मामाके पास विद्याध्ययन करने गये। उनका नाम यादप्रकाश था। वे वेदज्ञ और विद्वान ब्राह्मण थे। रामानुजने उनके द्वारा वेद वेदाङ्ग और शंकरमत की शिक्षा प्राप्तकी। वहाँसे लौटकर कुछ कालतक वे एक वृक्षके नीचे रामचन्द्रकी उपासना करते रहे। इसके बाद धर्म-स्थापनाका उन्होंने विचार किया। उन्होंने देखा, कि लोग तृष्णा और सांसारिक सुखोंके जालमें उलझे हुए हैं। सबके हृदयमें वैराग्य नहीं उत्पन्न किया जा सकता, न सब त्यागी बन मुक्ति ही लाभ कर सकते हैं। धर्म्मके कठिन नियम सर्व-साधारणके लिये उपयुक्त नहीं। लोग धर्म्मके कठिन नियमोंका पालन नहीं करते। सांसारिक मनुष्योंके लिये ऐसे सहज नियम चाहियें, जिनका वे अपने प्रवृत्तिमय जीवनके साथ साथ पालन कर सकें।

इन बातोंका विचारकर रामानुजने वेद और उपनिषदोंके सहारे विशिष्टाद्वैत नामक सम्प्रदाय स्थापित किया। उन्होंने न्याय दर्शनके अनुसार जीव और ईश्वरमें भेद दिखाया और अद्वैतवादके खण्डनकी चेष्टा की। उन्होंने भक्तिको प्रधान माना और विष्णुके राम तथा कृष्ण-इन दो अवतारोंकी पूजाका उपदेश दिया। उन्होंने बतलाया कि ब्रह्म अद्वितीय है, परन्तु केवल नहीं। जीवात्मा और परमात्मामें भेद है। परमात्मा एक है, जिसका नाम व्यापक होनेके कारण विष्णु है। वही संसारको उत्पन्न करता, पालता, और संहार करता है।

इस प्रकार कहते हुए रामानुजने शैवोंके विरुद्ध आन्दोलन मचाया। सर्व प्रथम उन्होंने मल्लकेत नगरमें उपदेश दिया और कुछ शिष्य प्राप्त किये। कुछ ही दिनोंके बाद यह समाचार चौल नरेशने सुना। वह स्वयम् शैव था और अपने राज्यमें शैव मतका प्रचार करना चाहता था। उसने वैष्णवोंको कष्ट देना आरम्भ किया। उसके अत्याचारसे सन्त्रस्त हो रामानुज कर्नाटक चले गये। कर्नाटकमें वैतालदेव नामक जैन राजा राज्य करता था। रामानुजने उसकी कन्याको, व्याधि मुक्तकर, उसे अपना शिष्य बना लिया। इसके बाद वे सुचारु रूपसे धर्म्म प्रचार करने लगे।

रामानुज अपने एक शिष्यको साथ ले जगन्नाथ, काशी और जयपुर प्रभृति स्थानोंमें गये आर वहाँ वैष्णव धर्मका प्रचार-कर मठोंकी स्थापना की। जयपुर नरेश उनका उपदेश सुन अतीव प्रसन्न हुए। उन्होंने अनेक प्रकारसे उन्हें सहायता पहुंचायी और जैनोंको परास्त कराया। वहाँ एक मठ स्थापित-कर, बद्रीनारायण गये और वहाँसे विचरण करते हुए अपने जन्म स्थानको लौट गये।

पेनमुतूरमें पहुंचकर रामानुजने कई ग्रन्थोंकी रचना की। जब उनकी अवस्था पचास वर्षकी हुई तब उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। इसके बाद उन्होंने भगवत् भजन और न्याय तथा वेदान्तके ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेमें अपना जीवन व्यतीत किया। पेनमुतूरमें ही वे सद्गतिको प्राप्त हुए। उनके शिष्योंने वहाँके मठमें उनकी प्रतिमा स्थापित की है, जो अद्यापि विद्यमान है।

रामानुजके सिद्धान्त—ब्रह्म अद्वैत है, परन्तु केवल नहीं, विशिष्ट है। सभी कुछ ब्रह्ममय है, परन्तु उस ब्रह्ममयता के दो भेद हैं। जीव और जड़। यह दोनों परस्पर और ब्रह्मसे विलक्षण हैं। प्राणी मात्रमें हरि (ब्रह्म) अन्तर्यामी रूपसे विद्यमान हैं। परन्तु चित्त (जीव) और अचित (जड़) यह दोनों उससे भिन्न हैं। अर्थात् ब्रह्मके तीन अंग हैं। हरि, चित्त और अचित। इन्हीं तीनोंके रूपमें विश्वमात्र ब्रह्ममय है। तीनों स्वयं अद्वैत हैं, परन्तु एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं।

अद्वैत मतमें ब्रह्मको ज्ञान रूपी और जगतको मायामय किंवा अज्ञान रूपी गिना है। ज्ञानमयतामें अज्ञानका होना असम्भव मान रामानुजने अद्वैतको विशिष्ट रूपमें स्वीकार किया है। परमेश्वर पुरुष है और वह सगुण है। वही जगतका नियन्ता और मुक्तिदाता है। मनुष्यका जीव भी सगुण हैं और मुक्त होनेपर ईश्वरकी समानताको प्राप्त होता है। उसमें केवल इतनी ही न्यूनता है, कि वह जगतको उत्पन्न नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त जीव और ब्रह्ममें और कोई अन्तर नहीं। मुक्त होनेपर जीव भी सगुण और ब्रह्म भी सगुण। दोनों समान हैं। सगुण जीव और सगुण ब्रह्म—इनमें ऐक्य नहीं होता, परन्तु जीवका यह समझना, कि मैं ब्रह्मसे भिन्न हूं—अज्ञान है। इसे ही अविद्या कहते हैं।

रामानुजने सानिध्य और सालोक्य प्रभृतिसे मोक्ष माना है। उन्होंने बतलाया है, कि जीव मुक्त होकर हरिके स्वर्गमें निरन्तर

वास करता है। अवतारोंको उन्होंने ब्रह्म रूप गिना है। खास-कर रामकी आराधनाका उपदेश दिया है और कृष्णको भी पूज्य माना है। उन्होंने बतलाया है, कि परम करुणाकर भक्तवत्सल परब्रह्म भक्तोंके उद्धारार्थ अवतार लेता है, अतः उसकी उपासना कर उसे प्रसन्न करना चाहिये।

उपासना पाँच प्रकारकी है। (१) अभिगमन—देवस्थान में मार्जनादिक करना (२) उपादान—गन्ध पुष्पादि पूजन सामग्रीका आयोजन करना (३) इज्या—पूजन करना (४) स्वाध्याय—मन्त्र-जप और वैष्णव सूक्तादिका पाठ करना (५) योग—अन्तर्यामीका ध्यान करना। यह पाँच प्रकारकी भक्ति है। योग युक्त होते ही भगवान अपने भक्तको मुक्तकर स्वधाममें स्थान देते हैं।

यह सम्प्रदाय भक्ति प्रधान है। परमात्माको नारायण और लक्ष्मीपति कहते हैं। राम और कृष्णको उसी नारायणके अव-तार मान उनकी मूर्त्तियाँ मन्दिरोंमें स्थापित करते हैं और नाना प्रकारके वस्त्रालंकारोंसे उन्हें भूषित करते हैं। उनकी पूजा विधि भी मनोरञ्जक और सहज है। गन्ध, पुष्पादि विविध प्रकारके नैवेद्यों द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा की जाती है। इन सब बातोंको देख, अनेक स्त्री पुरुषोंके चित्त उस ओर आक-र्षित हुए और उन्होंने उसका स्वीकार किया।

रामानुजकी शिष्य—परम्परामें रामानन्द नामक एक आचार्य हुए। उन्होंने अपना एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय स्थापित किया।

उसे आनन्द किंवा रामानन्दी सम्प्रदाय कहते हैं। उस मतके हजारों वैरागी भारतमें विद्यमान हैं। वैरागियोंमें भी संयोगी और निहंगी प्रभृति भेद हैं। महात्मा कबीर दास रामानन्दके ही शिष्य थे। उन्होंने अपना कबीर मत प्रचलित किया था। उसके भी अनेक भेद हैं किन्तु इन सबका मूल रामानुजका विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय हैं, ऐसा कहनेमें कोई आपत्ति नहीं। गलताकी गद्दी पर एक रामचरण नामक साधु हुआ। उसने भी अपने नामका एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय स्थापित किया। उस सम्प्रदायसे भी निरञ्जन और रामस्नेही नामक दो उपसम्प्रदाय उत्पन्न हुए। इस प्रकार रामानुज सम्प्रदायका बड़ा प्रचार हुआ।

रामानुजने व्यास सूत्रपर भाष्य लिखा, जो उन्हींके नामसे विख्यात है। उसके अतिरिक्त उन्होंने गीता भाष्य, न्यायामृत, वेदान्त प्रदीप, तर्क भाष्य, वेदार्थ संग्रह, वेदान्त तत्वसार, श्रौत-भाष्य, शतदूषणी, नारदीय पञ्चरात्र, त्रिंशत ध्यान, चंड मारुती, विष्णु पूजा, विष्णु प्रबोधन, रङ्गनाथ स्तोत्र, त्रिगद्य सिद्धान्त, विष्णु सहस्रनाम, विशिष्टाद्वैत प्रभृति अनेक छोटे बड़े ग्रन्थोंकी रचनाकर अपने सम्प्रदायके साहित्यमें वृद्धि की थी।

विष्णु प्रबोधनमें विष्णुकी स्तुति किंवा प्रातःस्मरणीय स्तोत्र हैं। रंगनाथ स्तोत्रमें श्रीरंगपट्टणकी विष्णु मूर्त्तिका स्तवन है। त्रिगद्यमें तीन गद्योंका संग्रह है। प्रथम विष्णुलोक गद्यमें, वैकुण्ठ लोककी रचना, पदार्थ और ऐश्वर्य्यका वर्णन है। द्वितीय

श्रीरंगगद्यमें विष्णुकी स्तुति है। तृतीय शरणगद्यमें विष्णुकी प्रार्थना और उनकी शरण जानेके प्रकार वर्णित है। सिद्धान्त नामक ग्रंथमें उनके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन है।

इन ग्रंथोंके अतिरिक्त रामानुजके अनुयायी विष्णु, नारदीय, गरुड़, पद्म, वराह और भागवत इन छः पुराणोंको भी प्रामाणिक मानते हैं। शेष बारह पुराणोंको पद्म पुराणके कथनानुसार वे राजसिक और तामसिक कहकर उन्हें अग्राह्य बतलाते हैं।

दक्षिण भारतमें इस सम्प्रदायका विशेष प्रचार है। वहाँ रामानुजके विषयमें अनेक प्रकारकी आख्यायिकायें भी प्रचलित हैं। कहते हैं, कि रामानुजने सात सौ मठ स्थापित किये थे। किन्तु सम्प्रति उन सबोंका पता नहीं। बकानन साहबके कथनानुसार अब भी इस सम्प्रदायके ८९ मठ किंवा गद्दियाँ हैं। जिनमें ८४ रामानुजके वंशजोंके और ५ संन्यासियोंके अधीन हैं। उन ८४ मठोंमें मालकोटका मठ प्रधान माना जाता है। वहाँ वैताल देवने एक मन्दिर बनवा दिया था और उसमें रामानुजने १२ वर्ष निवास किया था। वह स्थान वर्त्तमान मैसूर राज्यमें श्रीरंग-पटनके पास ही बतलाया जाता है।

ताटोद्री, रामेश्वर, श्रीरंग, कांची और अहवल्ली—यह पाँच मठ संन्यासियोंके अधीन हैं। रामानुजके वंशज किंवा परम्परागत आचार्य और संन्यासियोंमें झगड़ा हुआ करता है। आचार्य गण अपनेको श्रेष्ठ सि[illegible] करना चाहते हैं, किन्तु जनता संन्यासियोंको ही श्रेष्ठ मानती है।

इस सम्प्रदायमें ब्राह्मणके अतिरिक्त अन्य लोगोंको आचार्य होनेका अधिकार नहीं है। किन्तु जारज सन्तानोंके अतिरिक्त सबको दीक्षा लेनेका अधिकार दिया गया है। आचार्यगण दीक्षा देते समय शिष्योंको "ॐ रामाय नमः" इस मन्त्रका उपदेश देते हैं।

इस सम्प्रदायमें भी गृहस्थ और संन्यासी दोनों होते हैं। एक दूसरेको मिलनेपर वे परस्पर "दासोऽस्मि" किंवा "दासोऽस्म्यहम्" कहकर नमस्कार करते हैं। तिलक छाप और माला इनके प्रधान चिन्ह हैं।

ये कण्ठ लग्न तुलसी भव काष्ठ माला।
ये द्वादशाङ्ग हरिनाम कृतोर्ध्व पुण्ड्राः॥
ये कृष्ण भक्ति सुदृढ़ा धृत शङ्ख चक्रा—
स्ते वैष्णवा भुवन माशु पवित्रयन्ति॥

पाद्मोत्तर खण्ड।

ये ललाटमें नासामूलसे लेकर केश पर्य्यंत गोपीचन्दनका खड़ा तिलक और उसके बीचमें एक पीली किंवा लाल रेखा अंकित करते हैं। ललाट, कण्ठ, दोनों बाहु, हृदय, नाभि, दोनों पार्श्व, दोनों कर्णमूल, शिरोमध्य और पीठ इन द्वादश अंगोंमें रामनाम किम्वा शङ्ख चक्रके चिह्न अंकित करते हैं। कण्ठमें तुलसीकी माला धारण करते हैं और कोई कोई तप्त मुद्राओंसे शरीर भी दागते हैं।

इस सम्प्रदाय वाले लक्ष्मी तथा विष्णु और उनके अवतारों की पृथक पृथक किंवा युगल रूपमें उपासना करते हैं। रामचन्द्र पर विशेष भाव रखते हैं, किन्तु भिन्न भिन्न उपास्य देवोंके कारण वे कई भागोंमें विभक्त हो गये हैं। कोई लक्ष्मी, कोई नारायण, कोई लक्ष्मी नारायण, कोई राम, कोई सीता, कोई सीताराम, कोई राधा, कोई कृष्ण और कोई राधाकृष्णकी उपासना करते हैं। शैव मतावलम्बियोंसे वे बड़ा द्वेष रखते हैं और राधाकृष्णके उपासकोंसे भी विशेष प्रीति नहीं रखते। उत्तर भारतमें इस सम्प्रदायका अधिक प्रचार नहीं है।

रामानन्दी सम्प्रदाय।

उत्तर भारतमें रामानुजकी अपेक्षा रामानन्दी वैष्णव अधिक प्रसिद्ध हैं। वे लोग रामचन्द्र, सीता, लक्ष्मण और हनुमानकी उपासना करते हैं। कुछ लोग रामानन्दको रामानुजका शिष्य बतलाते हैं, किन्तु यह बात किसी प्रकार प्रमाणित नहीं होती। रामानुजकी शिष्य परम्पराके विषयमें जो वृत्तान्त प्रचलित है, तदनुसार उनकी परम्परागत शिष्य प्रणालीमें रामानन्द चतुर्थ सिद्ध होते हैं। यथा—रामानुजके शिष्य देवानन्द, देवानन्दके हरिनन्द, हरिनन्दके राघवानन्द और राघवानन्दके रामानन्द।*

* भक्तमालमें रामानुजकी शिष्य परम्पराका जो वृत्तांत अंकित है, वह दूसरे ही प्रकारका है। उसके कथनानुसार प्रथम रामानुज, द्वितीय देवाचार्य, तृतीय राघवानन्द और चतुर्थ रामानन्द हुए।

ग्यारहवीं शताब्दिके मध्य भागमें रामानुज विद्यमान थे। अतः रामानन्दका समय बारहवीं शताब्दिका मध्य भाग होना चाहिये। किन्तु रामानन्दके शिष्य कबीर दास चौदहवीं शताब्दिमें विद्यमान थे। यदि रामानन्दका समय हम उससे कुछ पहलेका मान लें तब भी रामानुज और इसके बीचमें इतने समयका अन्तर पड़ता है, कि उन्हें उपरोक्त शिष्य परम्पराके अनुसार चतुर्थ मान लेना युक्ति सङ्गत नहीं प्रतीत होता। वास्तवमें रामानन्द रामानुजकी शिष्य परम्पराके अन्तर्गत हैं या नहीं, इसमें सन्देह है।

रामानन्दने अपने नामसे भिन्न सम्प्रदायका प्रचार क्यों किया, इस विषयमें एक कथा प्रचलित है। कहते हैं, कि रामानन्द एक बार देशाटन करने निकले। दीर्घकाल पर्य्यन्त वे भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें भ्रमण करते रहे। जब वे लौट कर अपने मठमें पहुंचे, तब उनके गुरुबन्धुओंने कहा, कि रामानुज सम्प्रदायियोंका यह प्रधान कर्म है, कि वे अपने भोजनपर किसीकी दृष्टि न पड़ने दें। यदि ऐसा हो जाय तो उन भोज्य पदार्थोंको अपवित्र और अग्राह्य मानकर फेंक देना चाहिये। आपने देशाटनके समय इस नियमका प्रतिपालन किया हो, यह असम्भव है। हमलोगोंकी दृष्टिमें आप पतित हो गये हैं।

गुरुबन्धुओंकी यह बात सुन रामानन्दको बड़ा दुःख हुआ, किन्तु उस समय उन्हें और भी दुःख हुआ, जब उनके गुरु राघवानन्दने भी शिष्योंकी बातका समर्थन किया और उनसे सहमत

हो, उन्हें पृथक भोजन करनेकी आज्ञा प्रदान की। रामानन्दको अपना यह अपमान देखकर क्रोध आ गया। उन्होंने उन सबका साथ छोड़, अपने नामसे एक भिन्न सम्प्रदायकी स्थापना की और उसीका प्रचार करते हुए अपनी जीवन-यात्रा समाप्त की।

रामानन्द बनारसमें पञ्च गङ्गा घाटपर निवास करते थे। उनकी मृत्युके बाद उनके शिष्योंने वहाँ एक मठकी स्थापना की थी। किन्तु किसी मुसलमान शासकने उसे नष्ट कर दिया था। अब भी वहाँ एक पाषाण-वेदी बनी हुई है, जिस पर दो पद चिन्ह अङ्कित हैं; वे पद चिन्ह रामानन्दके बतलाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अभी वहाँ रामानन्दियोंके अनेकानेक मठ विद्यमान हैं। उन मठोंके अधिकारी अपनी पञ्चायतें संगठित करते हैं और सभी रामानन्दी वैष्णव उन पञ्चायतोंका आधिपत्य किंवा शासन स्वीकार करते हैं।

प्रायः समस्त सम्प्रदायोंके अनुयायी दो भागोंमें विभक्त पाये जाते हैं। एक श्रेणी गार्हस्थ्य धर्मका पालन करती हुई धर्माचरण करती है और दूसरी श्रेणी सांसारिक झमेलोंसे दूर रहनेकी चेष्टा करती है। यद्यपि वल्लभाचारी वैष्णव गृहस्थ गुरुओंका प्राधान्य स्वीकार करते हैं, और उस सम्प्रदायके गोस्वामीगण बहुधा विवाहित ही रहते हैं, किन्तु धार्मिक विषयमें त्यागी किंवा उदासीन ही सर्वत्र श्रेष्ठ माने जाते हैं।

त्यागियोंके भिक्षाटन और तीर्थाटन—यही दो प्रधान कर्म हैं। वे तीर्थाटन करते हुए उन अखाड़ोंमें ठहरते हैं और कुछ दिन वहाँ

निवास करते हैं। जब वृद्ध किंवा जराग्रस्त होते हैं, तब किसी एक अखाड़ेका आश्रय ग्रहणकर वहीं कालयापन करते हैं, अथवा स्वयं एक नये मठकी स्थापनाकर उसमें अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

शैव संन्यासियोंको भाँति त्यागी वैष्णवोंके भी अनेक दल किंवा अखाड़े हैं। उनमें सात प्रधान हैं—निर्वाणी, खाकी, सन्तोषी, निर्मोही, बलभद्री, टाटम्बरी और दिगम्बरी। इन अखाड़ोंकी उत्पत्तिके विषयमें जो विवरण प्राप्त हुआ है, उसे देखनेसे यही प्रतीत होता है, कि शैव और वैष्णवोंने वाद-विवादमें एक. दूसरेको पराजित करनेके लिये ही इन अखाड़ोंकी सृष्टि की थी। प्राचीन कालमें कुम्भ मेलाके समय प्रयाग, उज्जयिनी, गोदावरी और हरिद्वारमें, पहले किसे स्नान करना चाहिये, इस बातको लेकर भिन्न भिन्न मतावलम्बियोंमें बड़ा वाद-विवाद और झगड़ा हुआ करता था। वर्त्तमान राज्यशासनके प्रभावसे यह समस्या आप-ही-आप हल हो गयी है। अब पहले शैव संन्यासी, फिर वैरागी और बादको उदासीन और अन्यान्य सम्प्रदायी स्नान करते हैं। इन समस्त मेलोंमें प्रधान अखाड़ोंके अतिरिक्त छोटे छोटे अखाड़े भी अपनी अपनी जमात लेकर ध्वजा पताकादि चिन्हों सहित उपस्थित होते हैं। शैव संन्यासियोंकी जमातमें जिस प्रकार पुजारी, भण्डारी, हिसाबी, कोतवाल प्रभृति पदाधिकारी होते हैं, उसी प्रकार वैष्णवोंमें भी रहते हैं। जमातमें ध्वजाका बड़ा माहात्म्य माना जाता है। उपरोक्त मेलोंमें चाँदी और सोनेकी अनेकानेक

ध्वजायें आकाशमें लहराती हुई जमातोंकी महिमा प्रदर्शित करती हैं। केवल इतना ही नहीं, ध्वजाओंको विहित विधानसे स्नान कराकर उनकी अर्चना भी की जाती है।

मठ किंवा अखाड़ोंको हम वैष्णव धर्माचार्यों के निवास स्थान कह सकते हैं। यदि यहाँ हम उनके विषयमें कुछ लिखें तो अनुचित न होगा। मठोंमें प्रायः एक विग्रह मन्दिर किंवा मठ स्थापक अथवा किसी धर्माचार्य्यकी समाधि और महन्त तथा उनके शिष्योंके रहने योग्य स्थानकी व्यवस्था रहती है। इसके अतिरिक्त जो उदासीन और तीर्थयात्री मठ देखने आते हैं, उनके ठहरनेके लिये वहाँ एक धर्मशाला भी होती है। उसमें हरएक आदमी ठहर सकता है। मठाधीश महन्तके न्यूनाति न्यून तीन और अधिकसे अधिक चालीस सहवासी शिष्य होते हैं। उनके अतिरिक्त और भी अनेक शिष्य होते हैं, किन्तु वह सहवासी नहीं गिने जाते। वे सर्वदा यत्र-तत्र भ्रमण किया करते हैं।

महन्तके सहवासी शिष्योंमें कुछ प्रधान शिष्य होते हैं। उन शिष्योंके भी अनेक शिष्य होते हैं। महन्तके स्वर्गवास होनेपर, यदि वह गृहस्थाश्रमी हुआ और उसके पुत्र हुए, तो वे उस पदके अधिकारी होते हैं। अन्यथा अनेक मठोंके महन्त एकत्र हो एक सभा करते हैं और उन प्रधान शिष्योंमेंसे किसी एक सुविज्ञको उस पदपर अभिषिक्त करते हैं। यदि भविष्यमें वह अयोग्य प्रतीत हुआ तो वे एक पञ्चायत कर उसे पदच्युत करते हैं और उसके स्थानपर दूसरे प्रधान शिष्यको नियुक्त करते हैं।

किसी किसी प्रदेशमें अनेक मठ होते हैं, किन्तु उन सबोंमें एक ही श्रेष्ठ माना जाता है। प्रधान धर्माचार्य्योंका मठ सर्वोपरि माना जाता है और समस्त मठाधीश उसका प्राधान्य स्वीकार करते हैं। यदि उसका महन्त स्वर्गवासी हुआ और उसका कोई उत्तराधिकारी न हुआ, तो उन प्रधान मठोंमेंसे किसी एक मठका महन्त उसका अधिकारी बनाया जाता है। उसके अभिषेकमें १०—१२ दिनका समय लगता है और साधुओंको खिलाने पिलानेमें हजारों रुपये खर्च हो जाते हैं।

प्रत्येक मठके अधीन ३०—४० से लेकर ५०० बीघे तक जमीन होती है। उसकी उपजसे महन्तोंका निर्वाह होता है। कोई कोई महन्त व्यवसाय द्वारा भी धनार्ज्जन करते हैं।

रामानन्दी विष्णुके समस्त अवतारोंका देवत्व स्वीकार करते हैं किन्तु श्रीरामचन्द्रको अपना इष्ट देव मानते हैं। रामानुजी वैष्णवोंकी भाँति वे उनकी पृथक्‌ किंवा युगल मूर्त्तिकी आराधना करते हैं और शालिग्राम तथा तुलसीपर भी श्रद्धा रखते हैं।* विष्णुकी अन्यान्य मूर्त्तियोंको भी पूजते हैं और केवल नाम-स्मरण-से मोक्ष मानते हैं।

रामानन्द चाहते थे, कि यथा सम्भव धर्म नियम सरल रखे जायें। श्रीसम्प्रदायके कठोर नियम उन्हें पसन्द न थे। उन्होंने अपने शिष्योंको अवधूतोंकी भाँति स्वतन्त्र रहनेकी आज्ञा दे रक्खी

---

* काशीमें इस सम्प्रदायके अनेक मंदिर हैं। उनमेंसे दो में राधा-कृष्णकी मूर्तियाँ स्थापित हैं।

थी। यही कारण है, कि उनके धर्मानुष्ठान उतने कष्टकर नहीं। खानपानके विषयमें भी उन्हें किसी नियमका पालन नहीं करना पड़ता। वे अपनी इच्छा और लोक व्यवहारके अनुसार इस विषयमें आचरण कर सकते हैं।+

इस सम्प्रदायवालोंका राम नाम ही गुरुमन्त्र है। एक दूसरेको मिलनेपर "जय श्रीराम" "जयराम" "सीताराम" इत्यादि शब्दों द्वारा परस्पर अभिवादन करते हैं। रामानुजी और इनके तिलकमें कोई अन्तर नहीं है। केवल भिन्न भिन्न रुचिके कारण पुण्ड्रकी अन्तवर्त्ती रेखाके रूप और परिमाणमें कुछ अन्तर आ गया है। शायद इनका तिलक रामानुजियोंके तिलकसे कुछ छोटा होता है।

रामानन्दके अनेक शिष्य थे। जिनमें कबीर, रयदास, पीपा, सुरसुरानन्द, सुखानन्द, भावानन्द, धन्ना, सैन, महानन्द, परमानन्द और श्रियानन्द यह बारह प्रधान थे। इनमेंसे कबीर जुलाहे, रयदास चमार, पीपा राजपूत, धन्ना जाट और सेन नापित थे। इससे भी यह बात प्रमाणित होती है, कि रामानन्द उच्च नीचका भेद भाव न रख, सभी जाति और और वर्णोंके मनुष्योंको अपना शिष्य बनाते थे। भक्तमालके कथनानुसार रघुनाथ, अनन्तानन्द, कबीर, सुखासुर, जीव, पद्मावत, पीपा, भवानन्द, रयदास, धन्ना, सेन और सुरसुरानन्द यह उनके प्रधान शिष्य थे। उसमें इनके

+ खान पानके विषयमें इस सम्प्रदायके वैरागी पूरी स्वतंत्रतासे काम लेते हैं। जाति किंवा वर्णका विचार नहीं करते। इसीलिये कुछ लोग उन्हें वर्णातीतके नामसे सम्बोधित करते हैं।

अद्भुत और अलौकिक जीवन चरित्र भी अङ्कित हैं। इनमेंसे रयदासने रयदासी, सेनने सेना और कबीरने कबीर पन्थकी स्थापना की थी।

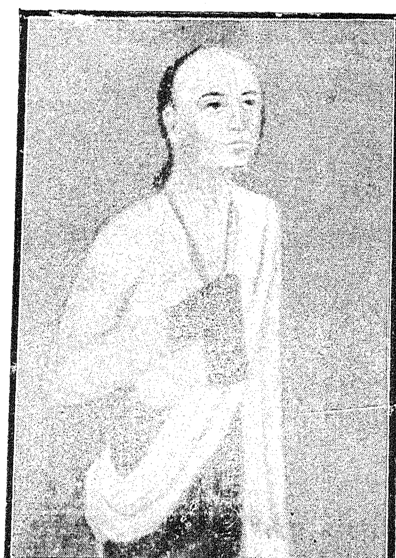
शंकराचार्य्य और रामानुजने धर्मग्रन्थोंकी रचना संस्कृत भाषा में की थी, अतः विद्वान ब्राह्मणोंके अतिरिक्त सर्व साधारण उनसे लाभ नहीं उठा सके। यद्यपि रामानन्दका लिखा हुआ कोई ग्रंथ दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु उनके अनुयायी और शिष्योंने हिन्दी भाषामें जो ग्रन्थ लिखे उनसे जनताने बड़ा लाभ उठाया। आज भी अनेकानेक मनुष्य उनके पठन-पाठन द्वारा कल्याण साधन करते हैं। सुप्रसिद्ध कवि सूर और तुलसी इसी सम्प्रदायके अनुयायी बतलाये जाते हैं।

इस सम्प्रदायका उत्तर भारतमें विशेष प्रचार है। प्रयागके पश्चिम गङ्गा और यमुनाके तटवर्ती प्रदेश प्रायः इसी सम्प्रदायके अनुयायियोंसे परिपूर्ण हैं। आगरा प्रदेशके उदासीनोंमें शायद प्रतिशत ७० वैरागी मिलेंगे। रामानन्दके गृहस्थ शिष्योंमें प्रायः निर्धन और साधारण कोटिके मनुष्योंका ही आधिक्य हैं।



भारतका धार्मिक इतिहास

मध्वाचारि.



श्रीमध्वाचार्य ।

पृष्ठ संख्या २२५

मध्वाचारी सम्प्रदाय.

यह सम्प्रदाय भी प्रधान वैष्णव सम्प्रदायोंमें गिना जाता है। इसका प्रकृत नाम है ब्रह्म सम्प्रदाय। किन्तु मध्वाचार्य्यने इसकी स्थापना की थी अतः यह मध्वाचारी सम्प्रदायके नामसे ही अधिक विख्यात है। कुछ लोग इसे पूर्णप्रज्ञ सम्प्रदाय भी कहते हैं। कहीं कहीं उत्तर भारतमें इस सम्प्रदायके संन्यासी दिखाई देते हैं, किन्तु वहां इसका प्रचार नहीं है। न कोई मठ ही प्रतिष्ठित हैं।

मध्वाचारियोंके धर्मग्रन्थोंमें मध्वाचार्य्यका अतिशयोक्ति पूर्ण जीवन वृत्तान्त अङ्कित है। उसका कुछ अंश प्रामाणिक माना जा सकता है। उसे देखनेसे ज्ञात होता है, कि मध्वाचार्य्य तूलव निवासी मोधिजी भट्टके पुत्र थे। उनका जन्म ई० स० १२३६ में हुआ था। उन्होंने अनन्तेश्वर मठमें वेदादि शास्त्रोंका अध्ययन किया था और सनक कुलोद्भव अच्युतप्रच नामक धर्म्माचार्य्यके निकट शंकर मतानुसार संन्यासकी दीक्षा ग्रहण की थी। उस समय उन्होंने अपना नाम आनन्दतीर्थ रक्खा था।

मध्वाचार्य्य बड़े धर्मनिष्ठ और विद्वान पुरुष थे। उन्होंने गीतापर एक भाष्य लिखा और रामानुज तथा शंकर प्रभृति धर्मा-चार्य्योंके सिद्धान्तोंका मनन किया। विचार करनेपर, न उन्हें रामानुजाचार्य्यका त्रिधातत्व युक्त श्रीसम्प्रदाय ही पसन्द आया, न शंकराचार्यका अद्वैत ही। उन्होंने संन्यास धर्मका परित्यागकर, लोक रुचिके अनुकूल द्विधा तत्व युक्त, द्वैतमतका प्रतिपादन किया।

उन्होंने अन्यान्य वैष्णव धर्माचार्य्योंकी भाँति विष्णुको जगत निराला परमेश्वर बतलाया और कतिपय उपनिषद् तथा अन्यान्य ग्रन्थोंके वचनों द्वारा अपने कथनको परिपुष्ट किया। उन्होंने बतलाया कि :—

एको नारायण आसीत्, न ब्रह्मा न च शङ्करः
आनन्द एक एवाग्र, आसोन्नारायणः प्रभुः ॥

अर्थात् आरम्भमें एक मात्र अद्वितीय स्वरूप भगवान नारायण विद्यमान थे। न ब्रह्मा थे, न शंकर। वे सर्वगुण सम्पन्न, स्वतन्त्र और आनन्द स्वरूप हैं। उन्हींके शरीरसे ब्रह्मादि देव और यह सृष्टि उत्पन्न हुई है।※

उनके मतानुसार विष्णु जिस प्रकार सृष्टिकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार जीवको उसके कर्म्मानुसार दण्ड भी देते हैं। सब पदार्थोंका मूल कारण परमात्मा है। परमात्मा और जीवात्मा दोनों अनादि हैं, किन्तु एक नहीं। उन दोनोंमें भिन्नता है।

यथा पक्षी च सूत्रञ्च नाना वृक्ष रसा यथा।
यथा नद्यः समुद्राश्च शुद्धोदलवणे यथा ॥
यथा चौर्योपहार्यो च यथा पुं विषयादपि।
तथा जीवेश्वरो भिन्नो, सर्वदैव विलक्षणौ ॥

※ विष्णोर्देहात् जगत सर्वमाविरासीत।

—तत्वविवेक

अर्थात् पक्षी और सूत्र, वृक्ष और रस, नदी और समुद्र, शुद्ध जल और लवण, चोर और हृद्द्रव्य एवम् पुरुष और इन्द्रियोंके विषयमें जैसी विभिन्नता है, उसी प्रकार जीव और ईश्वर एक दूसरेसे भिन्न और विलक्षण हैं।

उन्होंने बतलाया, कि परमात्मा स्वतन्त्र और जीवात्मा परतन्त्र है।* जीव विष्णुका दास है। विष्णु निर्दोष और सद्गुण स्वरूप हैं। जीव उनकी समताको कदापि नहीं पा सकता। इसलिये विष्णु सर्वथा पूजनीय हैं।

मध्वाचार्य जीवात्माका परमात्मामें लय हो जाना (निर्वाण मुक्ति) स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं, कि कैवल्यके समय जीवात्माका चैतन्य परमात्माके महा चैतन्यके सम्मुख उसी प्रकार नहीं दिखाई देता, जैसे सूर्य प्रकाशमें तारे। फलतः जीवात्मा परमात्मा एक दूसरेसे भिन्न होनेपर भी उस समय अभिन्न प्रतीत होते हैं।

मध्वाचार्यकी मोक्ष व्यवस्था भी भिन्न है। शैवोंका योग और वैष्णवोंका सायुज्य वे स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि नारायण वैकुण्ठ धाममें लक्ष्मी, भूमि और नीलादेवी* नामक तीन पत्नियों सहित अनिर्वचनीय सुख भोग किया करते हैं। यों तो

---

* स्वतन्त्रमस्वतन्त्रञ्च, द्विविधं तत्व मिष्यते।
स्वतंत्रो भगवान् विष्णुर्निर्दोषोऽशेष सद्गुणः॥

—तत्वविवेक।

* दुर्गा अथवा माया।

वे गुणातीत हैं, किन्तु जब मायाका संयोग होता है, तब सत्व, रज और तम—यह तीन गुण ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूपमें आविर्भूत हो संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कार्य्य में प्रवृत्त होते हैं। शिव ब्रह्मादि देवता क्षर किंवा अनित्य हैं। लक्ष्मी अक्षर किंवा नित्य हैं और नारायण उससे भी परे हैं।+

मध्वाचार्य ने बतलाया है, कि विष्णुके इस गुणोत्कर्षका ज्ञान होने पर ही उनके प्रसाद किंवा मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है। जीवात्मा और परमात्माको अभिन्न माननेसे नहीं।

"मोक्षन्तु विष्णु प्रसाद मन्तरेण न लभ्यते।
प्रसादश्च गुणोत्कर्ष ज्ञानदेवनाभदज्ञानात् ॥"

विष्णुके प्रति प्रेम उदय होनेपर पुनर्जन्म नहीं होता। मनुष्य वैकुण्ठमें निवास करता है और सारूप्य, सालोक्य, सान्निध्य तथा सार्ष्टि—यह चार प्रकारकी मुक्ति लाभकर अनिर्वचनीय सुख-भोग करता है।

यही मध्वाचार्य्यके सिद्धान्त और यही उनकी शिक्षा है। सर्व प्रथम उन्होंने तीन शालिग्राम मूर्त्तियाँ प्राप्तकर उनकी सुब्रह्मण्य, उड़ीपी और मध्यतल इन तीन स्थानोंके मठोंमें प्रतिष्ठा की। बादको एक कृष्ण मूर्त्ति भी उड़ीपीमें स्थापित की। उस कृष्ण मूर्त्तिके

+ ब्रह्मा शिवः सुराद्याश्च शरीर क्षरणात् क्षराः।
लक्ष्मीरक्षर देहत्वा दक्षरातः परो हरिः॥

—महोपनिषद्।

विषयमें एक आख्यायिका प्रचलित है। कहते हैं, कि द्वारिकासे मलावारकी ओर जल मार्गसे एक नौका जा रही थी। तूलबके पास पहुंच कर वह जलमग्न हो गयी। उस नौकामें एक कृष्ण-मूर्त्ति थी। मध्वाचार्यको अपने दिव्य ज्ञानसे इस घटनाका ज्ञान हुआ। उन्होंने यह समाचर अन्यान्य लोगोंसे कहा। लोगोंने समुद्रतलसे उस मूर्त्तिको निकाला और मध्वाचार्य्यने उड़ीपीमें उसकी स्थापना की। उसी दिनसे उड़ीपी मध्वाचारियोंका तीर्थ स्थान कहलाने लगा।

मध्वाचार्यने कुछ कालतक उड़ीपीमें निवासकर सूत्र भाष्य ऋग् भाष्य, दशोपनिषद् भाष्य, अनुवाकानुनय विवरण, अनुवेदान्त रस प्रकरण, भारततात्पर्य निर्णय, भागवत तात्पर्य, गीतातात्पर्य, कृष्णामृत महार्णव, तन्त्र शास्त्र प्रभृति ३७ ग्रंथोंकी रचना की। कुछ दिनोंके बाद उन्होंने दिग्विजयके लिये यात्रा की और जैन तथा अन्यान्य मतमतान्तरोंका खण्डन कर अपने मतका प्रचार किया।

मध्वाचार्यने उड़ीपीके अतिरिक्त भिन्न भिन्न स्थानोंमें और आठ मन्दिर निर्माण कराये और अपने भाई तथा आठ ब्राह्मण संन्यासियोंको उनका अध्यक्ष बनाया। उनमें राम, सीता, लक्ष्मण, कालीमर्दन, बाराह, नृसिंह प्रभृति देवताओंकी मूर्त्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। उड़ीपीका मन्दिर सब मन्दिरोंमें प्रधान माना जाता है और मध्वाचार्य्यके आदेशानुसार उपरोक्त आठ मन्दिरोंके अधिकारी क्रमशः दो दो वर्षके लिये उसकी अध्यक्षता ग्रहण करते हैं।

प्रत्येक अध्यक्षको अध्यक्षताकी अवधि पर्य्यान्त मन्दिरका व्यय अपने पाससे चलाना पड़ता है। कहते हैं, कि इस समय प्रत्येक अध्यक्षको उत्सवके समय १५-२० हजार रुपये व्यय करने पड़ते हैं। प्रत्येक अध्यक्ष यह चाहता है, कि मैं दूसरेसे अधिक व्यय करूं, जिससे मेरा नाम हो। इस व्यय निर्वाहके लिये वे धन संग्रह करने निकलते हैं और प्रत्येक मध्वाचारी गृहस्थसे कुछ न कुछ अवश्य प्राप्त करते हैं।

इन आठ मन्दिरोंके अतिरिक्त मध्वाचार्य्यने पद्मनाभ तीर्थ नामक संन्यासीको भी कुछ मठोंकी स्थापनाका आदेश दिया था। पद्मनाभने चार मठोंकी स्थापनाकर उनमें मध्वाचार्य्यकी दी हुई विष्णु और रामचन्द्रकी मूर्त्तियाँ स्थापित कीं। आज भी वे मठ विद्यमान हैं और पद्मनाभके परम्परागत शिष्य उनका अधिकार भोग करते हैं। वे जब तब उडीपीके मन्दिरमें भी जाते हैं किन्तु उन्हें उसकी अध्यक्षता ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है।

मध्वाचारी सम्प्रदायमें संन्यासी और ब्राह्मण भिन्न अन्य लोगोंको दीक्षा-गुरु होनेका अधिकार नहीं है। अस्पृश्य जातिके मनुष्योंको मन्त्रोपदेश नहीं दिया जाता। गुरुओंके कुछ पैतृक शिष्य होते हैं और उन्हें अपना गुरुत्व पद बेंचने या बन्धक रखनेका अधिकार होता है।

इस सम्प्रदायके त्यागी आचार्य्य दण्डी संन्यासियोंकी भाँति गैरिक वस्त्र परिधान करते हैं। दण्ड-कमण्डल रखते हैं, सिर मुड़ाते हैं और यज्ञोपवीत रहित रहते हैं। उनके लिये क्रमशः

आश्रम धर्म्मका पालन करना आवश्यक नहीं। इच्छानुसार वे बाल्यावस्थामें ही संन्यास ग्रहण कर सकते हैं।

मध्वाचारियोंकी उपासनाके तीन अङ्ग हैं। अङ्कन, नामकरण और भजन। अङ्कन अर्थात् अङ्गोंको विष्णुके शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मादि चिन्होंसे अङ्कित करना।* नामकरण अर्थात् अपनी सन्तानोंके विष्णु पर्य्यायवाची नाम रखना और भजन अर्थात कायिक, वाचिक और मानसिक-त्रिविध भजनोंका अनुष्ठान करना। दया, स्पृहा और श्रद्धा—यह तीन मानसिक भजन हैं। सत्यवचन, हितकथन, प्रिय भाषण और शास्त्रानुशीलन—यह चार वाचनिक भजन हैं तथा दान, परित्राण और परिरक्षण यह तीन कायिक भजन हैं।

"भजनं दशविधं वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायः कायेन दानं परित्राणं परिरक्षणं मनसा दया स्पृहा श्रद्धाचेति। अत्रैकैकं निष्पाद्य नारायणे समर्पणं भजनम् ॥"

—सर्व दर्शन—पूर्णप्रज्ञदर्शन

* इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये मध्वाचारी तप्त मुद्राओंसे अपना शरीर दाग देते हैं, वे कहते हैं, कि इससे मोक्ष प्राप्ति होती है और प्रमाणमें "अतप्तपतनुर्न तदा मोक्षश्रुतेः" इस श्रुति वाक्यको प्रकट करते हैं। किन्तु स्वामी शंकराचार्य्य कहते हैं, कि यहां तप्त शब्दका अर्थ है "तपस्यापूत" अर्थात जिस व्यक्तिने तपस्या द्वारा अपने शरीरको पवित्र नहीं किया, वह मोक्ष लाभ नहीं कर सकता।"

अन्यान्य वैष्णव सम्प्रदायोंकी भांति इस सम्प्रदायके अनुयायी भी मूर्त्ति पूजा और उत्सवादि अनुष्ठान करते हैं।* इनके मन्दिरोंमें विष्णु मूर्त्तिके अतिरिक्त कहीं कहीं शिव, पार्वती और गणेशकी भी मूर्तियाँ होती हैं और उनकी भी यथाविधि पूजा की जाती है। इससे यह ज्ञात होता है, कि इस सम्प्रदायवाले शैवोंसे उतनी विषमता नहीं रखते, जितनी अन्य वैष्णव रखते हैं। मध्वाचार्य्य पहले शैव ही थे। उन्होंने शैव मन्दिरमें ही दीक्षा ग्रहण की थी और शङ्कराचार्य्य-प्रवर्त्तित तीर्थ उपाधि धारण की थी। सम्भव है, कि उन्होंने शैव और वैष्णवोंके मत-भेदको निर्मूल करनेके लिये ही अपने द्वैत मतका प्रचार किया हो। कुछ भी हो, यह तो प्रत्यक्ष है, कि शैव और इस सम्प्रदायवालोंमें ऐक्य है, और वे परस्पर एक दूसरेकी निन्दा नहीं करते। एक सम्प्रदायके शिष्य दूसरे सम्प्रदायके आचार्य्यको भी श्रद्धा और भक्ति पूर्वक नमस्कार करते हैं और शृंगगिरि मठके शङ्कराचार्य्य उड़ीपीके कृष्ण मन्दिरमें पूजा करने जाते हैं।

---

* उड़ीपीके मंदिरमें देवमूर्त्तिकी नव प्रकारसे पूजा की जाती है। (१) मल विसर्जन अर्थात मंदिरकी सफाई (२) उत्थान अर्थात देवमूर्त्तिको निद्रासे उठाना (३) पञ्चामृत अर्थात् दधि दुग्धादिसे उसे स्नान कराना (४) उद्वर्त्तन अर्थात् गात्रमार्जन ५ तीर्थपूजा अर्थात् तीर्थ जलसे स्नान कराना (६) अलंकार अर्थात मूर्तिको वस्त्रालंकारोंसे सजाना (७) आवृत्त अर्थात गीत और स्तोत्रपाठ (८) महापूजा अर्थात् गन्ध, पुष्प और नैवेद्य दान (९) रात्रि पूजा अर्थात् रात्रिके समय आरती, नैवेद्य-दान, गीत वाद्य।

इस सम्प्रदाय वाले भी रामानुजी वैष्णवोंकी भाँति खड़ा तिलक लगाते हैं, किन्तु मध्यस्थ रेखामें कुछ अन्तर होता है। रामानुजी पीत किंवा रक्त रेखा करते हैं, किन्तु यह लोग नारायण निवेदित गन्धद्रव्यकी भस्म द्वारा एक कृष्ण रेखा और उसके शिरो-भागपर हरिद्राकी गोल बिन्दी करते हैं। वेद, पुराण, उपनिषद और गीताके अतिरिक्त मध्वाचार्यके ग्रन्थोंको इस सम्प्रदायवाले प्रामाणिक मानते हैं।

निम्बार्क सम्प्रदाय।

इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक भास्कराचार्य्य नामक एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। उनका जन्म वर्त्तमान निजाम राज्यमें सिंहाद्रि पर्वतके निकट बेदर नामक ग्राममें १०३६ शकाब्दमें हुआ था। उनके पिताका नाम महेश्वर भट्ट था। वे जातिके ब्राह्मण थे। तीन वेदोंके ज्ञाता और स्मार्तादि कर्मोंमें निपुण थे। वे ज्योतिष विद्याके महान अचार्य्य थे। उन्होंने अपने पुत्रके शुभ लक्षणोंको देखकर उसका नाम भास्कराचार्य्य रक्खा।

बाल्यावस्थामें भास्कराचार्य्यने अपने पिताके निकट गणित मुहूर्त्त ग्रन्थ, सिद्धान्त ग्रंथ, वेद और कितने ही शास्त्रोंका अध्ययन किया। वे महान बुद्धिमान और प्रतिभाशाली पुरुष थे। अध्ययन करनेपर उनका पाण्डित्य अगाध हो गया। उन्हें प्रत्येक विषयपर ग्रन्थ लिखनेकी शक्ति प्राप्त हो गयी। उन्होंने शीघ्र ही सिद्धान्त शिरोमणि और लीलावती प्रभृति ज्योतिष और गणित विद्याके

ग्रंथोंकी रचना कर अपनी अलौकिक ज्ञान गरिमासे दिगदिगन्त उद्भासित कर दिये।

उन दिनों भारतमें जैन धर्म्मका प्रावल्य था। भास्कराचार्यने उसका खण्डनकर वैष्णव सम्प्रदायका प्रचार किया। उन्होंने सुशोभित देवालयोंमें राधाकृष्णकी मूर्तियाँ स्थापित कर उनकी पूजा करनेका उपदेश दिया।

संन्यास ग्रहण करनेके बाद भास्कराचार्य वृन्दावनमें रहा करते थे। उन्होंने दक्षिण भारतकी भाँति उत्तर भारतमें भी अपने मतका प्रचार किया। संस्कृतमें उन्होंने अनेक ग्रंथोंकी रचना की। कहते हैं, कि उन्होंने वेदभाष्य लिखा था, किन्तु इस समय उनका एक भी साम्प्रदायिक ग्रंथ दिखाई नहीं देता। अनुयायियोंका कथन है, कि मथुरामें औरङ्गज़ेब द्वारा नष्ट किये जानेके कारण वे अप्राप्य हो गये हैं।

भास्कराचार्यके अनुयायी उन्हें सूर्य भगवानका अवतार मानते हैं। कहते हैं, कि जैन और बौद्ध प्रभृति मतमतान्तरोंको निर्वापित करनेके लिये सूर्य भगवानने अवतार लिया था। भक्तमालमें भी उनके अलौकिक सामर्थ्यकी एक आख्यायिका अङ्कित है। लिखा है, कि एक दिन कोई जैन संन्यासी उनके निकट उपस्थित हुए। भास्कराचार्य और वह दोनों जैन धर्म तत्वोंपर विचार करने लगे। विचार करते करते जब शाम हो गयी तब भास्कराचार्य उठे और अपने आश्रमसे उस अभ्यागतके लिये कुछ खाद्य सामग्री ले आये। प्राय: दण्डी संन्यासी और जैन रात्रिमें भोजन नहीं ग्रहण करते।

अतिथिने भी सूर्यास्त होता देख कर आतिथ्य ग्रहण करना अस्वीकार किया। कहते हैं, भास्कराचार्यने इसके प्रतिकारार्थ सूर्य भगवानसे कुछ देरतक ठहरनेकी प्रार्थना की। सूर्य्य भगवान ठहर गये। जबतक उस अतिथिका भोजन कार्य्य सम्पन्न न हुआ तबतक वे एक निम्ब वृक्षपर दिखाई देते रहे। उसी दिनसे भास्कराचार्य्य निम्बार्क किंवा निम्बादित्य कहलाये और उनका सम्प्रदाय भी उसी नामसे प्रसिद्ध हुआ।

इस सम्प्रदायवाले भी गोपीचन्दनका खड़ा तिलक और उसके बीचमें एक कृष्णवर्ण बिन्दी लगाते हैं। भक्ति अन्य वैष्णवोंके समान ही करते हैं। पुराण, भक्तमाल, भागवत तथा रामायण प्रभृति ग्रंथोंको प्रामाणिक मानते हैं और भजन कीर्तनादिको मोक्षका साधन समझते हैं। तुलसीकी माला पहनते हैं और उसीसे जप करते हैं।

निम्बादित्यके केशवभट्ट और हरिव्यास नामक दो शिष्य थे। उनके कारण यह सम्प्रदाय दो श्रेणियोंमें विभक्त हो गया है। एक श्रेणीमें विरक्त और दूसरीमें गृहस्थ सम्मिलित हैं। यमुनाके तटपर, मथुराके निकट ध्रुवक्षेत्रमें निम्बार्ककी गद्दी है। लोग कहते हैं, कि उसके अधिकारी हरिव्यासके वंशज हैं, किन्तु उसके महन्त अपनेको भास्कराचार्य्यके वंशज बतलाते हैं। इस सम्प्रदायके अनुयायियोंकी संख्या अधिक नहीं है, किन्तु वे भारतके पश्चिम और दक्षिण अञ्चलोंके अतिरिक्त मथुराके आसपास तथा बङ्गदेशमें भी दिखाई देते हैं।

शुद्धाद्वैत किंवा पुष्टिमार्ग।

शुद्धाद्वैत किंवा पुष्टिमार्ग प्रवर्त्तक महात्मा वल्लभाचार्यका जन्म चम्पारण्यमें हुआ था। उनके पिताका नाम लक्ष्मण भट्ट और माताका नाम अलमगीर था। लक्ष्मण भट्ट तैलङ्गी ब्राह्मण थे। वे दक्षिण भारतके कांकरव नामक ग्रामके निवासी थे। उनके ज्येष्ठ पुत्रका नाम कृष्ण भट्ट था। लक्ष्मण भट्ट कृष्ण-भक्त थे। जिस समय वे सहकुटुम्ब तीर्थाटन करते हुए बनारस पहुंचे, उस समय वहाँके हिन्दू मुसलमानोंमें झगड़ा हो गया। अतः लक्ष्मण भट्ट सपरिवार चम्पारण्य चले गये। वहीं सम्बत १५३५ के वैशाख मासमें उन्हें एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। उन्होंने उसका नाम वदक्रम रक्खा। आगे चल कर वही वल्लभाचार्यके नामसे विख्यात हुआ।

वल्लभाचार्य बाल्यावस्थासे ही बुद्धिमान, चञ्चल और उत्साही थे। पाँचवें वर्ष उनका उपनयन संस्कार हुआ। इसके बाद वे नारायण भट्ट नामक एक विद्वान पण्डितके पास विद्योपार्जनार्थ भेज दिये गये। वहाँ उन्होंने वेद, न्याय और पुराणादि शास्त्रोंमें निपुणता प्राप्त की।

कुछ वर्षों के बाद लक्ष्मण भट्टके एक और पुत्र हुआ। उन्होंने उसका नाम केशव रक्खा। इसके बाद जब वल्लभाचार्यकी अवस्था ग्यारह वर्षकी हुई तब उनके पिताका देहान्त हो गया। वल्लभाचार्य अब पितृ-हीन हो गये। उन्हें केवल अपनी माताका

भारतका धार्मिक इतिहास

पुष्टि मार्ग.



श्रीवल्लभाचार्य ।

पृष्ठ संख्या २३६

ही सहारा रह गया। परन्तु वे विचलित न हुए। उन्होंने अपने पिताके साथ तीर्थाटन करते हुए कठिनाइयोंका सामना किया था और कष्ट सहे थे। उन कष्टोंने उन्हें सहनशील बना दिया था। वह दृढ़ चित्त हो काशी गये। वहाँ उन्होंने विशेष रूपसे ब्रह्मज्ञान और रसायन शास्त्रका अध्ययन किया। इसके बाद वे अपनी माताके पास लौट आये और उनकी आज्ञा प्राप्त कर तीर्थाटन करने निकल पड़े।

जिस समय वल्लभाचार्य दक्षिण भारतमें भ्रमण कर रहे थे, उस समय दामोदरदास नामक एक युवक उनका शिष्य हो गया। वह किसी धनी मानी मनुष्यका पुत्र था। वल्लभाचार्य उसे अपने साथ ले विजयनगर गये। विजयनगरमें कृष्णदेव नामक राजा राज्य करते थे। उन दिनों उनकी राजसभामें स्मार्त्त और वैष्णव मतके आचार्य्यों में शास्त्रार्थ हो रहा था। रामानुज, मध्वाचार्य्य, निम्बार्क और विष्णु स्वामी—इन चारों द्वारा प्रचारित मत पंथोंके विद्वान एक ओर थे और स्मार्त्त मतके पण्डित एक ओर थे। मध्वाचार्यके व्यास तीर्थ नामक प्रसिद्ध शिष्य भी वहाँ उपस्थित थे और स्मार्त्त मतका खण्डन कर कर रहे थे। वल्लभाचार्यने वहाँ पहुंचकर वैष्णव पण्डितोंका पक्ष ग्रहण किया और स्मार्तों को पराजित करनेमें बड़ी सहायता पहुंचायी। सम्प्रदाय-प्रदीप नामक ग्रंथ देखनेसे ज्ञात होता है, कि उसी समय वे वैष्णव धर्माचार्य नियुक्त हुए और उन्हें विष्णु स्वामीके उच्छिन्न मठकी पुनः प्रतिष्ठा करनेका अधिकार दिया गया।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि शङ्कराचार्यके किसी शिष्यने नवीं शताब्दिमें आरम्भमें विष्णु स्वामीके "परमात्मा साकार" मतका खण्डनकर उनके मठको नष्ट कर दिया था। बल्लभाचार्य सर्व सम्मतिसे उसीके आचार्य नियुक्त हुए। उन्होंने परंपरागत धर्म सिद्धान्तमें अपने सिद्धान्त सम्मिलितकर पुष्टि मार्गकी स्थापना की और अपनी गद्दी गोकुलमें रक्खी। जन साधारण उन्हें गोस्वामी किंवा गोसाईंके नामसे सम्बोधित करने लगे।

बल्लभाचार्यने रामानुज और मध्वाचार्य प्रभृति वैष्णव धर्माचार्योंके मतकी उपेक्षाकर अद्वैतवादियोंका पक्ष ग्रहण किया। कहते हैं- कि वैष्णव मतके आदि प्रचारक विष्णु स्वामीने ब्रह्मको अद्वैत ही माना था। अन्तर केवल इतना ही था, कि वे उसे साकार मानते थे। ब्रह्मको अद्वैत मानकर बल्लभाचार्यने कोई विरुद्धाचरण नहीं किया था बल्कि उन्होंने विष्णु स्वामीका ही अनुकरण किया था। कुछ भी हो, यह सर्वथा निष्पन्न है कि बल्लभाचार्यने रामानुज और मध्वाचार्यके सिद्धान्तोंको अमान्य कर स्वतन्त्र रूपसे पुष्टिमार्गकी स्थापना की, जो शुद्धाद्वैतके नामसे भी विख्यात है।

बल्लभाचार्यने परमात्माको साकार मानते हुए बतलाया, कि यह सृष्टि दो प्रकार की है। जीवात्मक और जड़ात्मक। इन्हीं दो तत्वोंके सम्मिश्रणसे सृष्टि उत्पन्न हुई है। हम जो कुछ देखते हैं वह चैतन्य, जड़-किंवा प्रकृति और उन दोनोंका सम्मिश्रण—

इन तीनोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इन्हीं तीनोंके द्वारा संसारमें अनेक दृश्य दिखाई देते हैं और लोप हो जाते हैं। वस्तुओंका दिखाई देना और लोप हो जाना, यह केवल आविर्भाव और तिरोभाव है। कोई वस्तु वास्तवमें नष्ट नहीं हो जाती। ब्रह्माण्डमें जो परमाणु हैं, उनका नाश नहीं होता। जिसे लोग नाश समझते हैं वह रूपान्तर होना है। परमाणुमें रूपान्तर होनेसे वस्तुओंका नाश होता हुआ दिखाई देता है। वस्तुओंका एक रूपसे दूसरे रूपमें परिणत हो जाना यही तिरोभाव और आविर्भाव है।

बल्लभाचार्यने इन बातोंको प्रमाणित करनेके लिये वेद और उपनिषद्के वाक्योंका अपने सिद्धान्तोंके अनुकूल अर्थ किया। उनके सिद्धान्तको हम अद्वैत कह सकते हैं, परन्तु उनका ज्ञानमय सिद्धान्त समझनेके लिये मनुष्यको विषय वासनासे मुक्त होना चाहिये, पर्य्याप्त विद्या और बुद्धि चाहिये, परन्तु यह सम्प्रदाय रसिक और परम मनोरञ्जक हुआ।

प्रतीत होता है, कि उन दिनों लोग धर्मके कठिन नियमोंको पालन करते करते ऊब उठे थे। वे धर्मके और अधिक बन्धनमें आबद्ध होनेको तय्यार न थे। वे धर्मके नामपर कष्ट उठाना न चाहते थे। वे सांसारिक सुखोंमें तन्मय हो रहे थे और उन्हें तनिक भी त्याग करना पसन्द न था। शायद यही देखकर—उन विषयासक्त मनुष्योंको अपने धर्ममें दीक्षित करनेके लिये ही, बल्लभाचार्यने विष्णु स्वामी, रामानुज, मध्वाचार्य और निम्बार्क—इन आचार्य्यों द्वारा प्रचारित धर्मसे भी, अधिक सरल अधिक रसिक

और अधिक मनोरञ्जक सम्प्रदाय प्रचलित किया। उन्होंने राधा-कृष्णकी क्रीड़ा और प्रेम-पूर्ण भक्तिका उपदेश दे लोगोंको अपने धर्ममें दीक्षित करनेकी चेष्टा की। उन मनुष्योंके लिये उनके धर्ममें किसी बातका अभाव न था। वे प्रसादके नामपर मिष्ठान्न उड़ा सकते थे और राधाकृष्णकी लीला देखकर अपना यथेच्छ मनोरञ्जन कर सकते थे।

महाभारत और भागवत—दोनों ग्रंथोंमें श्रीकृष्णका जीवन वृत्तान्त अंकित है। महाभारतमें श्रीकृष्ण और विष्णु अभिन्न माने गये हैं। भागवतमें उनकी कलि-कौतुक पूर्ण यौवन-लीलाओं-का वर्णन किया गया है। किन्तु इन दोनों ग्रंथोंमें विष्णुकी अपेक्षा श्रीकृष्णको कहीं प्राधान्य नहीं दिया गया। न उनमें उनके बाल-रूपकी उपासनाका ही विधान है।

परन्तु ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें श्रीकृष्णको ही प्राधान्य दिया गया है। श्रीकृष्णमें ईश्वरत्व आरोपितकर उसमें बतलाया गया है, कि वे मायातीत, गुणातीत, नित्य, और सत्य हैं। वे पूर्ण यौवन सम्पन्न नाना रत्न विभूषित पीताम्बर और मुरलीधर रूपमें सर्वदा गोलोकमें निवास करते हैं। वृन्दावनवासी गोपालोंका वह गोलोक वैकुण्ठके ऊपर पचास कोटि योजनके अन्तर पर स्थित है।* ब्रह्मादि देव, सत्व रजादि गुण, पशु और मानव आदि जीव

* निराधारश्च वैकुण्ठो, ब्रह्माण्डानां परोवरः।
तत्परश्चापि गोलोकः, पञ्चाशत कोटि योजनात्॥

और संसार भरके समस्त पदार्थ उन्हीं श्रीकृष्ण और गोपालोंके अङ्ग प्रत्यङ्ग किंवा अंशसे उत्पन्न हुए हैं।

इस सृष्टि प्रकरणके अतिरिक्त उस पुराणमें जगन्नियन्ता श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंका भी अद्भुत और अलौकिक वर्णन किया गया है। यद्यपि उसमें भी उनकी उपासनाका कहीं स्पष्ट आदेश दृष्टिगोचर नहीं होता, किन्तु यह सम्भव है, कि उन बातोंके पठनसे लोगोंके हृदयमें बालकृष्णकी उपासनाका भाव जागरित हुआ हो और उसे अनुभवकर बल्लभाचार्यने वैसा आदेश दिया हो।

यद्यपि विष्णु स्वामीने—जिनके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये बल्लभाचार्य नियुक्त हुए थे—संन्यासको ही इष्ट गिना था, किन्तु बल्लभाचार्यने वैराग्यको निरर्थक बतलाया। उनके सम्प्रदायमें वैराग्यके स्थानपर साधारण उपासना और निवृत्तिके बदले प्रवृत्ति ही दिखाई देती है। उन्होंने बतलाया, कि शरीरको अनावश्यक कष्ट देनेसे मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। परमात्माकी खोज उपवास करते हुए वनोंमें नहीं की जा सकती। किन्तु इस जीवनके आनन्दोंको भोगते हुए उन आनन्दोंमें ही उसे प्राप्त करना चाहिये।

परमात्मा और मुक्तिकी प्राप्तिके लिये बल्लभाचार्यके अतिरिक्त और किसीने ऐसा उपदेश नहीं दिया। व्यास तीर्थने उन्हें संन्यास ग्रहण कर धर्म्म प्रचार करनेको कहा, परन्तु वे उनकी बातसे सम्मत न हुए। उन्होंने स्वयं सांसारिक सुख भोग किये और लोगोंको भी वैसा ही उपदेश दिया। इसी कारणसे उनके अनुयायी

भोग-विलासी पाये जाते हैं और सभी धर्म्माचार्य्य किंवा गोस्वामी गृहस्थ होते हैं।

वल्लभाचार्यने अपने मन्तव्योंके प्रचारार्थ बड़ा परिश्रम किया किन्तु वे अपने जीवन कालमें ८४ ही शिष्य प्राप्त कर सके, जो चौरासी वैष्णवके नामसे विख्यात हैं। उनकी इस असफलतासे ज्ञात होता है लोग उतना सरल तथा प्रवृत्तिमय धर्म ग्रहण करनेको उस समय तय्यार न थे, जितना कि उन्होंने समझ रक्खा था।

उन्होंने भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें भ्रमण कर नव वर्ष पर्य्यन्त लोगोंको उपदेश दिया था। जहां जहां वे ठहरे थे, जहां कहीं कुछ काम किया था, वे स्थान 'बैठक' नामसे प्रसिद्ध हैं और उनके स्मरणमें वहाँ मठ और मन्दिर बना रक्खे गये हैं। उन्होंने लक्ष्मी नामक स्त्रीसे विवाह किया था और उसके उदरसे उन्हें गोपीनाथ और विट्ठलनाथ नामक दो पुत्र हुए थे। श्रीनाथकी मूर्त्ति पहले उन्होंने गोबर्द्धन पर्वतपर स्थापित की थी। बादको वे संवत १५७६ में उसे मेवाड़ उठा ले गये थे। वहाँसे १५८७ में वे काशी चले आये और वहीं ५२ वर्षकी अवस्थामें सद्गतिको प्राप्त हुए।

वल्लभाचार्य्यकी गद्दीके लिये उनके पुत्रोंमें झगड़ा हो गया था। दोनों न्याय करानेके लिये दिल्ली गये थे और वहाँ मुगल सम्राटके पास कुछ दिन रहे थे। किन्तु अचानक गोपीनाथकी मृत्यु हो जानेके कारण गद्दी विट्ठलनाथ हीको मिली। विट्ठलनाथ बुद्धिमान, विद्वान और चञ्चल थे। वे निरन्तर शिष्य प्राप्त करनेकी ही चिन्तामें मग्न रहते थे। जिस प्रकार कोई अपने पुत्रका लालन पालन करता

है और जिस प्रकार तरुण स्त्री पुरुष वस्त्रालङ्कारसे विभूषित हो ऐश्वर्य्य भोग करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने बालकृष्ण और राधा-कृष्णकी लीला दिखानी आरम्भ की। ऐसा करने पर उन्हें आरम्भ में २५२ शिष्य प्राप्त हुए जो दो सौ बावन वैष्णवके नामसे विख्यात हैं।

बिट्ठलनाथने अपने सम्प्रदायकी उन्नतिके अनेक उपाय सोचे। उन्होंने अनेक प्रकारके मनोरञ्जक व्रत और उत्सवोंकी योजना की और लोगोंको प्रेमभक्तिकी शिक्षा दी। इतना ही नहीं, उन्होंने रसिक और प्रेमी मनुष्योंको प्रिय प्रतीत हों ऐसे भजनोंकी रचना करायी और मन्दिरोंमें गायन वादनकी व्यवस्था की। उन्होंने काशी, मथुरा, कच्छ, द्वारिका, मारवाड़, मेवाड़, पन्ढरपुर और बम्बई प्रभृति प्रदेशोंमें भ्रमण भी किया। उनका यह उद्योग निष्फल न हुआ। अनेकानेक लोगोंने उनका मत स्वीकार किया और उनके आदेशानुसार उन्हें ईश्वर मानने लगे।

बिट्ठलनाथके रुक्मिणी और पद्मावती नामक दो स्त्रियाँ थीं। उनके गर्भसे उन्हें शोभा, कमला, यमुना और देवकी नामक चार कन्यायें तथा गिरधर, गोबिन्दराय, बालकृष्ण, गोकुलनाथ, घनश्याम रघुनाथ और यदुनाथ यह सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। उन्होंने गोव-र्द्धन पर्वत पर बालकृष्ण की भिन्न भिन्न सात मूर्त्तियाँ स्थापित कर उनकी सेवा वृत्ति स्वीकार की थी। कहते हैं कि एक दिन रात्रिके समय शाहजहाँ बादशाहने ताजमहलके बुर्जपर चढ़कर देखा तो उन्हें इन मन्दिरोंका दीपक प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। उन्हें ताज-

महलसे किसीकी इमारत उँची हो यह पसन्द न था अतः इन मन्दिरोंको नष्ट कर देनेकी आज्ञा प्रदान की। विट्ठलनाथके पुत्र यह संवाद सुन, अपनी अपनी मूर्त्ति लेकर भिन्न भिन्न स्थानोंमें चले गये और वहाँ उनकी स्थापना कर धर्म्म प्रचार करने लगे।*

उन्होंने बड़े ठाट और आडम्बरसे भजन कीर्तन और पूजा आरम्भ की। श्रीकृष्णकी रासलीला दिखाकर लोगोंके चित्त आकर्षित किये और "मत्प्रसादात्तरिष्यसि"+ इस गीता वाक्यको प्रमाण बतलाकर मूर्त्तिका प्रसाद भक्तजनोंको तारनेके लिये खिलाना आरम्भ किया। इन सब बातोंको देखकर लोगोंने उसे भली भांति अपनाया।

वैष्णवोंका मुख्य सिद्धान्त सगुण भक्ति है। सगुणका अर्थ उन्होंने यथासाध्य अपने सम्प्रदायके अनुकूल किया है। वे बतलाते हैं, कि ईश्वर सगुण अर्थात् मनुष्याकार पुरुषके समान है। वह गोलोक किंवा बैकुण्ठमें वास करता है। राधा और लक्ष्मी प्रभृति उसकी स्त्रियाँ हैं। पत्नी सह वे वहाँ नाना प्रकारके सुख भोग किया करते हैं। मनुष्योंके कल्याण किंवा किसी महत्व पूर्ण कार्यके

---

*श्रीनाथद्वारेमें श्रीनाथजीकी, कांकरोलीमें द्वारिकानाथजीकी, कोटामें श्रीमथुरेशकी, जयपुरमें श्रीमदन मोहनजीकी, गोकुलमें श्रीगोकुलनाथजी की, सूरतमें श्रीबालकृष्णजीकी और अहमदाबादमें श्रीनटवरलालजीकी मूर्ति स्थापित की गई थी।

+प्रसादका वास्तविक अर्थ है श्रीकृष्णका गीता उपदेश। यह बात उस श्लोकके उपरार्द्ध से ही सिद्ध होती है। उसमें प्रसाद खानेको नहीं बल्कि सुननेको कहा गया है।

लिये वे पृथ्वीपर अवतार लेते हैं और जबतक कार्य पूर्ण नहीं होता तबतक नाना प्रकारके सुख भोग करते हुए अपना समय व्यतीत करते हैं।

वे कहते हैं, कि ईश्वर जो सुख भोग करता है, वह दोष रहित और निर्गुण है। जिस प्रकार अग्नि-मुखमें डाले हुए पदार्थ उसे भ्रष्ट नहीं कर सकते, उसी प्रकार परमात्मा निर्लेप है और कर्मादि से वह पतित नहीं होता। अपनी इन बातोंको सिद्ध करनेके लिये वे भागवत और विष्णु पुराणादिके वचन प्रमाण स्वरूप उपस्थित करते हैं।

यद्यपि वैष्णव विष्णुको परब्रह्म मानते हैं और अवतारोंको भी वैसा ही बतलाते हैं, परन्तु विशेषकर वे कृष्णावतारको ही पर-ब्रह्मके रूपमें पूजते हैं और उसीको मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं। गोलोक ही स्वर्ग है। वहाँ श्रीकृष्ण सखियों सह निवास करते हैं। सखी भावको प्राप्त कर भगवानके निकट रहना—यही मोक्ष है। इन बातोंको प्रमाणित करनेके लिये भी वे भागवत और विष्णु पुराणादिके ही प्रमाण उपस्थित करते हैं। श्रीकृष्णकी बाललीलाका अनुकरण करना ही उनका धर्म है। प्रेम लक्षणा-भक्तिको ही वे मोक्ष मानते हैं।

इस सम्प्रदायका गुजरातमें विशेष प्रचार है। वहाँके धनी मानी और वणिक वैश्य इसमें सम्मिलित हैं। वे संन्यासको नहीं मानते। आचार्य्य और शिष्य सभी गृहस्थ होते हैं और सांसारिक सुख भोग करते हैं। गुरुको ईश्वर मानते हैं और उन्हींकी सेवाको

मोक्ष साधन समझते हैं। परस्पर एक दूसरेको जय श्रीकृष्ण, जय-गोपाल इत्यादि कहकर नमस्कार करते हैं।

आचार्य्य अपने शिष्योंको "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" किंवा "श्रीकृष्ण शरणं मम" इस अष्टाक्षरी मन्त्रका उपदेश देते हैं। शिष्यगण उसका स्मरण करते हुए प्रतिदिन माला फेरते हैं।

मन्दिरोंमें कृष्ण मूर्त्तिकी प्रतिदिन आठ प्रकारसे पूजा की जाती है। उनके नाम यह हैं:—मङ्गलारति, शृङ्गार, गोपाल, राज-भोग, उत्थान, भोग, सन्ध्या और शयन। प्रत्येक वार गन्ध पुष्प, नैवेद्यदान और स्तोत्र पठन आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वर्षमें अनेक बार महोत्सव किये जाते हैं। उन महोत्सवोंमें हजारों रुपये व्यय होते हैं और हजारों मनुष्य योगदान करते हैं।

बल्लभाचार्यने भागवतपर एक टीका लिखी है, वही इन लोगों-का प्रधान साम्प्रदायिक ग्रंथ हैं। उसके अतिरिक्त उन्होंने ब्रह्म-सूत्र भाष्य, सिद्धान्त रहस्य, भागवतलीला रहस्य, एकान्त रहस्य, तत्वदीप निबन्ध, पुष्टि प्रवाह मर्यादा और नवरत्न प्रभृति अनेक ग्रंथोंकी रचना की थी। यह सब प्रामाणिक माने जाते हैं किन्तु केवल आचार्यगण ही उनसे लाभ उठाते हैं। साधारण अनुया-यियोंके लिये विष्णुपद, ब्रजविलास, अष्टछाप, वार्ता प्रभृति भाषा ग्रंथोंका ही पठन पर्याप्त बतलाया गया है।

समस्त बल्लभाचारी वैष्णव विट्ठलनाथके सात पुत्र होनेके कारण सात श्रेणियोंमें विभक्त हो गये हैं। छः श्रेणीवाले तो प्रायः समान ही आचार विचार पालते है, किन्तु गोकुलनाथके शिष्य

कुछ विभिन्नता रखते हैं। वे अन्य धर्माचारियोंका सम्मान नहीं करते और अपनेकोही सर्व श्रेष्ठ वैष्णव बतलाते हैं।

वष्णव मात्र अपना सर्वस्व श्रीकृष्णको अर्पणकर ब्राह्म सम्बन्ध करते हैं। उनकी यह धार्मिक क्रिया आचार्य्य द्वारा सम्पादित होती है। प्रत्येक वैष्णव अपने पुत्रको ग्यारहवें वर्ष और पुत्रीको विवाहके समय गुरुके पास ले जाता है और समर्पण कार्य्य समाप्त करता है। उस प्रसंगपर धर्माचार्य धन ग्रहणकर मन्त्रोपदेश देते हैं। उस दिनसे वह मनुष्य कण्ठी धारण करनेका अधिकारी हो जाता है और नियमानुसार प्रतिदिन एकान्तमें बैठ गुरु-दत्त महामन्त्रका जप करता हैं।

वैष्णवोंमें भी मर्यादा प्रभृति भेद है। श्रीकृष्ण की बाललीला और राधाकृष्णकी यौवन क्रीड़ाका अनुकरण करनेमें ही इस मत वाले मोक्ष मानते हैं।

मनुष्योंको सदाचारी बनाना और विषय वासनाओंसे मुक्त कर मोक्ष मार्ग दिखलाना यही प्रत्येक धर्म्मका उद्देश्य होना चाहिये। और इसी उद्देश्यसे प्रत्येक सम्प्रदाय और धर्म्मकी स्थापना होती है। वल्लभ सम्प्रदायकी स्थापना भक्तिपर मालूम होती है। भक्तिके द्वारा ही ये मोक्षका पथ परिष्कृत किया चाहते हैं। इनकी भी धारणा ऐसी मालूम होती हैं, कि त्यागकी कोई आवश्यकता नहीं, संसारके सभी कर्म श्रीकृष्णको समर्पण करते जाओ, बस मोक्ष प्राप्त हो जायगी।

चैतन्य सम्प्रदाय।

यह सम्प्रदाय भी एक वृहत् वैष्णव सम्प्रदाय है। महात्मा चैतन्य इसके प्रवर्त्तक और नित्यानन्द तथा अद्वैत उनके सहायक थे। प्रवर्त्तक ही क्यों: उनके अनुयायी उन्हें अपना उपास्य देव भी मानते हैं। वे कहते हैं, कि चैतन्य श्रीकृष्ण भगवानके पूर्णावतार थे और धर्म प्रचारार्थ उन्होंने शरीर धारण किया था। प्रमाणार्थ वे अनन्त संहिताके अनेक श्लोक भी उपस्थित करते हैं।* किन्तु शैव पण्डितोंका मत कुछ और ही है। वे कहते हैं, कि त्रिपुरासुरने शूलपाणि माहेश्वर द्वारा निहत हो शैव धर्मका विनाश करनेके लिये चैतन्य, नित्यानन्द और अद्वैतके रूपमें जन्म ग्रहण किया था। उन्होंने वैष्णव सम्प्रदायके नामसे पाखण्ड मतका प्रचार कर शैव धर्मको नष्ट करनेकी चेष्टा की। अपनी इन बातोंको प्रमाणित करनेके लिये वे तन्त्र रत्नाकरके अनेक श्लोक उपस्थित करते हैं। किन्तु यह सब ग्रन्थ आधुनिक हैं। वेद, स्मृति, पुराण किंवा प्राचीन काव्योंमें कहीं चैतन्य अवतारका उल्लेख नहीं। न वे कृष्णके ही अवतार थे, न त्रिपुरासुरके ही। अन्यान्य धर्मप्रवर्त्तकोंकी

---

* धर्म संस्थापनार्थाय विहरिष्यामि तैरहम्।
नष्टं भक्ति पथं काले स्थापयिष्याम्यहं पुनः
कृष्ण चैतन्य गौरांगो गौरचन्द्रः शची सुतः।
प्रभुर्गौरहरिर्गौरो नामानि भक्तिदानिमे॥

—अनंत संहिता।

चैतन्य सम्प्रदाय.



नित्यानन्द। गौराङ्ग। अद्वैत।

पृष्ठ संख्या २४८

भाँति वे भी एक धर्मात्मा पुरुष थे। दोनों पक्षके यह तर्क वितर्क पारस्परिक विद्वेष और अश्रद्धाके विज्ञापक है।

बङ्ग भाषाके अनेक ग्रंथोंमें चैतन्यका जीवन वृत्तान्त अङ्कित है। किन्तु वृन्दावनदास विरचित चैतन्य चरित्र सर्वापेक्षा प्रामाणिक माना जाता है। मुरारिगुप्त और दामोदर नामक दो शिष्योंने आदि लीला और शेष लीला नामक दो ग्रंथ लिखे थे। आदिलीलामें चैतन्यके गृहस्थाश्रमका और शेषलीलामें उनकी उत्तरावस्थाका वृत्तान्त अङ्कित है। उपरोक्त चैतन्य चरित्र इन्हीं दो ग्रंथोंके आधारपर सङ्कलित हुआ था। बादको १५३७ शकाब्दमें कृष्णदास नामक एक वैष्णवने उसके सार स्वरूप चैतन्य चरित्रामृत नामक प्रसिद्ध ग्रन्थकी रचना की। यद्यपि ग्रंथकर्त्ताने उसे सार संग्रह कहा है, किन्तु वह भी एक वृहत् ग्रंथ है। उसमें चैतन्य तथा उनके प्रधान शिष्योंका जीवन वृत्तान्त और चैतन्य सम्प्रदायका सप्रमाण विवरण अङ्कित है। हम उसीके आधारपर चैतन्यका चरित्र संक्षेपमें वर्णन करते हैं।

महात्मा चैतन्यके पिताका नाम जगन्नाथ मिश्र और माताका नाम शची था। जगन्नाथ पहले श्रीहट्ट नामक ग्राममें रहते थे। बादको गङ्गा तटपर रहनेकी इच्छासे नवद्वीप चले गये। वहीं शकाब्द १४०७ के फाल्गुन मासमें चैतन्य भूमिष्ठ हुए।

चैतन्य स्वामीका दूसरा नाम निमाई था। उनका वर्ण गौर था अतः लोग गौराङ्ग भी कहा कहते थे। वे असाधारण बुद्धिमान थे। उन्होंने पण्डित बासुदेव सार्वभौमके निकट विद्या·

भ्यास किया था। कुछ ही दिनोंके उद्योगसे उन्हें न्याय शास्त्रमें अलौकिक निपुणता प्राप्त हो गयी थी। वासुदेव उस शास्त्रके प्रसिद्ध अध्यापक थे। मिथिलासे आकर उन्होंने नवद्वीपके समीपवर्ती विद्यानगरमें विद्यालय स्थापित किया था।

नवद्वीप बङ्गदेशका एक प्रसिद्ध स्थान है। जिस समय मुसलमानोंने यहाँ पदार्पण किया, उस समय नवद्वीप बंगकी राजधानी थी। इसके अतिरिक्त उन दिनों वह एक शिक्षा केंद्र भी था। समूचे भारतके विद्यार्थी वहाँ विद्योपार्जनार्थ उपस्थित रहते थे।

महात्मा चैतन्यका बाल्यकाल इसी प्रसिद्ध स्थानमें व्यतीत हुआ। वे बड़े मेधावी बालक थे। छोटी अवस्थामें ही पढ़ना लिखना सीखकर उन्होंने अपनी अद्‌भुत शक्तिका परिचिय दिया था। वे सदा एकाग्र चित्तसे भागवतका पाठ किया करते थे। उसकी बातें उनके अन्तर पटपर इस प्रकार अङ्कित हो गई थीं, कि वे आजन्म उन्हें भूल न सके।

बड़े होनेपर चैतन्यका लक्ष्मी नामक एक सुन्दर कन्याके साथ विवाह हुआ, परन्तु कुछ ही दिनोंके बाद उसकी मृत्यु हो गयी। इच्छा न होनेपर भी उन्हें विष्णुप्रिया नामक कन्याके साथ विवाह कर पुनः गार्हस्थ्य धर्म्मका पालन करना पड़ा। उनके पिताका देहान्त हो चुका था। ज्येष्ठ बन्धु विश्वरूपने संन्यास ग्रहण कर लिया था। अतः माताके पालन पोषणका भार भी उन्हींके शिर आ पड़ा था।

गृहस्थाश्रमी होने पर भी चैतन्य श्रीकृष्णकी उपासनामें निरन्तर लीन रहते थे। उनके श्रीराम नामक एक मित्रके यहाँ रात्रिके समय नियमित रूपसे हरिकीर्त्तन हुआ करता था। चैतन्य प्रतिदिन वहाँ उपस्थित हो उसमें भाग लेते थे। ऐसा करते करते कुछ ही दिनों बाद उन्हें वैराग्य आ गया और उन्होंने २४ वर्षकी अवस्थामें संन्यास ग्रहणकर अपना शेष जीवन धर्मप्रचार करनेमें व्यतीत किया।

उन्होंने छः वर्ष पर्य्यन्त भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें भ्रमणकर प्रेम भक्तिका प्रचार किया और अट्ठारह वर्ष जगन्नाथ पुरीमें व्यतीत किये। उन्होंने लोगोंको धार्मिक शिक्षा दी और सदाचारी बनाया। वे सदा दुःख पीड़ितोंका कष्ट दूर करनेकी चेष्टामें लगे रहते थे। रोगमें औषधि और शोकमें सान्त्वना देकर वे लोगोंको शान्त किया करते थे। उन्होंने सब प्रकारके इन्द्रिय सुखोंको जलाञ्जलि दे दी थी। अच्छे अन्न और अच्छे वस्त्रके लिये उन्होंने कभी याचना नहीं की। वे एक साधारण संन्यासी और भिक्षुक की भाँति दीनता पूर्वक चारों ओर विचरण किया करते थे। धर्म-प्रचार और परोपकार यही दो उनके प्रधान कर्म थे। हरिकीर्तन और ईश्वरोपासनामें वे इस प्रकार तन्मय हो जाते थे कि उन्हें वाह्य सृष्टिका कुछ भी ज्ञान न रहता था।

जीवनके अन्तिम समयमें उनकी यह दशा चरम सीमाको पहुंच गयी थी। वे प्रायः उन्मत्तकी भाँति प्रलाप किया करते थे। उनका वाह्य ज्ञान बिलकुल ही लोप हो गया था। ऐसी

दशामें एक दिन उन्होंने एक अद्भुत दृश्य देखा। रात्रिका समय था। आकाशमें निर्मल, चन्द्रमा विराज रहा था। उसकी उज्ज्वल किरणें समुद्रकी सुन्दर तरङ्गोंपर अठखेलियां कर रही थीं। महात्मा चैतन्यकी तबीयत यह देखकर मस्त हो गयी। उन्हें प्रतीत हुआ, मानों घोर नीले जलमें श्रीकृष्णचन्द्र जलक्रीड़ा कर रहे हैं। हृदयमें यह विचार आते ही वे अगाध जल राशिमें कूद पड़े। बस, यहीं उनके जीवनका अन्त हुआ। मानों वे साक्षात परब्रह्मकी ज्योतिमें लीन हो गये। इस समय उनकी अवस्था ४८ वर्ष की थी।

नित्यानन्द और अद्वैत यह दोनों चैतन्य स्वामीके सहकारी और सहायक थे। चैतन्य स्वामीने उन्हें बङ्गदेशके प्रधान धर्म्माचार्यका पद प्रदान किया था। किन्तु इस सम्प्रदायवाले उन्हें विष्णुके अंशावतारी मानते हैं और चैतन्यकी भाँति उन्हें भी महाप्रभुके नामसे सम्बोधित करते हैं। उनके वंशज अद्यापि विद्यमान हैं और अपने अनुयायियोंपर गोकुलस्थ गोस्वामियोंकी भाँति शासन करते हैं। इनके अतिरिक्त रूप, सनातन, जीव, रघुनाथभट्ट, रघुनाथदास और गोपालभट्ट—यह छः चैतन्य स्वामीके प्रधान शिष्य थे। अद्वैत, नित्यानन्द और चैतन्यकी भाँति इनको भी इस सम्प्रदायवाले आदि गुरु मानते हैं और इनके वंशजोंका आधिपत्य स्वीकार कहते हैं।

इस सम्प्रदायवालोंके उपास्य देव श्रीकृष्ण हैं। वे उन्हें साक्षात भगवान मानते हैं—"कृष्णास्तु भगवान् स्वयम्।" वेही ब्रह्मा,

विष्णु और महेश्वरका रूप धारण कर उत्पत्ति, पालन और प्रलय करते हैं। वेही प्रजा पालन और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये समय समय पर पूर्णावतार, अंशावतार, अंशांशावतार प्रभृति अनन्त रूप धारण कर अनन्त लीलाका विस्तार करते हैं। चैतन्य स्वामीको भी वे उन्हींका अवतार मानते हैं।

इस सम्प्रदायमें प्रेम-भक्तिको प्राधान्य दिया गया है। भक्ति ही मोक्षका साधन है। वे कहते हैं, कि भागवतमें स्वयं श्रीकृष्णने कहा है, कि—

यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञान वैराग्यतञ्चयत्।
योगेन दान धर्मेण श्रेयोभिरितररपि॥
सर्वं भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चित यदि वाञ्छति॥

(भागवत स्कन्ध ११ अध्याय २०)

अर्थात् कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान और अन्यान्य शुभानुष्ठानों द्वारा भी जिस फलकी प्राप्ति नहीं होती, उसे मेरे भक्त भक्तियोगके अनुष्ठान द्वारा अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं। यदि वे चाहें तो स्वर्ग, मुक्ति और मेरा बैकुण्ठधाम भी प्राप्त कर सकते हैं।

महात्मा चैतन्य लोगोंको बतलाते थे, कि सब लोग समान रूपसे ईश्वर भक्ति कर सकते हैं। भक्ति द्वारा समस्त जातियाँ एक समान शुद्ध हो सकती हैं। यही कारण है, जिससे उन्होंने मुसलमान तथा अन्यान्य म्लेच्छ जातिके लोगोंको भी दीक्षा दी और

अपना शिष्य बनाया।* कुछ लोग उनका यह कार्य देखकर उनकी निन्दा करने लगे और उन्हें पठान वैष्णव कहने लगे। किन्तु चैतन्य स्वामी विचलित न हुए। वे वर्णाभिमानकी अपेक्षा भक्तिका आसन अधिक ऊँचा समझते थे। वे कहते थे कि :—

शुचिसद्भक्ति दीप्ताग्नि दग्धदुर्जाति कल्मषः।
स्वपाकोऽपि बधैः श्लाघ्यो नवेदज्ञोऽपि नास्तिकः॥

अर्थात् भक्तिकी शुद्ध दीप्ताग्निमें पड़कर जिसके दुर्जाति जन्य पाप नष्ट हो गये हैं, वह चाण्डाल भी भक्ति शून्य और नास्तिक वेदज्ञसे कहीं अधिक आदरणीय है।

चैतन्य स्वामी जिस प्रेम भक्तिका प्रतिपादन करते थे, उसके उन्होंने पांच भाव बतलाये हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य। सनक सनातनादि प्राचीन ऋषि मुनि जिस भावसे उपासना करते थे उसे शान्त भाव कहते हैं। साधारण भक्त गण जिस भावसे उपासना करते हैं उसे दास्य भाव कहते हैं। दास्य भावसे सख्य भाव अधिक अच्छा है। अर्जुन और भीम आदिने इसी भावसे श्रीकृष्णको प्राप्त किया था। माता पिताका अपने पुत्रके प्रति जो भाव होता है उसे वात्सल्य कहते हैं। नन्द और यशोदाका इसी भावसे उद्धार हुआ था। पांचवाँ भाव है माधुर्य। यह भाव सर्व श्रेष्ठ है। राधिका प्रभृति गोपाङ्गनाओंने जिस

---

* आज भी जगन्नाथपुरीमें सर्व जातिके मनुष्य एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करते हैं। यह चैतन्य स्वामीके उपदेशका ही प्रताप है।

भावसे श्रीकृष्णकी सेवा की थी, उसी भावको माधुर्य कहते हैं। चैतन्य स्वामी इसी भावको धारण कर, भगवद्भक्तिमें तन्मय हो उन्मत्त हो गये थे।

बल्लभाचारी वैष्णव * और इस सम्प्रदायवालोंकी सेवा विधि प्रायः एक ही समान है, किन्तु बल्लभाचारियोंकी भाँति यह बिहित बिधानसे प्रतिदिन आठ बार कृष्णोपासना नहीं करते। बङ्ग देशके अधिकांश वैष्णव सुबह और शाम दो ही बार पूजा करते हैं। हाँ, कहीं अपवाद स्वरूप आठ बार भी होती है।

नाम संकीर्त्तन इस सम्प्रदायवालोंका प्रधान कर्म्म है। उनके मतानुसार कलियुगमें हरिनाम स्मरणके अतिरिक्त परित्राणका और कोई उपाय नहीं है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

—आदिखण्ड पञ्चम परिच्छेद

इसके अतिरिक्त कृष्ण भगवानका प्रेम सम्पादन करनेके लिये ध्यान, उपवास, नृत्य प्रभृति ६४ प्रकारके साधनोंकी व्यवस्था की

---

* बल्लभाचार्य और चैतन्य समकालीन थे। चैतन्यकी एक स्त्री बल्लभाचार्यकी एक कन्या बतलाई जाती है। बल्लभाचार्यने भारतके उत्तर और पश्चिम अञ्चलमें धर्म प्रचार किया और चैतन्यने पूर्वमें। अतः कुछ लोग चैतन्य सम्प्रदायको स्वतन्त्र सम्प्रदाय नहीं मानते हैं। किन्तु यह ठीक नहीं। कुछ बातोंमें साम्य होनेपर भी वह एक दूसरेसे भिन्न हैं।

गयी है। किन्तु गुरु-सेवाको बड़ा महत्व दिया गया है। गुरुको आत्मसमर्पण और सर्वस्व दान करना इस सम्प्रदायवालोंका प्रधान कर्त्तव्य है। ईश्वर, गुरु और मन्त्र इन तीनोंको वे अभिन्न दृष्टिसे देखते हैं।

यो मन्त्रः स गुरु साक्षात् यो गुरुः स हरिः स्वयम् ।

अर्थात् मन्त्रको साक्षात् गुरु और गुरुको साक्षात् हरि स्वरूप मानना चाहिये—उपासना पञ्चामृत।

प्रथमन्तु गुरुः पूज्यस्ततश्चैव ममार्चनम् ।

प्रथम गुरुकी पूजा करे, बादको मेरी (हरिकी)—भजनामृत।

गुरुरेव सदाराध्यः श्रेष्ठो मन्त्रादभेदतः।
गुरौतुष्टे हरिस्तुष्टौ नान्यथा कल्प कोटिभिः॥

अर्थात् सर्वदा गुरुकी आराधना करनी चाहिये। वे मन्त्रसे अभिन्न और श्रेष्ठ हैं। गुरु प्रसन्न होंगे तो हरि भी प्रसन्न होंगे। अन्यथा कोटि कल्प पर्यन्त आराधना करनेसे भी कोई फल न होगा—भजनामृत।

हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।

हरिके रुष्ट होनेपर गुरु रक्षा कर सकते हैं, किन्तु गुरुके रुष्ट होनेपर और कोई रक्षा नहीं कर सकता—भजनामृत।

गुरु सेवाको इस सम्प्रदायमें इसी प्रकार महत्व दिया गया

है। गुरु जो कहें उसे ईश्वर वाक्य समझकर शिरोधार्य्य करना प्रत्येक अनुयायीका प्रधान और आवश्यक कर्म है। गुरुत्व पदपर वंश परम्परागत गोस्वामियोंका ही अधिकार रहता है। यद्यपि चैतन्य स्वामीने अपने शिष्योंको ताकीद की थी, कि वे अपने गुरुओंको पिताके समान सम्मानित करें, न कि उनकी पूजा करें, किन्तु गुरुत्व पद और एकाधिपत्य प्राप्तकर आचार्य्य गण अपने शिष्योंपर अनेक प्रकारके अत्याचार करने लगे हैं वे उनके शासनार्थ अपनी ओरसे फौजदार, छड़ीदार प्रभृति कार्मचारी नियुक्त करते हैं और वे गुरु आज्ञाका पालन करानेके लिये शिष्योंको दण्ड तक देते हैं, किन्तु यह सब गुरुओंकी ही ओरसे होता है। चैतन्य स्वामीने ऐसी कोई आज्ञा नहीं दी। इसके लिये वे दोषी नहीं ठहराये जा सकते।

इस सम्प्रदायमें अविवाहित मनुष्य भी सम्मिलित हैं जो अपने आपको ब्रह्मचारीके नामसे पुकरते हैं, और घूमनेवाले साधु भी, किन्तु इनके धर्म्म गुरु किंवा गुसाईं लोग प्रायः विवाहित ही होते हैं। वे अपने स्त्री और बच्चों सहित कृष्ण-मन्दिरके आसपास छोटे छोटे घरोंमें रहा करते हैं। महात्मा चैतन्यकी पूजा उड़ीसामें एक गार्हस्थ्य पूजाके समान हो गयी है। धनी लोग प्रतिदिन पूजा करते समय अपने घरोंमें बने हुए छोटे छोटे मन्दिरोंमें उनकी अर्च्चना करते हैं।

गृहस्थोंको दीक्षा देते समय गोस्वामीगण उन्हें उपासना प्रकरणका उपदेश देते हैं। जो लोग वैराग्यके कारण जातिभेद परित्याग

कर दीक्षा ग्रहण करते हैं, उन्हें भेक-भेष लेना पड़ता है। उस समय समस्त क्रियायें फौजदार और छड़ीदार ही कराते हैं। वे उनका मुण्डन कराकर उन्हें कटिसूत्र, कोपीन, बहिर्वास, तिलक, मुद्रा, जलपात्र, जपमाला और त्रिकण्ठिका प्रदान कर मन्त्रोपदेश देते हैं और उनसे दक्षिणा ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त दीक्षा ग्रहण करनेवालेको चैतन्य, अद्वैत और नित्यानन्द प्रभुको नैवेद्य दान भी करना पड़ता है। यदि हो सके तो उस समय वैष्णवोंको भोजन कराना भी आवश्यक है। इस प्रणालीके जन्मदाता नित्यानन्द माने जाते हैं।

विवाहके समय भी उपरोक्त तीन प्रभुओंको नैवेद्य दान करना पड़ता है। उस समय भी फौजदार और छड़ीदार उपस्थित हो, वर कन्याको विहित विधानसे माला और सिन्दूर प्रदान कर दक्षिणा ग्रहण करते हैं। इस सम्प्रदायके वैरागी विधवा विवाहको बुरा नहीं मानते किन्तु गृहस्थ उससे घृणा करते हैं।

अन्यान्य धर्म्माचार्य्योंकी भांति चैतन्यके धर्म्म प्रचारका उद्देश्य भी आत्माको मुक्ति दिलाना था। उन्होंने मुक्तिके दो प्रकार बतलाये — ऐश्वर्य्य लाभ किंवा स्वर्ग भोग और बैकुण्ठवास। जो अपने कर्म्मों द्वारा आनन्दमय बैकुण्ठ धाममें श्रीकृष्णके निकट रहनेका अधिकार प्राप्त करते हैं, उन्हें फिर आवागमनके फेरमें नहीं पड़ना पड़ता। वे सालोक्य, सामीप्य, सार्ष्टि और सारूप्य यह चतुर्विध मुक्ति लाभकर परमानन्द पूर्वक अखण्ड सुख भोग करते हैं। चैतन्य स्वामी सायुज्य मुक्तिका प्राधान्य स्वीकार नहीं करते।

इस सम्प्रदायवालोंका साहित्य भण्डार भी अनेकानेक संस्कृत और बङ्ग भाषाके ग्रंथोंसे परिपूर्ण है। यद्यपि चैतन्य, नित्यानन्द और अद्वैतने स्वयं कोई ग्रन्थ नहीं लिखा ; किन्तु रूप और सनातनने अनेक बृहत् ग्रंथोंकी रचनाकर इस अभावको सर्वथा दूर कर दिया। उन्होंने विदग्ध माधव, ललित माधव, उज्वल नीलमणि, दानकेलि कौमुदी, बहुस्तवावलि, अष्टादश लीलाकाण्ड, पद्मावली, गोविन्द विरुदावली, मथुरा माहात्म, नाटक लक्षण, लघुभागवत, भक्तिरसामृतसिन्धु, व्रजविलास वर्णन, गीतावली, वैष्णव तोषिनी हरिभक्तिविलास, भागवतामृत और सिद्धान्त सार प्रभृति ग्रंथोंकी रचना की। चैतन्य स्वामीके अन्यान्य शिष्य और अनुयायियोंने भी भक्ति सिद्धान्त, गोपालचम्पू, उपदेशामृत, मुक्त चरित्र, चैतन्यस्तव, कल्पवृक्ष, आनन्द वृन्दावनचम्पू, चैतन्य चन्द्रोदय, कौस्तुभालङ्कार, आचार्यशतक, गोपी प्रेमामृत, कृष्ण कीर्त्तन, चैतन्य मङ्गल, उपासना चन्द्रामृत, प्रेमभक्ति चन्द्रिका, पाषण्डदलन और चैतन्य भागवत प्रभृति ग्रंथ प्रस्तुत किये। चैतन्य सम्प्रदायवाले इन सबको प्रामाणिक मानते हैं और आदरकी दृष्टिसे देखते हैं।

यह लोग भी अन्यान्य वैष्णवोंकी भाँति गोपीचन्दनका खड़ा तिलक और बाहु प्रभृति अङ्गोंमें राधाकृष्णका नाम अंकित करते हैं और जप माला रखते हैं।

अन्यान्य सम्प्रदायोंकी भाँति यह सम्प्रदाय भी मतमतान्तर और शाखा सम्प्रदायोंसे परिपूर्ण है। शायद किसी अन्य वैष्णव सम्प्रदायके शाखा सम्प्रदायोंकी अपेक्षा इसके शाखा सम्प्रदायोंकी

संख्या कुछ अधिक होगी। विचार करनेपर उनके काय्यों में विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। केवल भिन्न भिन्न मूर्त्तियोंकी भिन्न भिन्न रूपसे उपासना करनेके कारण ही इतनी शाखायें उपस्थित हुई हैं। पाठकोंके हितार्थ हम उनका भी संक्षिप्त विवरण अङ्कित कर देना उचित समझते हैं।

स्पष्टदायक—इस सम्प्रदायवाले गुरुओंका देवत्व और एकाधिपत्य स्वीकार नहीं करते। धर्म विषयमें स्त्रियोंको भी स्वतन्त्र मानते हैं। आश्रमोंमें स्त्री और पुरुष एक साथ ब्रह्मचर्य्य पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। स्त्रियां एक छोटेसे गुच्छेको छोड़कर शेष बालोंको मुड़वा देती हैं। स्त्री और पुरुष दोनों साथ मिलकर विष्णु और चैतन्यकी प्रशंसाके गीत गाते हैं और नृत्य करते हैं। प्रत्येक जातिके गृहस्थ इसमें सम्मिलित हो सकते हैं, किन्तु गुरुत्व पद त्यागियोंको ही दिया जाता है। इस सम्प्रदायसे कोई लाभ हुआ हो तो वह यह है, कि बङ्गालके असूर्य्यम्पश्या नारी समूहमें इन स्त्री प्रचारिकाओं द्वारा कुछ कुछ शिक्षा प्रचार हुआ है। वे प्रत्येक घरमें जा जाकर स्त्रियोंको धर्मोपदेश देना अपना परम कर्त्तव्य समझती हैं।

बाउल—इस सम्प्रायवाले चैतन्य स्वामीको अपने सम्प्रदायका प्रचारक बतलाते हैं, किन्तु वास्तवमें इसका प्रचार किसने किया, यह ठीक नहीं बतलाया जा सकता। यह लोग शरीरको ही राधाकृष्ण और अन्यान्य देवोंका निवास स्थान मानते हैं।

इनके मतानुसार पुरुष और प्रकृति (स्त्री) का प्रेम ही मोक्षका साधन है। अतः बामाचारियोंकी भांति यह प्रकृतिकी साधना करते हैं। एक साधनाका नाम है "चन्द्रभेद"। वे कहते हैं, कि चन्द्र अर्थात् शोणित, शुक्र, मल और मूत्र यह चार पदार्थ पिताके औरस माताके गर्भ हीसे प्राप्त होते हैं अतः इनका परित्याग करना कर्त्तव्य नहीं—पुनः ग्रहण करना चाहिये। इस विधिको वे परम पवित्र मानते हैं। पाठकगण इस परसे स्वयं उनके आचार विचारों का अनुमान कर लें। व्रज उपासना तत्व और नायिका सिद्धि प्रभृति उनके साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं। उनके पठनसे उनके धर्म्मा-नुष्ठानोंका रहस्य जाना जा सकता है।

न्याड़ा—इस सम्प्रदायवाले नित्यानन्दके वीरभद्र नामक पुत्रको अपने सम्प्रदायका प्रचारक बतलाते हैं। बाउल उपासकोंकी भाँति यह भी शरीरको राधाकृष्णका निवास स्थान मानते हैं और प्रकृतिकी साधना करते हैं। इनके मतानुसार व्रत और उपवासों द्वारा शरीरको कष्ट देना और देवसेवा व्यर्थ है। बाउल उपासकों की भाँति जटाजूट और केश रखते हैं तथापि भिक्षाटन द्वारा निर्वाह करते हैं।

सहजी—इस मतवाले श्रीकृष्णको जगतकर्त्ता एवम् मनुष्य मात्रका पति मानते हैं। इनके मतानुसार गुरु और कृष्णमें कोई भेद नहीं। गुरु दो प्रकारके हैं—दीक्षा गुरु और शिक्षा गुरु। दीक्षा गुरुसे शिक्षा गुरुको श्रेष्ठ मानते हैं। सहज साधना इनका

प्रधान धर्मानुष्ठान है। नामाश्रय, मन्त्राश्रय, भावाश्रय, प्रेमाश्रय और रसाश्रय— यह पाँच आश्रय इनकी भजन प्रणालीके अन्तर्गत हैं। इनमें प्रेमाश्रय और रसाश्रय यही दो श्रेष्ठ हैं। इनकी साधना स्त्री ओर पुरुषके शारीरिक मिलन द्वारा होती है। इसीका दूसरा नाम है सहज साधना। यह साधना स्वकीय और परकीय दोनों द्वारा की जा सकती है, किन्तु परकीय रस श्रेष्ठ माना जाता है। प्रत्येक पुरुष अपनेको शिक्षागुरु किंवा कृष्ण और प्रत्यक स्त्री अपनेको राधा मानकर इस साधानामें प्रवृत्त होते हैं। स्त्री प्रत्येक पुरुषको कृष्ण और पुरुष प्रत्येक स्त्रीको राधा मानकर जब चाहे तब उपरोक्त प्रकारकी साधना द्वारा मोक्ष प्राप्तिकी चेष्टा कर सकता है।

गौराङ्ग सेवक—चैतन्य स्वामीके विषयमें एक आख्यायिका प्रचलित है और तदनुसार उनके अनुयायी उन्हें राधाकृष्णका सम्मिलित अवतार मानते हैं। अतः इस मतवाले उन्हें कृष्णसे भी अधिक पूज्य मानते हैं और कहते हैं, कि केवल गौराङ्ग महाप्रभुकी उपासनासे राधा और कृष्ण—दोनोंकी उपासनाका फल मिलता है। अपनी धारणाके अनुसार यह लोग अपने मन्दिरोंमें केवल चैतन्यकी ही प्रतिमा प्रतिष्ठित करते हैं और उसीका विहित विधानसे पूजनादि करते हैं।

दरवेश—कहते हैं, कि सनातन दरवेशका वेश धारण कर काशी पहुंचे थे और वहाँ चैतन्य स्वामीसे साक्षात् कर दीक्षा

ग्रहण की थी। तभीसे इस मतका प्रचार हुआ। इस मतवाले माला धारण करते हैं और प्रकृतिकी आराधना करते हैं। इनके भजनोंमें हिन्दू देवताओंके अतिरिक्त अल्ला, मुहम्मद और खुदा प्रभृति शब्दोंका भी प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। "दरवेश" शब्द भी फारसी भाषाका है अतः प्रतात होता है, कि इस मतका प्रचारक कोई ऐसा मनुष्य था, जिसको इस्लाम धर्मपर भी श्रद्धा थी।

कर्त्ता भक्त—घोषपाड़ा निवासी रामशरणपालने पूर्णचन्द्र नामक एक उदासीनके निकट दीक्षा ग्रहण कर इस मतका प्रचार किया था। यह लोग अपने धर्मगुरुओंको महाशय कहते हैं। दीक्षा देते समय वे अपने शिष्योंको सदाचार पालनका उपदेश देते हैं, किन्तु इस समय उनमें सदाचारका अभाव ही दिखाई देता है। यह लोग जाति भेद और स्पर्श दोष नहीं मानते। पूर्ण-चन्द्र, चैतन्य और रामशरण पालको श्रीकृष्णसे अभिन्न मानते हैं। गुरुओंका देवत्व स्वीकार करते हैं और प्रेम लक्षणा भक्तिको मोक्षका साधन मानते हैं। आरम्भमें इस सम्प्रदायका विशेष प्रचार न था, परन्तु अब धीरे धीरे यह प्रबल हो उठा है। इस समय बङ्गदेशके लाखों मनुष्य इसमें सम्मिलित हैं। यद्यपि यह लोग अपनेको एक मात्र विश्वकर्त्ताका भक्त बतलाते हैं, किन्तु लोकाचारके अनुसार अन्यान्य देवोंकी उपासना करते हुए भी दिखाई देते हैं।

इस सम्प्रदायकी एक विशेषता यह है, कि धर्माचार्य अपने शिष्योंसे कुछ कर ग्रहण करते हैं। वे कहते हैं, कि शरीर ईश्वरका

निवास स्थान है। उसमें जीवात्मा निवास करता है। पराये घरमें बिना कर दिये रहना योग्य नहीं। अतः प्रत्येक मनुष्यको कुछ कर अवश्य देना चाहिये। शिष्यगण गुरुदेवकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करना परम कर्त्तव्य मानते हैं। मरते समय प्रधान धर्माचार्य जिसे चाहे उसे अपना उत्तराधिकारी ठहरा सकता है। स्त्रियाँ भी इस पदको ग्रहण कर सकती हैं। इनके साम्प्रदायिक साहित्यमें ग्रंथोंका अभाव और भजनोंका आधिक्य है।

रामावल्लभी—कृष्ण किंकर, गुण सागर और श्रीनाथ नामक मनुष्योंने रामशरण पालका उपरोक्त मत अमान्य कर इसकी स्थापना की थी। इन लोगोंके मतानुसार सभी देव, सभी धर्म और सभी जातियाँ एक समान हैं। शिवरात्रिके दिन एक ग्राममें यह लोग एक उत्सव करते हैं। वहाँ "परम सत्य" नामक एक वेदी है। उस वेदीपर ईसा, मुहम्मद और नानकको नैवेद्यदान किया जाता है। भगवद्गीता, कुरान और बाइबलका पाठ होता है तथा सर्वजातिके लोग एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करते हैं।

इसी प्रकार साहेब धनी, सहजकर्त्ता भक्त, विश्वासी, जगन्मोहनी, सत्कुली, अनन्तकुली, पागलनाथी, दर्प नारायणी, तिलकदासी और अतिबड़ी प्रभृति अनेक मतमतान्तर बङ्ग और उड़ीसामें प्रचलित हैं, किन्तु उनमें कोई विशेषता न होनेके कारण हम व्यर्थ ही उनका वर्णन कर पाठकोंका समय नष्ट करना उचित नहीं समझते।

कबीर पन्थी.



म० कबीर ।

पृष्ठ संख्या २६५

कबीर पन्थ ।

भारतमें कई धर्म प्रवर्तक ऐसे हुए हैं, जिन्होंने हिन्दू और मुसल्मानोंका धार्मिक भेद भाव दूरकर दोनोंमें ऐक्य स्थापित करनेकी चेष्टा की। इनमें महात्मा कबीरदास सर्व प्रथम थे। उन्होंने समान रूपसे शास्त्र और पण्डित तथा कुरान और मुल्लाओं-का तिरस्कार कर एकेश्वरकी उपासनाका उपदेश दिया।

कबीरका जन्म कहाँ, कब और किस जातिमें हुआ इस विषयमें बड़ा मतभेद है। कोई उन्हें ब्राह्मण पुत्र, कोई विधवा पुत्र और कोई जुलाहेका पुत्र बतलाते हैं। कबीर पंथी कहते हैं, कि काशीके निकटवर्त्ती लहरी सरोवरके तटपर कोई उन्हें नवजात शिशुकी अवस्थामें छोड़ गया था। नूरी नामक जुलाहा उन्हें निराधार देख अपने घर उठा ले गया। उसकी स्त्रीका नाम नीमा था। उसने बड़े प्रेमसे अपने पुत्रकी भाँति उनका प्रतिपालन किया। आगे चलकर वही कबीर के नामसे विख्यात हुए।

कबीरके विषयमें ऐसी ही अनेक आख्यायिकायें प्रचलित हैं, किन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि उनके प्रकृत माता पिता जुलाहे न थे। सम्भवत: किसी ब्राह्मणके पुत्र थे और निराधार अवस्थामें जुलाहे द्वारा प्रतिपालित हुए थे। बड़े होनेपर पालक पिताने उनका विवाह कर दिया और कुछ दिनोंके बाद उनके कमाल नामक एक पुत्र भी हुआ।

कबीरका हृदय बाल्यावस्थासे ही वैराग्यशील था। वे जीवनको

जलबुद्बुद वत् क्षणस्थायी और चपला समान चपल समझते थे। किसी सद्गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त कर जीवन मुक्त होनेकी उन्हें परम लालसा थी। जाँच करनेपर उन्होंने स्वामी रामानन्दका नाम सुना।

हम पहले ही लिख चुके हैं, कि रामानन्द वैष्णव सम्प्रदायके उपदेशक थे। वे पञ्चगङ्गा घाटपर रहते थे और उन दिनों काशीमें जोरोंके साथ धर्म प्रचार करते थे। कबीरने उन्हें अपना गुरु बनाना स्थिर किया। उन्होंने अपनी यह इच्छा वैष्णव साधुओंपर प्रकट की। साधुओंने यह जान कर, कि यह जातिके जुलाहे हैं, उनका तिरस्कार किया और कहा, कि रामानन्द तुम्हें शिष्य बनाना कदापि स्वीकार नहीं करेंगे।

कबीर निराश हो लौट आये और नगरमें भ्रमण करने लगे। उन्होंने रामानन्दसे साक्षात् करनेका एक और ही उपाय खोज निकाला। रामानन्द प्रति दिन प्रातःकाल गङ्गा स्नान करते थे। उसी समय कबीरने उनसे भेंट करना स्थिर किया। दूसरे ही दिन वे घाटके एक सोपान पर जाकर लेट रहे। अन्धकारमें ज्योंही रामानन्द उधर होकर निकले त्योंही कबीरपर उनका पैर पड़ गया। पैर पड़ते ही कबीर इस प्रकार चिल्लाने लगे, मानो उन्हें पदाघातके कारण असह्य वेदना हो रही है। उनकी यह दशा देखकर रामानन्दको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उनकी पीठपर हाथ फिराकर सान्त्वना देते हुए कहा—"बेटा! रामराम कह।"

कबीर यही चाहते थे। उनका मनोरथ फसल हुआ। वे मन

ही मन उन्हें प्रणाम कर अपने घर लौट आये। रामानन्दके उपरोक्त शब्दोंको गुरुमन्त्र मानकर वे राम नामका जप करने लगे। वैष्णवोंकी भाँति उन्होंने माला और तिलक भी धारण किया। लोग यह देखकर विस्मित हुए। कबीर रामानन्दको अपना गुरु कहते थे और उन्हींका नाम लेकर प्रति दिन बाजारमें हरिकीर्त्तन किया करते थे। स्वामी रामानन्दने भी यह बात सुनी। उन्होंने कहा, कि मैंने कबीरको दीक्षा नहीं दी। वह मुझे अपना गुरु नहीं कह सकता। यदि वास्तवमें यह बात ठीक है, तो उसके कीर्त्तन करते समय मुझे सूचना दी जाय, मैं स्वयं सुनूंगा, कि वह मेरे विषयमें क्या कहता है।

एक दिन कबीर बाजारमें हरिकीर्त्तन कर रहे। रामानन्दके आदेशानुसार उनके शिष्योंने उन्हें सूचना दी। रामानन्द चुपचाप वहाँ गये और कबीरकी बातें सुनने लगे। ज्योंही कबीरने उनका नाम ले कीर्त्तन आरम्भ किया त्योंही उन्होंने क्रुद्ध हो अपनी पादुका उनकी ओर फेंकी। पादुका कबीरके कपालमें जा लगी। कबीरने फेंकनेवालेको देख लिया। उनके आनन्दका वारापार न रहा। उन्हें प्रणाम कर वह दूने उत्साह और प्रेमसे हरिकीर्त्तन करने लगे।

अब रामानन्दका धैर्य जाता रहा। एक जुलाहेकी इस धृष्टतासे वह अपना अपमान अनुभव करने लगे। उन्होंने कबीरसे कहा—"मैंने तुझे दीक्षा नहीं दी। व्यर्थ ही तू मेरा नाम बदनाम करता है।"

कबीरने हाथ जोड़कर कहा—"भगवन्! मैं आप हीका शिष्य हूं। सम्भव है, आपको स्मरण न हो। आपने मुझे राम नामका उपदेश दिया था। मैं उसी महामन्त्रका जप करता हूँ। यदि कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करिये।"

इतना कह कबीरने उस दिनकी घटनाका स्मरण दिलाया। बात झूठ न थी। रामानन्दको कबीरकी युक्तिपर हँसी आ गयी। उन्होंने आशीर्वाद दे, उनको अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। तबसे कबीर निश्चिन्त हो, ईश्वर भजन और धर्म प्रचार करने लगे।

कबीरके प्रारम्भिक जीवन सम्बन्धी जो आख्यायिकायें प्रचलित हैं, यह उन्हींका सार है। इससे यह जाना जा सकता है, कि किस प्रकार वे प्रतिपालित हुए और किस प्रकार उन्होंने रामानन्द को अपना गुरु बनाया। किन्तु इनसे उनका समय निर्धारित नहीं किया जा सकता। कबीरपंथी कहते हैं, कि :—

सम्वत बारह सौ पांचमें, ज्ञानी कियो विचार।
काशीमें परगट भयो, शब्द कहो टकसार॥
पन्द्रह सौ औ पांचमें, मगहर कीन्हों गौन।
अगहन सुद एकादशी, मिल्यो पौन सों पौन॥

अर्थात्—कबीर संवत १२०५ में उत्पन्न हुए और सम्वत १५०५ में उनका शरीरान्त हुआ। किन्तु यह बात युक्ति संगत नहीं प्रतीत होती। प्रियदास कृत भक्तमाल—टीका, खोलास-तुलतवारीख और अबुल फजल कृत आईने अकबरी प्रभृति ग्रन्थोंमें कबीर सिकन्दर लोदीके समकालीन बतलाये गये हैं। फिरिश्ताने

भी अपनी तवारीखमें लिखा है, कि सिकन्दर लोदीके राजत्वकालमें धार्मिक विप्लव हुआ था। प्रतीत होता है, कि रामानन्द, कबीर और उनके शिष्योंके धर्म प्रचारको ही लक्ष्य कर यह बात लिखी गई है। ऐतिहासिक ग्रन्थोंको देखनेसे ज्ञात होता है, कि सिकन्दर लोदी संवत १५४४ में सिंहासनारूढ़ हुआ था, अतः कबीरका समय पन्द्रहवीं शताब्दिका उत्तरार्द्ध और सोलहवीं शताब्दिका पूर्वार्द्ध ही मानना उपयुक्त होगा।

सिकन्दर और कबीरके विषयमें एक आख्यायिका भी प्रचलित है। कहते हैं, कि जब प्रचार करते हुए कबीर दिल्ली पहुँचे, तब किसीने सिकन्दरसे कहा, कि यह पाखण्डी है और लोगोंको पाखण्ड पारावारमें डुबो रहा है।

सिकन्दरने उसकी बातपर विश्वास कर कबीरको पकड़ लानेकी आज्ञा प्रदान की। अनुचरोंने उसकी आज्ञा शिरोधार्य कर कबीरको दरबारमें उपस्थित किया। जब उनसे सुलतानको सलाम करनेकी बात कही गई, तब उन्होंने इन्कार किया। इसपर उन्हें मार डालनेकी धमकी दी गयी। कबीरने कहा—"असम्भव! कोई किसीको मार नहीं सकता।"

कबीरकी यह बात सुन सिकन्दरने उन्हें यमुनामें डुबो देनेकी आज्ञा दी। अनुचरोंने उनके हाथ पैर बाँधकर यमुनाके प्रवाहमें फेंक दिया। तत्काल तो कबीर जलराशिमें विलीन हो गये, किन्तु कुछ ही क्षण बाद लोगोंने देखा, कि वे नदीके उस पार विचरण कर रहे हैं। सिकन्दरके अनुचर उन्हें फिर पकड़ लाये। इस बार

उन्होंने कबीरको अग्निमें जला देना चाहा, किन्तु प्रह्लादकी भाँति उनका भी बाल बाँका न हुआ। चिता भस्म पर वे उसी प्रकार बैठे हुए पाये गये जिस प्रकार स्वच्छ शिला खण्डपर समाधिस्थ तपस्वी बैठे रहते हैं।

इसके बाद कबीरपर मदोन्मत्त हाथी छोड़ा गया, किन्तु उन्हें देखकर वह उसी प्रकार भागा जैसे मृगराजको देखकर प्राण बचानेके लिये मृग भागते हैं। यह सब देखकर लोगोंके आश्चर्यका वारापार न रहा। सभी उन्हें सिद्ध पुरुष मानने लगे। सिकन्दरका भी आसन हिल उठा। उसे अपने अनिष्टकी शङ्का हुई। उसने अधिक छेड़ छाड़ करना अनुचित समझ, कबीरसे क्षमा प्रार्थना की और उनके गुणोंकी प्रशंसा कर उन्हें बिदा किया।

इस आख्यायिकासे यह सिद्ध होता है, कि कबीर सिकन्दर लोदीके समकालीन थे। कबीरने लोगोंको धर्मोपदेश देते हुए अपना अधिकांश जीवन काशीमें व्यतीत किया। जब उनका अन्तिम समय समीप आया, तब उन्होंने अपने शिष्यको एकत्र कर कहा, कि अब मैं परलोक जाऊँगा। मैंने एक जुलाहेके यहाँ रहकर कर्मबलसे वैष्णव पद प्राप्त किया। अब इस मिथ्या और अपवित्र शरीरको त्यागना ही उचित है। किन्तु, मैं काशीमें मरना नहीं चाहता। यहाँ मरनेपर तो सभीकी मुक्ति होती है। "जो कबिरा काशी मरे, तो रामहिं कौन निहोर।" कहीं अन्यत्र प्राण त्याग करूँगा। देखूंगा, कि वहाँ मरनेपर मेरी मुक्ति होती है या नहीं।

निदान कबीर अपने कुछ शिष्योंको साथ ले, गोरखपुरके निक-

टवर्त्ती मगर नामक ग्राममें गये और वहीं शिरसे पैर तक एक चद्दर ओढ़, उन्होंने अनन्त निद्राकी गोदमें आत्मसमर्पण किया। कबीरके शिष्य हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। दोनों उनका शव अधिकृत करनेके लिये दौड़ पड़े। हिन्दू उसे जलाना चाहते थे और मुसलमान दफनाना। दोनोंमें झगड़ा होने लगा। किसीने चद्दर उठाकर देखा तो शवके बदले वहां कुछ पुष्प दिखाई पड़े। काशी नरेश वीरसिंहने आधे पुष्प लाकर काशीके मणिकार्णिकाघाट पर उनका अग्नि संस्कार किया और भस्मको एक स्थानपर गाड़कर वहाँ कबीर चौरा बनवाया। अपरार्द्ध पुष्पोंको मुसलमान शिष्योंने वहीं दफनाया और उनके अग्रणी बिजलीखान पठानने उसपर एक समाधि बनवायी। कबीरपन्थी काशीका वह कबीर चौरा और मगरकी समाधि—दोनोंको अपना तीर्थस्थान मानते हैं।

कबीर दयालु, शान्त, परोपकारी, ज्ञानी, वैराग्यशील और निस्पृह थे। यद्यपि रामानन्दको उन्होंने अपना गुरु बनाया था, किन्तु उन्होंने जिन सिद्धान्तोंका प्रचार किया, वे अधिकांश रामानन्दके सिद्धान्तोंसे भिन्न हैं। इसीलिये उनका सम्प्रदाय स्वतन्त्र सम्प्रदाय गिना जाता है। उनके कितने ही सिद्धान्त यदि वैष्णव सम्प्रदायके सिद्धान्तोंसे मिलते जुलते हैं, तो कितनी ही बातें इस्लाम धर्म्मके अनुकूल हैं। इसीलिये हिन्दू और मुसलमान दोनों जातिके मनुष्य उनके शिष्य थे। सम्भव है, कि उन्होंने सबको एकताके सूत्रमें आबद्ध करनेके लिये ही ऐसे सिद्धान्तोंका प्रचार कया हो।

उन्होंने बतलाया कि ईश्वर एक सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक अखण्ड ज्योति स्वरूप है। उसे जाननेके लिये योगाभ्यास, देह-कष्ट, पवित्रता और आत्मज्ञानकी आवश्यकता है। मूर्त्ति पूजा व्यर्थ है। कर्म्मानुसार पुनर्जन्म और फलाफलकी प्राप्ति होती है। ईश्वरका ध्यान ही महान् धर्म्म है। सत्यज्ञानसे ईश्वर पहचाना जा सकता है। गो-ब्राह्मणकी सेवा करना, मांस मदिरा और व्यभि-चारका त्याग करना जीव हिंसासे दूर रहना परम कर्त्तव्य है। संसारमें कोई उच्च या नीच नहीं हैं। हिन्दुओंके परमेश्वर और मुसलमानोंके अल्लाह एक ही हैं। आत्मज्ञान ही मुक्तिका साधन है—इत्यादि।

यही कबीरके सिद्धान्त हैं। उन्होंने इन्हीं बातोंका सर्वत्र प्रचार किया। कबीरपन्थी संसार-शृङ्खलासे निर्मुक्त हो, लौकिक व्यव-हारोंका परित्याग कर, ध्यान मग्न रहना ही परम कर्त्तव्य समझते हैं। वे अन्यान्य वैष्णवोंकी भांति चन्दन किंवा गोपीचन्दनका तिलक करते हैं, किन्तु उसे आवश्यक और नित्य कर्त्तव्य नहीं मानते। कण्ठी धारण करते हैं और जपमाला भी रखते हैं, किन्तु वे इन सब बातोंको बाह्याडम्बर और निरर्थक मानते हैं। कबीरने सदाचार, अन्तशुद्धि और आत्मज्ञानको ही नितान्त आवश्यक बतलाया है। उन्होंने कहा है कि :—

माला फेरत दिन गये, गयो न मनका फेर।
करका मनका छोड़कर, मनका मनका फेर॥
काठ काठ माला करी, तामें डारो सूत।
माल विचारी क्या करे, फेरनहार कपूत॥

कबीर और उनके शिष्योंने सुख निधान, गोरखनाथकी गोष्ठी, रामानन्दकी गोष्ठी, आनन्दसागर, शब्दावली, जङ्गल, बसन्त, होली, रेखता, झूलना, कहार, हिण्डोला, शाखी, रमैंनी और बीजक प्रभृति अनेक छोटे बड़े ग्रंथोंकी रचना की थी। इनमें सुखनिधान, शब्दावली और बीजक प्रधान हैं और उनके पठनसे कबीरके मन्तव्योंका ज्ञान होता है।

कबीरने काशी नरेशको जो उपदेश दिया था, वही बीजकमें संग्रहीत हैं। यह ग्रंथ प्राय: ७०० अध्यायोंमें विभक्त है। सम्प्रति इसके दो संस्करण उपलब्ध हैं। एकमें कुछ बातें अधिक हैं और दूसरेमें कम। कबीरपंथी बड़े संस्करणको ही प्रामाणिक मानते हैं और छोटेको कबीरके एक शिष्यका संग्रह बतलाते हैं। उसमें स्वमतके प्रतिपादनकी अपेक्षा परमतकी निन्दा ही विशेष दृष्टिगोचर होती है। अपने मतके विषयमें यदि कुछ लिखा गया है तो वह इतना गूढ़, क्लिष्ट और अस्पष्ट है, कि सर्वसाधारण उसके पठनसे लाभ नहीं उठा सकते।

शब्दावलीमें कबीरके एक हजार शब्द किंवा वचनोंका संग्रह है। तीसरा प्रधान ग्रंथ है सुख निधान। इसके विषयमें कबीरपंथी कहते हैं, कि कबीरने अपने प्रधान शिष्य धर्मदासको जो उपदेश दिया था, वही श्रुतगोपाल नामक दूसरे शिष्यने अङ्कित कर लिया था। उसी संग्रहको सुख निधान कहते हैं।

सुख निधान द्वारा कबीरपंथियोंके मन्तव्य सरलता पूर्वक जाने जा सकते हैं। वे विश्वस्रष्टा एक मात्र ईश्वरकी सत्ता स्वीकार

करते हैं और उसे वैष्णवोंकी ही भाँति सगुण और साकार मानते हैं। उनके मतानुसार वह सर्व शक्तिमान अनिर्वचनीय परिशुद्ध स्वरूप और दूषण रहित है। वह इच्छानुसार शरीर धारण करता है। संसार शृङ्खलासे मुक्त हो, अन्तः शुद्धि पूर्वक सत्कर्म करनेसे मनुष्य तदाकार हो उसके निकट निवास करता है। यही मुक्ति है। जिस प्रकार बीजमें उत्पादक तत्व विद्यमान रहते हैं उसी प्रकार उसमें भी संसारोत्पत्तिकी शक्ति रहती है। सर्व प्रथम उसकी इच्छासे माया उत्पन्न होती है और वह सरस्वती, लक्ष्मी और उमा नामक तीन कन्याओंको उत्पन्न कर क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेशसे उनका विवाह कर देती है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश मायाके चक्करमें पड़कर संसारके उत्पत्ति, पालन और प्रलयमें प्रवृत्त होते हैं और मायाके आदेशानुसार विविध प्रकारका भ्रमात्मक ज्ञान और भ्रान्तिमूलक क्रियानुष्ठानोंका प्रचार करते हैं।

सुख निधानमें ईश्वर और मायाके विषयमें ऐसा ही वर्णन अङ्कित है। यह अनेक अंशोंमें हिन्दू शास्त्रोंके समान ही है। किन्तु कबीरपंथी, यह मानकर कि मायाने ब्रह्मा, विष्णु और महेशको अपने वश कर रक्खा है—उनकी उपासनाका विरोध करते हैं और मायाको जी भरकर कोसते हैं। वे कहते हैं, कि कबीरने जैसा सत्य ज्ञान प्राप्त किया था, वैसा ही ज्ञान प्रत्येक मनुष्यको प्राप्त करना चाहिये, परन्तु मायाकी प्रपञ्च रचनाके कारण मनुष्योंकी कौन कहे, देवता भी उसे नहीं प्राप्त कर सकते।

इनके मतानुसार जीवात्मा और परमात्मामें कोई भेद नहीं है।

दोष मुक्त होनेपर जीव भी स्वेच्छानुसार देह धारण कर सकता है। अज्ञान हीके कारण जीवको नाना योनिमें भ्रमण करना पड़ता है। स्वर्ग और नरक कोई चीज नहीं हैं। पृथ्वीपरके सुख ही स्वर्ग और दुःख ही नरक है। शरीर जीवका निवास स्थान है। ईश्वरने उसकी रचना की है, अतः उसे नष्ट करना किंवा किसीको किसी प्रकारका दुःख देना नितान्त निन्दनीय है। दया और सत्य यही दो धर्मके मूल हैं।

कबीरपंथी बड़ी छानबीनके बाद किसीको अपना गुरु बनाते हैं। कबीरने उन्हें ताकीद की है, कि गुणदोष जाने बिना किसीको अन्ध श्रद्धाके वशीभूत हो गुरु नहीं बनाना चाहिये। साथ ही शिष्योंके लिये भी निर्दोष होना आवश्यक है। दोष देखनेपर गुरु पहले उसकी भर्त्सना करते हैं। फिर उसका प्रणाम अस्वीकार करते हैं और इतनेपर भी यदि वह दोष मुक्त न हुआ तो वे उसका बहिष्कार करते हैं। उन्हें उसे शारीरिक दण्ड देनेका अधिकार नहीं है।

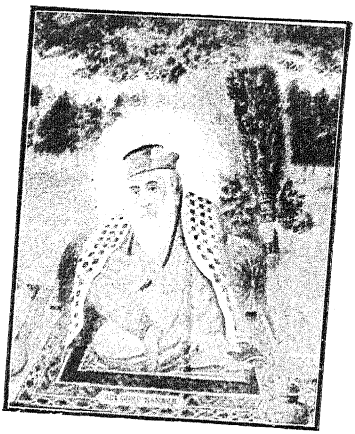
कबीरने हिन्दू और मुसलमानोंको एक ही धर्मकी छत्र छायामें एकत्र करनेका विचार किया था। यद्यपि उन्हें जैसी चाहिये वैसी सफलता नहीं मिल सकी, तथापि उनके मतका जो प्रचार हुआ वह कुछ कम नहीं। भारतमें उसने अपने समान और भी सम्प्रदाय उत्पन्न करनेका श्रेय प्राप्त किया है।

कबीरके श्रुत गोपाल, धर्मदास, भागूदास, जीवनदास, ज्ञानी, साहेबदास, नित्यानन्द प्रभृति बारह प्रधान शिष्य थे। कबीरके बाद प्रत्येकने अपने अपने नामसे स्वतन्त्र मतकी स्थापना की। अतः

समस्त कबीरपंथी बारह शाखाओंमें विभक्त हो गये। सम्प्रति श्रुत गोपालके परम्परागत शिष्य कबीर चौरा, मगरकी समाधि और द्वारिका तथा जगन्नाथ प्रभृति स्थानोंके मठोंके अध्यक्ष हैं। भागूदासके अनुयायी धनौली नामक स्थानमें निवास करते हैं। धर्मदास पहले रामानन्दी वैष्णव थे बादको कबीरके शिष्य हो गये थे। उनके नारायण और चूड़ामणि नामक पुत्रोंने जबलपुरके पास एक ग्राममें अपना मठ स्थापित किया था, किन्तु कालान्तरमें उनका वंश लोप हो गया। जग्गूदासकी गद्दी कटकमें विद्यमान है। जीवन दासने सतनामी मतका प्रचार किया था। साहेबदासके अनुयायी अब भी कटकमें रहते हैं, किन्तु अब वे मूलपंथी कहे जाते हैं। नित्यानन्द और कमलनन्दने कहीं दक्षिण भारतमें अपना मठ स्थापित किया था। कुछ लोग दादूको भी कबीरका शिष्य बतलाते हैं। उसने दादूपंथकी स्थापना की थी।

जो कबीरपंथी कबीर चौराके दर्शनार्थ जाते हैं उन्हें वहाँ भोजन कराया जाता है। इस व्ययको चलानेके लिये बलवन्तसिंह और उनके उत्तराधिकारी चेतसिंहने मासिक वृत्ति निर्धारित कर दी थी। एक बार चेतसिंहने कबीरपंथियोंकी गणना करानेके उद्देश्यसे एक मेला कराया था। उसमें ३५००० कबीरपंथी साधु उपस्थित हुए थे। भारतके मध्यप्रदेश और पश्चिमाञ्चलमें इस सम्प्रदायका विशेष प्रचार है। कबीरपंथी साधु प्रायः शान्त, सत्यप्रिय और निरुपद्रवी होते हैं। अन्यान्य साधुओंकी भाँति न वे दुराग्रही ही होते हैं, न भिक्षाटन ही करते हैं।

सिक्ख सम्प्रदाय.



नानक ।

पृष्ठ संख्या २७७

सिक्ख सम्प्रदाय.

इस धर्मके संस्थापक महात्मा नानकका जन्म ई० स० १४६६ में नानकुचान (पञ्जाब) में हुआ था । वह जातिके क्षत्री थे उनके पिताका नाम कालूराम था । नानकके एक नानकी नामक बहिन भी थी । उसका विवाह सुलतानपुरके जयराम नामक मनुष्यके साथ हुआ था । नानकने फारसी और गणितका ज्ञान प्राप्त किया था । उनका चित्त संसारमें न लगता था । सोच विचार कर उनके पिताने उनको व्यापार व्यवसायमें लगाना स्थिर किया और ४०) रुपये देकर बाला नामक एक सिंधी जाटके साथ व्यापारार्थ परदेश भेजा । रास्तेमें उन्हें संन्यासियोंका एक समूह मिला । उनसे वार्तालाप करनेपर वस्तु मात्रका मिथ्यापन और बस्तीमें रहने तथा संसारके फेरमें पड़नेसे अनेक प्रकारकी चिन्ता और कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है—इत्यादि विषयोंका उन्हें ज्ञान हुआ । नानक वह सभी रुपये उन संन्यासियोंको देने लगे परन्तु उन्होंने लेना स्वीकार न किया । अन्तमें उन रुपयोंका अन्न लाकर उन्होंने सबको खिला दिया और आप खाली हाथ घर लौट आये किन्तु पिताके भयसे एक वृक्षमें छिप रहे ।*

जब पितासे भेट हुई तब उन्होंने रुपयोंके विषयमें पूंछताछ की । नानकने उत्तर दिया, कि आपने मुझे खरा सौदा खरीदनेकी

---

* नानकने जहां उन संन्यासियोंको भोजन कराया था वह स्थान "खरासौदा" के नामसे प्रसिद्ध है ।

आज्ञा दी थी। मैंने उनको धर्म कार्यमें व्ययकर वास्तविक लाभ उठाया है। यह सुन, उनके पिता क्रुद्ध होकर मारने दौड़े परन्तु रायभोराली नामक एक जमीन्दारने उनको बचा लिया। इसके बाद वह अपनी बहिनके पास सुलतानपुर चले गये। वहाँ जयरामने उन्हें सरकारी कोठीपर नौकर रखवा दिया। नानकको संसारपर अनुरक्ति न थी अतः वे अपना विवाह नहीं करते थे, परन्तु बहनोईने आग्रह कर सुलक्षणी नामक स्त्रीसे उनका परिणय करा दिया। इस स्त्रीसे उनके दो पुत्र हुए। एकका नाम श्रीचन्द तथा दूसरेका नाम लक्षणीदास था। इसके बाद बच्चोंको उनकी माता सहित अपने श्वसुरको सौंप, संन्यास ग्रहण कर नानक देशदेशान्तरमें भ्रमण करने लगे।

वह यहांसे अरबस्तान और मक्का मदीना पर्यंत गये, परन्तु यहांके साधु संत और वैरागी तथा फकीरोंके काम देखकर ऊब उठे। वह संन्यास छोड़कर इधर उधर घूमने लगे। कीर्त्तिपुरकी धर्मशालामें पहुंचनेपर उन्हें एक सर्वमान्य धर्मकी स्थापना करनेका विचार हुआ। उनको अपने गहरे अनुभवसे ज्ञात हुआ, कि पृथक पृथक जाति और पृथक पृथक धर्मों में बद्ध होकर लोगोंका पृथक पृथक रहना ठीक नहीं है। देवालयोंमें जाकर मूर्त्ति पूजा और यज्ञादि क्रियाओंके करने तथा ब्राह्मणोंको माल खिलानेसे कोई फल नहीं मिलता। आत्मशुद्धिके बिना मुक्ति प्राप्त हो ही नहीं सकती

इस प्रकार विचार कर वह उपदेश द्वारा धर्म प्रचार करने लगे। उन्होंने बतलाया कि "आत्मा ईश्वरका अंश है। सत्य

बोलना, वेदके ज्ञान काण्डको मानना, ऋतुकालको बचाना, मांस मदिराका त्याग करना और गुरुकी आज्ञाको ईश्वरकी आज्ञा समझना परम कर्त्तव्य है। मूर्ति पूजा असत्य है। ईश्वर अवतार नहीं लेता। श्रुति, स्मृति और पुराणोंको मानना व्यर्थ है। गुरुका लिखा ग्रंथ ही वेद है अतः उसका पूजन उचित है। अधर्मियोंका नाश करनेसे ईश्वर प्रसन्न होता है। ध्यान, धारणा और समाधिसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। यह काया गोविन्दका मन्दिर है अतः जीव हिंसा न करनी चाहिये। उपवास और मिताहारसे शरीरके विकार दूर होते हैं और गोविन्दकी ज्योति दृष्टिगोचर होती है। शुद्ध अन्तःकरणसे ईश्वरोपासना करनी चाहिये। ईश्वर एक ही है। पृथक पृथक धर्म मनुष्य कल्पित हैं। आत्म ज्ञानसे ईश्वरीय तत्वोंका ज्ञान होता है अतएव उसका सम्पादन करना चाहिये। ईश्वरके कृपा पात्र बननेके लिये सत्कार्य और सदाचारका अवलम्बन करना चाहिये। संसार त्याग किंवा वैराग्यकी आवश्यकता नहीं है। जिससे हृदय शान्त हो, जिससे पवित्रता प्राप्त हो, जिससे उदार ईश्वरीय तत्वोंका विकाश हो, वही ज्ञान जीवनका सार है। जिसका हृदय ऐसे ज्ञानसे प्रकाशित हो रहा है, वही सच्चा हिन्दू है और जिसका जीवन पवित्र है, वही सच्चा मुसलमान है।" यही नानकके सिद्धान्त हैं। उन्होंने इनका प्रचार करते हुए सिक्ख धर्मकी स्थापना की। शनैः शनैः उसका प्रचार बढ़ता चला गया। पञ्जाब निवासियोंने इसे जी खोलकर अपनाया।

गुरु नानकके बाद क्रमशः अङ्गद, अमरदास, रामदास तथा

अर्जुन देवने उनका स्थान ग्रहण कर धर्म प्रचारका काम जारी रक्खा। अंगद देवने गुरु नानकके उपदेशादि संग्रहकर आदि ग्रंथ लिखा। अर्जुन देवने एक झीलके बीच मन्दिर बनाया और शहर बसाया। उसीका नाम अमृतसर है।

नानकने अपनी गद्दीका उत्तराधिकारी अपने पुत्रको न बनाकर उसपर एक शिष्यको नियत किया था। उनका उद्देश्य था, कि योग्य और उत्साही कार्यकर्त्ता ही कार्य भार ग्रहण करें, परन्तु रामदासके समयसे वह पैत्रिक सम्पत्ति हो गई। अर्जुनदास मुसलमान शासकों द्वारा मारे गये। उनके बाद उस स्थानको हरगोविन्दने ग्रहण कर शिष्योंकी संख्यामें अच्छी वृद्धि की और उन्हें तलवार पकड़ना सिखलाया। उनके बाद दो गुरु और हुए। नवें गुरु तेगबहादुरको औरङ्गजेबने मुसलमान होनेके लिये वाध्य करना चाहा, परन्तु उन्होंने प्राण दे दिये, धर्म न छोड़ा।

मुसलमानोंके लगातार अन्याय और अत्याचारने इस शान्त धर्मप्रवाहको प्रचण्ड अग्निका रूप दे दिया। अर्जुन देव तथा तेग बहादुरके बलिदानसे वह आग भभक उठी। दशवें गुरु गोविन्दसिंह हुए। उनको अनेक कष्ट सहने पड़े। कई बार मुसलमानोंसे युद्ध हुआ। उनके दो बच्चे निर्दयता पूर्वक धर्म न छोड़नेके कारण दीवारमें चुन दिये गये। फिर भी, वह हताश न हुए और उन्होंने अपना कार्य पूर्ण करके ही छोड़ा। मुसलमानोंको पराजित कर उनके छक्के छुड़ा दिये और सिक्ख धर्मकी जड़ मजबूत कर दी। उन्होंने सिक्ख लोगोंको हथियार बांधना धर्म बतलाया और उन्हें

वीर बना दिया। इसके अतिरिक्त चोटी, दाढ़ी और मूछें रखना, हिन्दू देवालयोंके प्रति द्वेष भाव न रखना, गोहत्या न करना इत्यादि नियम बना कर धर्मको सुव्यवस्थित बना दिया। मुसलमानोंसे लोहा बजाते समय भी उन्होंने शिष्योंको उपदेश देना न छोड़ा। एकेश्वरकी उपासना करना—एक चित्तसे उसकी भक्ति करना, अपने धर्ममें जातिभेद न रखना, सबको समान मान एक पात्र और पंक्तिमें भोजन करना, परस्पर ऐक्य रखना और अपने धर्म बन्धुओंको प्राण समान मानना इत्यादि विषयोंका उपदेश देकर उन्होंने सिक्खोंके हृदयमें नवजीवनका सञ्चार कर दिया और मुसलमानोंके सन्मुख विजय प्राप्त की। परस्पर बन्धुभावसे आलिङ्गन करनेकी श्रेष्ठ शिक्षा प्रदान कर उन्होंने सिक्ख प्रजाके हृदयमें तेजस्विता, बन्धुभाव और युद्ध कुशलताके बीज आरोपित किये, जो आज फले फूले हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

इस धर्ममें भी कितने ही शाखा पंथ हो गये हैं। नानकके पुत्र श्रीचन्दने उदासी पंथकी स्थापना की, किन्तु उनके सिद्धान्त नानकके सिद्धान्तोंसे सर्वथा भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त कूकापंथी, गांजाभक्षी, सुथीग्राही, निर्मल और रामरायी इत्यादि अनेक उपपन्थ हैं। यह लोग कुछ न कुछ भिन्नता रखते हुए नानकके उपदेशको मानते हैं और उनके ग्रंथ साहबको पूजते हैं।❀ इस धर्मके अनुया-

❀ अन्तिम गुरु गोविन्दसिंहने मरते समय कहा था, कि—

आज्ञा भई अकालकी, तभी चलायो पंथ।
सब शिष्यनको हुकुम है, गुरु मानियो ग्रन्थ॥

यियोंकी संख्या २५ लाखके क़रीब हैं। पञ्च+ ककार धारण करते हैं और नानकाना, (नानककी जन्म भूमि) अमृतसर इत्यादिको तीर्थ स्थान मानते हैं। अद्वैत उपासनाकी शुद्ध (खालिस) शिक्षाके कारण इसको खालसा पंथ भी कहते हैं।

मानभाव पंथ।

इस पंथके स्थापकका नाम कृष्ण भट्ट जोशी था। उसके पिताका नाम कुलकरणी गोपालराव पन्त था। वह दक्षिण देशान्तर्गत शेम्ब ग्रामका निवासी था। उसका जन्म ई० स० १०४७ में हुआ था। वह हस्तचातुर्य (जादू) और वेशधारणकी कला भली भाँति जानता था। परंपरागत कुलकरणी और जोशी व्यवसायको अपने एक मित्रको सौंपकर वह कृष्णरूपसे लोगोंको दर्शन देने लगा।

इस बातकी चारों ओर चर्चा होने लगी और अनेकानेक लोग उसके दर्शनार्थ आने लगे। उसका अनुग्रह प्राप्त करनेके लिये उसके निकट लोगोंकी भीड़सी लगी रहती। उसके दैवत्वकी बातें सुन

अर्थात्—अब मेरे बाद कोई भी मनुष्य धर्म्माचार्य न माना जाय। लोग ग्रन्थको ही गुरु समझें।

+ कड़ा, केश, कृपाण, कंघा और कच्छ अर्थात जांघिया।

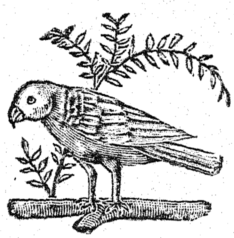
पैंठनाधीश राजा चन्द्रसेनके मन्त्री हेमाद्रिपंतको बड़ा आश्चर्य हुआ। यद्यपि वह गणेश भक्त था, फिर भी उसने कृष्णभट्टको बुला भेजा। कृष्णभट्टने पैंठन जा उनसे भेंट की। हेमाद्रिपंतने उसका कृष्ण स्वरूप देख बड़ा आदर सत्कार कर स्नान और भोजन करनेके लिये प्रार्थना की। परन्तु रहस्योद्‌घाटन हो जानेकी आशङ्का और भयसे उसने अस्वीकार किया। हेमाद्रिपन्तने अपने सेवक द्वारा उसके वस्त्र उतरवा लिये और निरानिर पाखण्ड देख उसे कारागारमें डाल दिया। जो लोग उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने वाले थे, उन्हें भी काले वस्त्र पहना, शिर मुंडा राज्यके बाहर भेज दिया।

इस प्रकार इस पंथकी स्थापना हुई। इसे लोग मानभाव कहते हैं परन्तु इसके माननेवाले इसका नाम "महानुभाव" बतलाते हैं।

इस पंथवाले कृष्णभट्टको कृष्ण मान, उसको मूर्त्तिकी उपासना करते हैं। गुरु दत्तात्रेयका भजन करते हैं और कृष्णकी रास-क्रीड़ादि लीला करते हैं। जीवहिंसासे इन्हें इतनी घृणा है कि इनके गांवमें यदि किसी दिन पशु हत्या होनेवाली हो और वह सुन लें तो सबके सब गांवके बाहर चले जायें। इन लोगोंमें एक ही बार भोजन परोसनेकी प्रथा है।

यह लोग अपने धर्मकी बात दूसरोंको नहीं बतलाते। इनके पुराण ग्रंथ प्रथक लिपिमें हैं। वह लिपि मानभावी दीक्षा लेनेवालों को ही समझाई जाती हैं। इस पंथके पथिक महाराष्ट्र और

विहारमें पाये जाते हैं। इनके आचार्य, महन्त' कहे जाते हैं। रुद्रपुर, कारंज, दरियापुर, फल्टन और पैंठन इन पांच स्थानोंमें इनके मठ हैं। इनके अतिरिक्त नरमठ, नारायण मठ, प्रवरमठ, ऋषि मठ और प्रशांत मठ यह पांच उपमठ भी हैं। एक महन्तके अधीन अनेक मानभाव होते हैं। एक महन्तके समाधिस्थ होनेपर दूसरे महन्तका निर्वाचन किया जाता है। शिष्य समुदाय अपनेमेंसे ही किसीको निर्वाचित कर लेते हैं। उसीको गद्दी मिलती है। महन्तके पास छत्र, चामर, पालकी, मुहर इत्यादि राजचिह्न होते हैं। इस पंथमें गृहस्थाश्रम और संन्यासाश्रम यह दो आश्रम हैं। संन्यासाश्रम वाले भी संन्यासियोंकी कन्यासे विवाह कर सकते हैं।



यहूदी धर्म.



महात्मा मूसा ।

पृष्ठ संख्या २८५

यहूदी धर्म ।

मिश्र देश आर्यावर्त्तके ही लोगोंसे आबाद हुआ था। महाभारतके बाद यहां और वहांका पारस्परिक व्यवहार बन्द हो गया। वहाँके लोग सूर्यकी पूजा और प्रार्थना करते थे। उनके आचार विचार आर्यों के ही समान थे।

ई० सं० पू० सत्रहवीं शताब्दिमें जोसफ़के नेतृत्वमें यहूदियोंका एक दल मेसोपोटामियासे वहाँ जा बसा। वहाँके लोग इन्हें गुलाम बनाकर बड़ी यातना देने लगे। वे चाहते थे कि इनकी उन्नति और संख्यामें वृद्धि न हो, परन्तु जब किसी प्रकार वे सफल-मनोरथ न हुए और उनकी वृद्धि न रुकी तब, वहांके शासकने आज्ञा दी, कि यहूदियोंके बच्चा होते ही वह तुरन्त मार डाला जाय।

यह भयङ्कर आज्ञा कार्यरूपमें परिणत होने लगी और यहूदियोंके सद्यःजात शिशुओंका संहार होने लगा। इसके कुछ ही दिनके बाद अर्थात् ई० सं० पू० १५७१ में इस धर्मके संस्थापक मूसाका जन्म हुआ। 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' इस उक्तिके अनुसार वह बड़े तेजस्वी कान्तिवान और होनहार मालूम देते थे। घरवालों ने मोहवश किसीको उनके जन्मकी सूचना न दी, परन्तु प्राणदण्डके भयसे विचलित हो, उनकी माता उन्हें एक टोकरेमें सुलाकर नदीके तटपर रख आयी। दैवयोगसे अचानक राजकुमारी वहाँ स्नान करने जा पहुँची। उसकी दृष्टि उस बच्चेपर पड़ी। दृष्टि पड़ते ही दयासे उसका हृदय द्रवित हो गया। उसने बच्चेकी

माताको अभय दान दिलाकर ढुंढ़वाया और बच्चेको उसे सौंप दिया। जब वह कुछ बड़ा हुआ तो राजकुमारीने उसे अपने पास रख लिया और पालन पोषण एवम् विद्याभ्यास करवाया।

इस प्रकार हजरत मूसा जब बड़े हुए तो उन्हें यह समाचार ज्ञात हुए। अपनी जातिपर भीषण अत्याचार और दमन होता देखकर उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। परन्तु वे राजबलके सामने कुछ भी न कर सकते थे। एक बार एक यहूदीपर क्रूरता पूर्वक अत्याचार होते देख उनका खून उबल उठा। उन्होंने अत्याचारीको तुरन्त मार डाला। साथ ही राजदण्डकी आशङ्कासे भयभीत हो अरबस्तान चले गये।

मूसाने वहां किसी जादूगरसे मनोरंजन करने वाली अनेक कलायें सीखीं। कुछ वर्षोंके बाद वे पुनः मिश्र गये और वहांके शासकको अपने चमत्कार दिखलाकर प्रसन्न किया। उसने उन्हें धन देना चाहा; किन्तु उन्होंने वह न लेकर यहूदियोंके मिश्र देशसे चले जानेकी आज्ञा प्राप्त कर ली।

इस प्रकार यहूदियोंको बन्धन मुक्त कराकर उन्हें अपने साथ ले, वह अरबस्तान आये और सिनाई पर्वतके समीपवर्ती प्रदेशमें निवास करने लगे। सबके सब यहूदी उनके कृतज्ञ थे और उन्हें अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे देखते थे, इससे लाभान्वित हो हजरत मूसाने पैगम्बर होनेकी घोषणा कर यहूदी धर्मकी स्थापना की। उन्होंने कहा कि मुझे खुदाकी ओरसे फरमान हुआ है, अतः खुदाई पैगाम न मानने वाला दोषी समझा जायगा।

इनके धार्मिक सिद्धान्त क्रिश्चियन धर्मके सिद्धान्तोंसे मिलते जुलते हैं। इनका धर्म ग्रन्थ केबाला है। भारतमें इस धर्मको मानने वालोंकी संख्या करीब १८००० है। ब्रिटिश शासनका जबसे आरम्भ हुआ तबसे यह लोग यहां व्यापारार्थ आ बसे हैं।

इनकी एक शाखाको बेने इसराइल कहते हैं। उसके मूलपुरुष ई० स० ६१४ में अरबस्तानसे भारत आ रहे थे। उन का जहाज नवगामके निकट समुद्रमें तूफान उठनेके कारण नष्ट हो गया। उसमेंसे केवल ७ पुरुष और ७ स्त्रियां जीवित बच सकीं। वे राज्याश्रय प्राप्त कर नवगाममें रहने लगे। उनकी संततिसे उनकी संख्या बहुत बढ़ गई और इस समय समुद्र के तट पर कोकण (महाराष्ट्र) के अनेक ग्रामोंमें वह बसे हुए हैं। यह लोग शिर पर चोटी न रख गुच्छा रखते हैं और हिन्दुस्तानियोंकी जैसी पगड़ियां पहनते हैं। उनमें सुन्नत करते समय प्रथम हिब्रू और फिर हिन्दू नाम रक्खा जाता है। यह लोग अब्राहम, ईसाक और जेकब को मानते हैं।

जरथोस्ती धर्म ।

वेद और ब्राह्मणकालमें व्यापारादिके निमित्त ईरान गये हुए आर्य पारसी* कहलाये। अशांतिके समयमें यहां और वहांका पारस्परिक व्यवहार रुक जानेसे उन्हें जो धर्मज्ञान मिलता था वह बन्द हो गया। अतएव उन्होंने वहांके समय संयोगोंको ध्यानमें लेकर वेदमार्गके अनुसार ऋक्‌वेदके प्रथम+ मन्त्रके आधार पर पृथक धर्मकी स्थापना कर ली।

महात्मा जरथोस्तका जन्म तेहरानके समीपवर्ती रहे नामक

---

* ऋग्वेदमें असुरशब्द १०५ बार आता है। ९० वार वह बलवान पराक्रमी और ऐसे ही भले अर्थों में योजित हुआ है। केवल १५ बार उसका अर्थ होता है—देवके शत्रु। जरथोस्ती धर्म ग्रन्थोंमें देवका अर्थ असुर और असुर (अहुरमझद) का अर्थ देव किया गया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारतके आर्य और ईरानके आर्य पारसी पहले एकही थे और उनके देव भी समान थे। परन्तु पीछेसे फूट हो जानेके कारण भारतके आर्योंने असुर और ईरानके आर्योंने देव शब्दको बुरे अर्थमें योजित किया है। समशुल उल्मा दस्तूर कैकुबाद कहते हैं कि अवेस्ताकी कितनी ही गाथायें और ऋग्वेदकी ऋचाओंमें साम्य पाया जाता है। इससे ज्ञात होता है, कि ईरानके पारसी और भारतके आर्य दोनों एक ही थे परन्तु बादको पृथक पृथक हो गये हैं।

+ वह मंत्र यह है—"अग्निमीड़े पुरोहितंयज्ञस्य देव मृत्विजम्। होतारं रत्न धाततम्" अर्थात सबका हित करनेवाले यज्ञके देवता ऋतुओंको उत्पन्न करनेवाले रत्नोंकी उत्पत्तिके कारण रूप अग्निदेवकी मैं स्तुति करता हूँ।

भारतका धार्मिक इतिहास

जरथोस्ती धर्म.



म० जरथोस्त ।

पृष्ठ संख्या २८८

ग्राममें ई० स० पू० २५३७ में हुआ था। उस समय ईरानमें माजी नामक धर्मवादी पाखण्ड धर्मका उपदेश देते थे। उनके हाथमें शासनाधिकार भी था। महात्मा जरथोस्तने मूर्त्तिपूजा और जादू प्रभृत व्यर्थ कार्य बतलाते हुए उनका विरोध किया और उपदेश देने लगे। उन्होंने प्रथम बाकट्रियामें और बादको ईरान तथा उसके पूर्वीय प्रदेशोंमें अपने मतका प्रचार किया। फिर वे बलख गये और वहांके अनेक लोगोंको अपना अनुयायी बनाया

तीस वर्षकी अवस्थामें वह धर्म पैगाम लेकर ईरानके शहनशाह गुस्तापके दरबारमें गये। शाहनशाहने बड़ी भारी सभा की और सभी मतवादियोंको एकत्रकर उनका धर्मवाद सुना। उसमें महात्मा जरथोस्त विजयी हुए। परन्तु उनसे द्वेष रखने वाले किसी मनुष्यने शाहनशाहको कुछ और ही समझा दिया। अतः उसने जरथोस्तको बन्दी बना लिया। कुछ दिनोंके बाद वह सम्राट किसी रोगसे ग्रसित हो गया और स्वास्थ्य नष्ट हो चला। महात्मा जरस्थोस्तने उसकी चिकित्सा कर उसे आराम पहुंचाया। फलस्वरूप सम्राटने अपना सेवियन धर्म छोड़कर जरथोस्ती धर्मको स्वीकार किया। तबसे इस धर्मका ईरानमें भली भांति प्रचार हुआ।

फिर बाकट्रियाके राजाने भी सेवियन धर्मको अमान्य कर जरथोस्ती धर्मको स्वीकार किया। यह राजा सीथिया राज्यके अधीन था और वहांके राजाको कुछ राजस्व देता था। अब उसने

राजस्व देना बन्द कर दिया और कहला भेजा, कि यदि आप जरस्थोस्ती धर्मको स्वीकार करें तो मैं पूर्ववत राजस्व देता रहूंगा। सीथिया नरेशने यह बात सुन, क्रोधित हो बाकट्रियापर आक्रमण कर दिया और बलख शहरपर अधिकार जमा लिया। उसने महात्मा जरथोस्तको भी उनके ८० शिष्यों सहित मार डाला। परन्तु बाक्ट्रियाके राजाने पुनः सैन्य एकत्र कर सिथियनोंको मार भगाया और अपने राज्यपर अधिकार जमा लिया। फिर उसने जरथोस्ती धर्मकी जड़ मजबूत की।

इस धर्मका प्राचीन ग्रन्थ गाथावाणी है। इसके बाद क्रिया कर्मका ज्ञान देने वाला बन्दीदाद नामक ग्रन्थ रचा गया था। उन ग्रन्थोंमें आचार, विचार, धर्मक्रिया, चालचलन, रीतिरिवाज, कला कौशल इत्यादि पर आर्य ग्रन्थोंके समान ही विवेचन पाया जाता है। जैंद-अवस्तामें इस धर्मके पवित्र लेखों का संग्रह है। गाथावाणीमें युधिष्ठिरके संवतका भी उल्लेख है। पारसी ऊनकी कस्ती* धारण करते हैं और उस समय नवजोत क्रिया करते हैं। यह क्रिया आर्योंके उपनयन संस्कारका ठीक रूपान्तर प्रतीत होती है।

---

* कस्ती यज्ञोपवीतका रूपान्तर है। शोधकोंकी धारणा है, कि मुसलमानोंने आक्रमणकर उन्हें मुसलमान बनानेका प्रबल प्रयत्न किया। धर्म प्राण पारसियोंने जनेऊको छिपाकर धर्म रक्षा की। ज्ञात होता है कि तभीसे उपवीत (कस्ती) को कमरमें बांध रखनेकी प्रथा प्रचलित हुई। वेदकी एक संहितामें कहा गया है, कि वैश्यको ऊनका जनेऊ धारण करना

इस धर्मके सिद्धान्त यह हैं—"परमेश्वर+ एक, अनाद्यंत, निरञ्जन और निराकार है। मूर्तिपूजा व्यर्थ है। अग्निमें हमेशा सुगन्धित द्रव्योंकी आहुति दें, ईश्वरकी स्तुति करना चाहिये। ऊजड़ भूमिको जोतकर उर्वरा बनाना, निर्जल भूमिमें जलका प्रबन्ध करना, अपवित्रता और छूआछूत न रखना, जलको बिना छाने और स्वच्छ किये न पीना, दया रखना, सत्य बोलना, गायों की रक्षा करना और रजस्वला स्त्रीके पास न जाना। कुकर्म और हिंसा करनेवाले तथा आचार बिचार न पालनेवाले पापी हैं। स्नान, शौच, संध्या, पवित्रता, दया, आर्जव, क्षमा और सत्संग अवश्य कर्त्तव्य हैं। इस प्रकार वेदादि शास्त्रोंके अनुरूप क्रियादि कर्मोंसे परिपूर्ण वेद धर्मका शाखा-स्वरूप यह धर्म है।

ईसाकी सातवीं शताब्दिमें मुसलमानोंने ईरानपर आक्रमण किया और उन्हें इस्लाम धर्मानुयायी होनेके लिये विवश किया। अतः उनमेंसे कितने ही लोग स्वधर्म रक्षाके लिये ई० स० ७२१ में इस देशके पश्चिम किनारे संजाण नामक बन्दर पर उतरे।*

चाहिये। पारसी लोग ऊनकी कस्ती धारण करते हैं अतः ज्ञात होता है कि यह लोग वैश्य वर्णके हैं।

+ भारतमें रहनेवाले आर्य कल्पनामें बुतपरस्त हो गये इसलिये उनके तिरस्कारार्थ इस प्रकार विपरीत धर्म परिभाषाकी योजनाकी हो, ऐसा प्रतीत होता है।

* यह लोग अपने साथ ईरानसे अग्नि लेते आये थे। उसको सर्व प्रथम ऊदवाड़ाके आतिश बहराममें स्थापना की। बादको नवसारी,

इस समयके पारसी उन्हींके वंशज हैं। यह लोग शिक्षित, समय संयोगानुसार आचरण करनेवाले, उदार, गुणग्राही, दयालु और प्रतिभाशाली होते हैं। इनकी संख्या करीब एक लाख है। इन पर पाश्चात्या शिक्षाका प्रभाव इतना अधिक पड़ गया है, कि यह वेशमें यूरोपियन जैसे हो गये हैं।

इस्लाम धर्म।

इस धर्मके स्थापक हजरत मुहम्मदका जन्म ई० स०५७० में अरबस्तानके मक्का शहरमें हुआ था। वह कोरेश वंशकी खतीजा नामक धनवान स्त्रीके यहां नौकर थे। एक बार उन्हें कार्यवश बसरा जाना पड़ा। वहां बाहिरी नामक एक ईसाई साधुसे उनकी भेंट हो गई। उसका उपदेश सुनकर मुहम्मदका मन मूर्ति पूजासे उठ गया। यद्यपि वह पढ़े लिखे न थे फिर भी

सूरत इत्यादि स्थानोंमें मन्दिर बनाकर वहां भी वैसाही किया। यहीं इनके तीर्थस्थल है। संजाणके राणाने पारसियोंसे एकरारनामा लिखाकर उन्हें अपने राज्यमें रहनेकी आज्ञा दी थी। बड़ौदा संग्रह स्थानमें वह अब भी सुरक्षित है। आतिश बहरामके कुण्डकी अग्नि कभी बुझने नहीं पाती और पुराने मंदिरसे लाकर ही नये मंदिरमें स्थापित की जाती है। उन मंदिरोंको अगियारी भी कहते हैं।

जो कुछ देखते, सुनते और जान लेते, वह याद रखते थे। बसरा से लौटकर उन्होंने खतीजासे विवाह कर लिया। यद्यपि खतीजाकी ४० और उनकी अवस्था २८ ही बरसकी थी। पर यह विवाह हो गया। उस समय अरबस्तान अनेक जातिके लोगोंका अखाड़ा बन रहा था। उनमें धर्म-विषयक बड़ी गड़बड़ मची हुई थी। स्वार्थ बढ़ गया था। बलवान निर्बलोंपर अत्याचार करते थे। स्त्री पुरुष नग्नावस्थामें विचरण किया करते थे और किसी प्रकारके आचार विचारोंका वहां पालन न होता था। यह देखकर हजरतको घृणा उत्पन्न हुई और उन्होंने ई० स० ६१६ में नवीन धर्मकी स्थापनाका निश्चय किया।

उन्होंने अपने कार्यका श्रीगणेश अपने घरसे ही किया। सर्व प्रथम अपनी स्त्रीसे कहा, कि खुदाका जेब्रियल फिरिश्ता मुझसे कह गया है, कि मूर्त्ति पूजा झूठ है। तू लोगोंको सत्य धर्मका उपदेश दे। अत: मैं तुम्हें अपनी शिष्या बनाना चाहता हूं। स्त्रीने उनकी बात मान ली और मूर्त्ति पूजाका त्याग किया। फिर उन्होंने अपने पुत्र पुत्रियोंको, गुलाम जैयादको, चचा अबुतालेबके पुत्र अलीको और अपनी जातिके मुखिया अबुबकरको भी समझा बुझाकर अपने धर्मकी दीक्षा दी। इसी प्रकार उपदेश और प्रयत्न द्वारा कुछ और अनुयायी भी उन्हें मिल गये। इन सबोंमें १६ प्रधान और अच्छे लड़ाके थे। वे अन्त तक उनका साथ देते रहे और उन्हींकी सहायतासे उनका पक्ष प्रबल हो पाया।

इतने समय तक वह चुपचाप काम करते थे और अपनी समस्त

गतिविधि गुप्त रखते थे। परन्तु ज्यों ही अनुयायियोंकी संख्या बढ़ी और कुछ सहायक मिले त्योंही वह खुले मैदान काम करने लगे। उन्होंने अपने आपको पैगम्बर बतलाया और मूर्त्ति पूजाकी निन्दा आरम्भ की। उनकी बातोंसे अप्रसन्न हो, वहांके लोगोंने एक दिन उन्हें मारनेका प्रयत्न किया, परन्तु अबुतालेबने आकर बचा लिया। उन्होंने इसका जरा भी ख्याल न कर अपने कार्यको जारी रक्खा। एक दिन वह अपने साथियोंको साथ ले निःसंकोच काबा मन्दिरमें गये और वहांकी मूर्त्तिकी निन्दा करने लगे। उनका यह साहस देख, मूर्तिपूजक क्रुद्ध हो गये। उन्होंने उनपर आक्रमण कर प्रहारोंसे उन्हें आहत कर दिया। हजरत मुहम्मद घबरा गये परन्तु अबुबकरने सहायता कर उन्हें बचा लिया। इसी प्रकार उनके कार्यमें अनेक विघ्न-बाधायें डाली गईं। लोगोंने अनेक प्रयत्न किये कि हजरत उपदेश देना बन्द कर दें, परन्तु उन्होंने किसीकी एक न सुनी और अपने कर्त्तव्य-पथपर दृढ़ रहे। शनैः शनैः उनके अनुयायियोंकी संख्यामें वृद्धि भी होने लगी।

मुहम्मदके अनुयायियोंपर जब कोरेश बहुत अत्याचार करने लगे तब उन्होंने ८२ पुरुष और १८ स्त्रियोंको एबीसिनिया भेज दिया। बादको उमर नामक एक प्रतिष्ठित, बहादुर और गण्य-मान्य मनुष्यको इस्लाम मतका स्वीकार करते देख, कोरेश लोगोंके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने इस मतको माननेवालोंसे असह-योग कर उनके साथका सभी व्यवहार बन्द कर दिया। इस साल अबुतालेब और खतीजा बीबीका शरीरान्त हुआ। जब

महम्मदको इस बातका विश्वास हो गया, कि अत्याचारियोंने मुझे मार डालनेका दृढ़ निश्चय कर लिया है, तब उन्होंने मक्का छोड़ देना ही उचित समझा। ई० स० ६२२ में वह मदीना चले गये, तबसे हिजरी सम्वत गिना जाने लगा।

मदीना जाकर हजरतने विचार किया कि सरलता पूर्वक धर्म-बोध करनेसे इस देशकी जङ्गली और आवेश पूर्ण स्वभाववाली प्रजा नहीं मान सकती, अतः लोकरुचिके अनुकूल धर्मका प्रचार करना चाहिये। इस बाद वह दूसरा तरीका काममें लाने लगे। उन्होंने कहा कि "लोगोंको बलात् इस्लाम धर्ममें दीक्षित करनेका खुदाई फरमान हुआ है, अतः हमें इस धर्मके प्रचारार्थ बल प्रयोग भी करना चाहिये। ऐसा करनेमें जिसका प्राण जायगा, खुदा उसे जन्नत देगा। उनकी यह युक्ति पूर्णरूपसे सफल हुई। लूट और मारकाट करनेकी आदतवाले लड़ाकू अरबोंको यह आज्ञा भली मालूम हुई और वह इस्लामकी दीक्षा लेने लगे। पैगम्बरने सबको शस्त्रास्त्रसे सज्जित कर कोरेश व्यापारियोंके दल, जो ऊँटोंपर माल लादे लिये जा रहे थे, लुटवा लिये। इससे एक पंथ दो काज हुए। पहलेके अत्याचारोंका बदला लिया गया और अरबोंको उनके स्वभावानुसार धर्मके बहाने लूट और मारकाट करनेका अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार अरबोंको उत्साहित करनेसे मुहम्मदके अनुयायियोंकी संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती चली गई। हताश न हो, कठिनाइयोंका सामना करते हुए, समय संयोगोंका विचार कर, लोकरुचिके अनुकूल उपदेश दे, अरबस्तानकी जङ्गली

प्रजाको, एकेश्वर बादकी छत्र छायामें एकत्र कर एक ही सूत्रमें बांधनेके लिये हजरत साहब धन्यवादके पात्र हैं।

इसके बाद इस्लाम मतानुयायियोंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गयी और मुहम्मद साहबने मक्काके शासक आबुसोफियानको युद्धमें पराजित कर भयकी घनघोरघटा दूर कर दी। अब वे निश्चिन्त हो मदीनामें रहने लगे और निम्न लिखित सिद्धान्तोंका प्रचार करने लगे।

"सर्वव्यापक खुदा एक ही है। वह निरञ्जन, निराकार, अद्वैत और ज्योति स्वरूप है। वह अवतार नहीं लेता। खुदाने आत्माको उत्पन्न किया है। आत्मासे अंतःकरण, अन्तःकरणसे काया और कायासे सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। अतः सृष्टिका उत्पति कारण खुदाका नूर है। यह नूर सब जगह चमकता है और उसीके प्रतापसे सारे व्यवहार चलते हैं। खुदाको प्रसन्न रखनेके लिये पवित्रता, शुद्धता, सत्य और नेकी चाहिये। मुहम्मद खुदाका संदेश लानेवाला (पैगम्बर) है। कुरानके फरमानपर चलनेवालेको स्वर्ग की प्राप्ति होती है। खुदाको न माननेवाले, मूर्त्ति-पूजक काफिर हैं, उनको येनकेनप्रकारेण स्वधर्मानुयायी बनानेसे पुण्य होता है। पुनर्जन्म नहीं है, परन्तु कयामतके रोज खुदा पापपुण्यका हिसाब लेगा, तब इस्लाम धर्मवालोंको स्वर्ग और काफिरोंको नरक मिलेगा। सत्य बोलना, मादक द्रव्योंसे दूर रहना, चोरी, खून, व्यभिचार और अन्याय न करना, व्याज न खाना, दिनमें पांचवार नमाज पढ़ना, दान देना और रोजे रखना इत्यादि इस्लाम धर्मके

कर्त्तव्य कर्म हैं। उन्होंने इनका बड़े जोरोंसे प्रचार किया। उनके बाद उनकी गद्दीपर बैठनेवाले खलीफाओंने भी धर्म प्रचारका काम ज्योंका त्यों जारी रक्खा।

इस धर्मवाले मूर्त्ति पूजाके कट्टर विरोधी हैं, परन्तु कितने ही ताजिया बनाकर उसे नैवेद्य दान करते हैं। कब्र या दरगाहमें, पुष्प, गन्ध, दीप इत्यादिसे पूजाकर चद्दर, नारियल अथवा मिठाई भी चढ़ाते हैं। मक्कामें जमजम नामक कुएका जल पवित्र मानकर वहांसे ले आते हैं और उसका आचमन करते हैं। काबातुल्लाके मन्दिरकी ओर दृष्टि रखकर नमाज पढ़ते हैं। जब मक्के हज्ज करने जाते हैं, तो उस मन्दिरकी प्रदक्षिणा करते हैं और वहांके एक काले पत्थरको पाक मानकर उसे भक्तिपूर्वक सात बार चूमते हैं। इस धर्ममें किसी जाति अथवा धर्मके लोग सम्मिलित हो सकते हैं।

इस सम्प्रदायके अनुयायी, शिया और सुन्नी नामक दो प्रधान शाखाओंमें विभक्त हैं। इनके अतिरिक्त वहाबी, हनफी, सूफी इत्यादि और भी अनेक शाखायें* हैं, किन्तु यह सभी कुरान और मुहम्मद साहबका आधिपत्य स्वीकार करते हैं।

---

*१—दाऊदी बहोरा—यमन निवासी मौलवी अबदुल्ला ई० स० १०७० में खंबात (गुजरात) गये और लोगोंको समझा बुझाकर वहां इस पन्थ की स्थापना की। अधिकांश ब्राह्मणोंने इसको स्वीकार किया। कहते हैं कि इस पंथमें दीक्षित होनेवाले ब्राह्मणोंके उपवीतोंका वजन आठ मन नव सेर हुआ था! इन लोगोंपर मुल्लाओंका अधिकार है और वह अबदुल्लाके वंशज हैं। इस समय उनकी गद्दी सूरतमें है। गुजरातके सुप्रसिद्ध

मुहम्मद साहबके कासिम और इब्राहिम नामक दो पुत्र, जेनेब, रुकइया, आकोबाम और फातमा नामक चार कन्यायें तथा अली नामक एक भतीजा था। दोनों पुत्र बाल्यावस्थामें ही गत हो गये थे, अतः उनका उत्तराधिकारी अली ही था। किन्तु उनका शरीरान्त होनेपर अबुबकर और उमर नामक उनके श्वसुरोंने उनके स्थानपर अधिकार जमा लिया। उमरने अपनी ओरसे उसमानको खलीफा बनाया। बादको उन दोनों इमामोंमें वैमनस्य हो गया। अबुबकरके

राजा सिद्धराजके दो मंत्रियोंने इस पन्थको स्वीकार किया था। उनमेंसे एककी कब्र उमरेठ और दूसरेकी गलियाकोटमें है। यह लोग उनको पवित्र मान पुष्पगंधादिसे पूजाकर उसपर नारियल चढ़ाते हैं। हज्ज करनेके लिये मक्का मदीना और करबला जाते हैं। जमजम कुएँका पानी पवित्र मानकर ले आते हैं। ताजिया नहीं बनाते। कुरानको मानते हैं। मुसलमानको छोड़ किसीके हाथका पानी भी नहीं पीते। दुर्व्यसनसे दूर रहते हैं। बीड़ी तक नहीं पीते। पुनर्लग्न करते हैं और संसारी झगड़ोंका निपटारा अपने धर्माचार्यके पास ही करा लेते हैं। चाहे जिस जातिकी स्त्री उनका मत मान ले, वह उसके साथ विवाह कर सकते हैं। इसमें भी नागपुरी नामक एक पेटा पन्थ है।

(२) इमली पन्थ—इस पंथमें तुगा जातिके लोग सम्मिलित हैं और मुरादाबाद जिलेमें पाये जाते हैं।

(३) मेधाविया—इसकी स्थापना ईसाकी चौदहवीं शताब्दिमें हुई थी। पाल्हनपुरके नवाब इसी पंथके अनुयायी हैं।

(४) मोरेसलाम—इसमें धर्म भ्रष्ट हिंदू संमिलित हैं। पुराण और कुरान दोनोंको मानते हैं।

पुत्रने अलीकी सहायता प्राप्तकर उसमानको युद्धमें पराजित किया और अलीको अपनी ओरसे खलीफा बनाया। तबसे यह सम्प्रदाय शिया और सुन्नी—इन दो भेदोंमें हो गया। शिया अलीको खलीफा मानते हैं और सुन्नी नहीं मानते—यही दोनोंमें अन्तर हैं।

पुराणोंकी भाँति इस सम्प्रदायमें भी कुछ ग्रंथ हैं। उनमें पीर, पैगम्बर और फकीरोंके अलौकिक जीवन वृत्तान्त अङ्कित हैं। उनका

---

(५) अबासी—इस पंथके माननेवाले काश्मीरमें पाये जाते हैं। इसके संस्थापकका नाम अबासी था। इन लोगोंकी धारणा है, कि अग्नि, वायु, जल और खाक इन चार तत्वोंसे मनुष्य उत्पन्न होता है। चारों का मूल खुदा है परंतु वह कुछ भी नहीं देखता। कयामत नहीं है। मांस खाना बुरा है। इस पंथवालोंको जरथोस्ती 'काफिर मुतमक' कहते हैं। गुप्त धर्मानुष्ठान करते हैं। राजे आबाद नामक ग्रन्थ जो, काश्मीर निवासी शीदाब नामक मनुष्यने ई० स० १६३१ में बनाया था, उसे यह लोग अपना धर्मग्रन्थ मानते हैं।

(६) इस्माइली (आगाखानी)—ईरानके राजवंशी सदरुद्दीन नामक पुरुषने ईसाकी तेरहवीं शताब्दिमें सिंध आकर इस पंथकी स्थापना की थी। उनके वंशज आगाखानके नामसे प्रसिद्ध हैं। भाटिया जातिके धर्मभ्रष्ट लोग जिनको खोजा कहते हैं, इसी पथके पथिक हैं। उनके सिद्धांतोंका ग्रंथ गुप्त लिपिमें है। उसे वह किसीको देखने और सुनने तक नहीं देते।

(७) पीराना पंथका वृत्तांत पृथक दिया गया है।

इनके अतिरिक्त महोदीश, वहाबी हनफी, सूफी, बाबी इत्यादि मिलाकर करीब ७३ शाखायें गिनी गई हैं।

पठन पाठन श्रेयस्कर माना जाता है। स्वर्गको जन्नत और नरकको दोजख कहते हैं। परमेश्वरको अल्ला, हकताला, मौला, खुदा और करीम प्रभृति नामोंसे सम्बोधित करते हैं। कुरानका दूसरा नाम किताब मजीद किंवा कलामुल्ला भी है।

इस सम्प्रदायवालोंका मूल मन्त्र कलमा है। प्रत्येक मनुष्यको इस्लाम धर्मकी दीक्षा देते समय वह पढ़ाया जाता है। यथा :—

अशहदो अन्लाइलाहा इल्लल्ला मोहम्मदुन रसूलल्लाः।

अर्थात्—स्वीकार करता हूं, कि ईश्वर भिन्न और कोई देव नहीं है और महम्मद उसका पैगम्बर (सन्देश लानेवाला) है।

इसी प्रकार प्रत्येक शुभ कार्य करते समय "बिसमिल्ला रहमाने रहीम" (परम दयालु परमेश्वरको अर्पण है) यह शब्द कहे जाते हैं। वास्तवमें कलमाका पूर्वार्द्ध "एको ब्रह्मद्वितीयो नास्ति" इस सूत्रका अनुवाद और अर्पण हिन्दुओंकी समर्पण विधिका अनुकरण है।

ई० स० ७१२ में इस्लाम मतावलम्बी महमूद कासिमने भारतके सिन्ध प्रदेश पर आक्रमण किया। परन्तु उसे सफलता न मिली। दशवीं शताब्दिमें महमूद गजनवीने आक्रमण किये और अनेक मन्दिरोंका नाश कर अगणित धन लूट ले गया। इसके बाद यहांके क्षत्रिय राजाओंकी पारस्परिक फूटके कारण शहाबुद्दीन गोरी लाभान्वित हुआ। उसने दिल्लीके अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज चौहान

को मारकर दिल्लीके सिंहासनपर अधिकार जमा लिया और शासन करनेके लिये एक सूबेदार नियत किया। गोरी राज्यके निर्बल हो जानेपर वह स्वातन्त्र हो गया और तबसे भारतमें मुसलमानी राज्यकी स्थापना हुई। इनके राजत्वकालमें अनेक हिन्दुओंको मुसलमान होना पड़ा। भारतमें इस धर्मको माननेवालोंकी संख्या करीब सात करोड़ है।

विवाहमें वेश्याओंका नाच, बाल-विवाह, मृत्यु-प्रसंगपर रोना कूटना, परदेश गमन निषेध, चन्द्र दर्शन, स्त्रियोंकी परदेनशीनी, शिवकी स्तुति करते समय बम् बम् कहकर गाल बजाना प्रभृति हिन्दुओंकी अनेक प्रथायें इनके संसर्गसे प्रचलित हुई हैं।

पीराना पन्थ।

ई० स० १४४६ में गुजरातके लेउवाकुर्मी काशी जानेको निकले। अहमदाबादके पास गरमथा ग्राममें एक रात्रिको वह ठहर गये। उस समय वहां एक इमामशाह नामक फकीर रहता था। उसने उन अज्ञान यात्रियोंको समझाया कि आप व्यर्थ ही काशी जा रहे हैं यदि मेरा उपदेश सुनो तो बिना काशी गये ही काशी जानेका फल प्राप्त हो सकता है। जिन लोगोंको उसकी बातपर विश्वास न हुआ वे काशी चले गये, शेषने वहीं उसके कथनको मान गङ्गा स्नानका फल प्राप्त किया! इस प्रकार जो यात्री उसके पन्थमें प्रविष्ट हुए वह और उनके वंशज पीराना पन्थी अथवा मतिया पन्थी कहलाये।

इस मतकी सभी बातें गुप्त रक्खी जाती हैं। उनके सभी धर्म-ग्रंथ हस्त लिखित हैं। अन्य मतावलम्बी मनुष्योंको दिखाने और पढ़ानेके लिये प्रतिबन्ध किया गया है। उनको इसके लिये खास प्रकारकी शपथ करनी पड़ती है। जो लोग इस धर्मपर अपनी आस्था सिद्ध करते हैं वह अधिकारी माने जाते हैं, और उन्हींके कानमें चुपचाप धर्मतत्व फूंक दिये जाते हैं!

इस मतमें आशा दिलाई गई है कि कल्कि अवतार धारण कर स्वयं इमामशाह ईश्वर रूपमें आकर दुःख सागरसे मनुष्योंका उद्धार करेंगे। इस धर्मवाले प्रत्येक गुरुवारके दिन और रमजान

महीने भर रोजा रखते हैं। जिस प्रकार हिन्दू लोग देव मूर्त्तिको मानते हैं उसी प्रकार वह ताजिया और कब्रको मानते हैं। यद्यपि वे स्वयं ताजिया नहीं बनाते किन्तु उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। चन्द्र द्वितीयाको पवित्र मानते हैं और होली, अक्षय तृतीया, दीपावली इत्यादि हिन्दुओंके त्योहार भी मनाते हैं। मृत मनुष्यकी हिन्दुओंकी भांति कुछ क्रिया भी करते हैं और जाति बन्धुओंको भोजन भी कराते हैं। ताड़ी, दारू, मत्स्य, मांस, और मादक वस्तुओंसे दूर रहते हैं। बीड़ी, गांजा, भांग और हींग तकका उपयोग नहीं करते। शवको गाड़ देते हैं। इस मतमें मुसलमान भी हैं, परन्तु उपरोक्त हिन्दू अनुयायी सुन्नत नहीं कराते और दाढ़ी भी नहीं रखते। साथ ही ब्राह्मणोंसे भी वह क्रिया कर्मादि नहीं कराते।

इस मतकी पीराना, भाभेराम और सिनोर इन तीन स्थानोंपर गद्दियां हैं। वहां उनके धर्माचार्य रहते हैं। वह गेरुवा वस्त्र धारण करते है और संसारका त्याग करते हैं। धर्म गुरुको यह लोग "काका" कहते हैं। इस मतमें कुरमी और मच्छीमार तथा कुछ मुसलमान भी सम्मिलित हैं। सूरत, खानदेश, बुरहानपुर, बड़ौदा और खम्बातके अतिरिक्त कच्छ और काठियावाड़के भी किसी किसी भागमें ये पाये जाते हैं।

क्रिश्चियन धर्म ।

इस धर्मके स्थापक महात्मा जेसस क्राइस्ट (ईशू ख्रीस्त) का जन्म ता० २५ दिसम्बरको जेरुसलमके पास बथलियम ग्राममें हुआ था । इनकी माताका नाम मरियम था और उनका विवाह जोसफ नामक एक यहूदी बढ़ईके साथ हुआ था । परन्तु उन्हें ईश्वर कृपासे कुमारिका अवस्थामें ही गर्भ रह गया था और उसीसे ईशू भूमिष्ट हुए थे ।

ईशू तेरह ॐ वर्षकी अवस्थामें कितने ही व्यापारियोंके साथ सिन्ध आये और उनका आर्य लोगोंसे संसर्ग हुआ । उन्होंने जगन्नाथ गृह और बनारस इत्यादि स्थानोंमें भ्रमण कर ब्राह्मणों द्वारा धर्मज्ञान प्राप्त किया और बौद्धोंके नालिन्द+ नामक प्रसिद्ध विद्यालयोंमें भी अध्ययन किया । ४४ वर्षकी अवस्थामें वह जूडिया गये और वहां उपदेश देना आरम्भ किया । उस समय वहांके राजा और प्रजा सभी यहूदी धर्म पालन करते थे । राजाका नाम पाइलेट था । उसे ईशूका यह काम पसन्द न आया । उनपर चोरोंमें सम्मिलित होनेका दोषारोपण किया गया और अभियोग प्रमाणित कर क्राससे मार डालनेकी सजा दी गई । तदनुसार लकड़ीके क्रासपर कीलोंसे जड़कर निर्दयता पूर्वक उनके प्राण ले लिये गये और उनका शव भूमिमें गाड़ दिया गया ।

ॐ देखो लाइट आफ दी ईस्ट, मार्च सन १८९५

+ इस विद्यालयकी पाठ्य पद्धति अर्वाचीन गुरु कुलोंके समान थी ।

क्रिश्चियन धर्म।



जेसस क्राइस्ट।

पृष्ठ संख्या २०४

इस धर्मकी मुख्य पुस्तक बाइबिल × है। उसमें सृष्टिकी उत्पत्ति, मनुष्योत्पति और ईशूकी जीवन-घटनाओंका चमत्कार पूर्ण वर्णन अङ्कित है। इन सबको छोड़ हम केवल उनके धर्म सिद्धान्तोंकी ओर लक्ष देना चाहते हैं। "परमेश्वर एक और निरञ्जन, निराकार, ज्योतिःस्वरूप है। ईशूको परमेश्वरका पुत्र मान उनके चमत्कारोंको सत्य मानना चाहिये। खुदाकी बन्दगी करना बाइबिलको सत्य मानना, सत्य बोलना और चोरी आदि कुकर्म न करने चाहिये। अन्य प्राणियोंकी आत्मा मनुष्यकी आत्माके समान श्रेष्ठ नहीं है। वह सभी जीव मनुष्यके लिये ही उत्पन्न किये गये हैं अतएव मनुष्यको छोड़ अन्य जीवोंको मारनेमें पाप नहीं है। ईशू क़यामतके रोज परमेश्वरके पास जायगा और स्वधर्मी लोगोंकी रक्षा करेगा, उस समय अन्य लोगोंको सजा होगी। ईशू मरकर पुनः जीवित हुए हैं और उनका पवित्र भूत विद्यमान है। ईशू, उनके पिता अर्थात् परमेश्वर और उनका भूत-यह तीनों एक ही हैं। पुनर्जन्म नहीं है। धर्म, कर्म और मूर्तिको माननेवाले नरकाधिकारी होते हैं। प्रभुके पुत्र ईशूने मनुष्योंके उद्धारार्थ अवतार ले धर्मों-

---

× ईशूके बाद उनके शिष्योंने यहूदी धर्म ग्रन्थोंके आधारपर बन्दगी करने, सन्मार्गपर चलने और ईश्वरीय भेदोंके सम्बन्धमें लेख एकत्र किये। उसमें सेंट पाल और सेंट मात्थ्युने अपनी ओरसे वृद्धिकर बाइबिलकी रचना की। जेकालियटका कथन है, गीता, वेद और पुराणोंके आधारपर बाइबिलकी रचना हुई है। क्राइस्ट और कृष्णके नामोंमें साम्य देखकर उन दोनोंको एक सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है।

पदेश दिया और लोक कल्याणके लिये प्राणकी आहुति दी, अतः उनकी ही भक्ति सबको तारनेवाली है। उसी प्रकार लोक कल्याणके लिये सबको आत्मबलिदानकी इच्छा और परस्पर भ्रातृ भाव रखना चाहिये। इससे ईश्वर प्रसाद किंवा मुक्तिकी प्राप्ति होती है। इन सिद्धान्तोंको मान लेनेसे सर्वज्ञता प्राप्त होती है। फिर मनुष्यको और ज्ञान प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं रहती इत्यादि।"

महात्मा ईशूकी मृत्युके बाद उनका कार्यभार धर्माचार्य पोपने ग्रहण किय। ई० स० ३१२ पर्यंत बड़े कष्ट और परिश्रमसे वह धर्म प्रचार करते रहे। शनैः शनैः वहांके शासकोंने उस धर्मका स्वीकार किया। अतः उसकी जड़ मजबूत हुई। क्रिश्चियन धर्ममें मूर्ति पूजाका पूर्ण निषेध होनेपर भी वह ईशू और मेरीकी प्रतिमाओंका पूजन कराते थे। ई० स० ७५४ में ३३८ तक बिशपोंने एक सम्मेलनकर निश्चय किया, कि मूर्ति पूजा धर्म विरुद्ध है अतः यह बन्द होना चाहिये। युरोपके ६ नरेशोंने शासनाधिकारके बलसे उस प्रस्तावको कार्यरूपमें परिणत करनेका प्रयत्न किया, परन्तु इस बीचमें पोपोंका पक्ष इतना प्रबल हो गया था, कि वह कृतकार्य न हो सके। पश्चिम युरोपके मूर्ख लोग मूर्ति पूजनमें अत्यन्त दृढ़ थे, अतः उन्होंने उस प्रस्तावका जोरोंसे विरोध किया और रोमके पोपकी सरदारीमें लेओ राजाके विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। फल यह हुआ, कि इटालीकी राजसत्ताका अन्त हुआ और पोपशाहीका प्रारम्भ हुआ। पोपकी शक्ति दिन प्रति दिन बढ़ती गयी और वह इतने प्रबल हो गये, कि राजा महाराजाओंको दण्ड देना, उन्हें

पदच्युत करना इत्यादि अधिकार उनके हाथमें हो गये। युरोपमें उस समय अन्ध श्रद्धाका साम्राज्य था। अतः राजा प्रजा सभी पोपको ईश्वरपुत्र ईशूका प्रतिनिधि मान, उन्हें सन्तुष्ट रखना परम कर्त्तव्य एवम् मुक्तिका साधन समझते थे।

ई० स० १५१७ में मार्टिन ल्यूथरने पोपके स्वार्थ पूर्ण अनाचारोंके विरुद्ध हो, उनके सामर्थ्यपर शङ्का प्रकट की। उसने सिद्ध कर दिया कि केवल जबानी जमाखर्चसे पोप महापातकोंसे मुक्ति दिला सकते हैं—यह मानना निरानिर पाखण्ड है। वह अपने पक्षको प्रबल बनानेके लिये आन्दोलन करने लगा। पोपने १५२० में ल्यूथरके कथनका खण्डन करते हुए उसको धर्म भ्रष्ट बतलाया और उसे जाति बहिष्कृत करनेके लिये आज्ञा पत्र निकाला। बहादुर ल्यूथरने विटेम्बर्गके बाजारमें हजारों मनुष्योंके सन्मुख पोपकी मुहर छापवाला वह आज्ञा पत्र जला दिया और निर्भयता पूर्वक अपने आन्दोलनको जारी रक्खा। उसने पोपके स्वार्थ पूर्ण नियमोंको एकत्र कर पुस्तकाकार प्रकाशित किया और उनपर टीका टिप्पणी करते हुए बतलाया, कि वह प्रजाके लिये किस प्रकार हानिकारक हैं। अन्तमें लोगोंकी आंखें खुलीं और ल्यूथर मतका प्रचार होने लगा। उसकी गतिको रोकनेके लिये सन् १५२९ में एक महान सभा जर्मनीमें की गयी। उसमें निश्चय हुआ कि लोगोंको दूसरी सभा होने तक राह देखनी चाहिये, उसके पूर्व अपने विचारोंमें वह परिवर्तन न आने दें! ल्यूथर और उनके शिष्योंने इसका विरोध किया। तबसे वह प्रोटेस्टण्ट विरोधी

कहलाये। ल्यूथरने अपना आन्दोलन जारी रक्खा। उसके अनुयायियोंकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती गई। दोनों दलोंका वैमनस्य भी बढ़ता ही गया, पोप ल्यूथरके अनुयायियोंको कड़ी नजरसे देखने लगे और उनको कष्ट देनेके लिये अपने अधिकार* तथा उसूलोंका उपयोग करने लगे।

---

* पोपके अधिकारोंकी रक्षा करनेके लिये इन्टविजीशन कोर्टोंकी स्थापना हुई थी। फ्रांस, स्पेन, नदर्लैण्ड इत्यादि स्थानोंमें उनका अस्तित्व था। वह इन्हें पवित्र कार्यालय (होली आफिस) कहते थे। पोपका विरोध करनेवाले याहुनी और ल्यूथर मतवालोंको वहां सजा दी जाती थी। स्पेनके ऐसे न्यायालयमें सन १४८१ से १७८१ तक ३१९१२ को जीवित जला देनेकी, प्रत्यक्ष न मिल सकनेके कारण १७६५९ के पुतले बनाकर जलानेकी और २९१४५० को सपरिश्रम कारावासकी सजायें दी गई थीं। पाठक अनुमान करें कि ऐसे ही अन्य न्यायालयोंमें कितने मनुष्योंको सजायें दी गयी होंगी। इस समय कहीं भी ऐसे न्यायालयोंका अस्तित्व नहीं है परन्तु जहां रोमनकेथोलिक धर्मका प्राबल्य है वहां धर्मके नामपर कष्ट देनेकी प्रथा अद्यापि प्रचलित है। Love thy neighbour as thy brother (पड़ोसीको भी भाईके समान समझो) बाइबिलके इस भ्रातृभाव पूर्ण उपदेशके प्रचारक पोपोंकी यह नीति कृति है! मुसलमानोंने भी अपने राज्य कालमें एक हाथमें कुरान और दूसरेमें तलवार ले, दो मेंसे एकको शिर झुकानेके लिये हिन्दूओंको वाध्य किया था। उनके धर्म ग्रन्थोंके जलाने तथा उनसे एक विशेष प्रकारका राजस्व (जजिया) लेनेका वर्णन इतिहास ग्रन्थोंमें पाया जाता है, परन्तु आत्मवत सर्व भूतेषु माननेवाली आर्य प्रजाने धर्मके निमित्त किसी समयमें किसी पर अत्याचार करनेकी इच्छा भी नहीं की।

धर्मके नामपर इस भाँति अत्याचार होनेवाले समयमें भी ग्रीक भाषाके प्राचीन ग्रंथोंका सर्वत्र प्रचार हुआ। विज्ञान शास्त्रके आविष्कार हुए और समुद्रयान द्वारा विदेश यात्रा होने लगी। विदेशीय लोगोंके संसर्गसे उन्होंने अनेक बातें सीखीं और उनमें स्वतन्त्र विचारके बुद्धिमान लोग उत्पन्न हुए। ल्यूथर मतका प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ता गया। फलतः सत्रहवीं शताब्दिमें पोपकी शक्तिका ह्रास हुआ। तबसे इस धर्मके तीन भाग हो गये। (१) प्रोटेस्टेंट पोपको न माननेवाले—इनकी संख्या क़रीब १० करोड़ है (२) रोमनकेथोलिक—पोपको माननेवाले यह लोग क़रीब सवा पन्द्रह करोड़ हैं (३) ग्रीक—यह लोग करीब ७५ लाख हैं। इन पन्थोंमें भी करीब २५० पेटा पन्थ है।

ईसाकी १५ वीं शताब्दिमें इस धर्मवालोंका आगमन इस देशमें हुआ। यहां उनकी संख्या २६ लाखके करीब है। इस धर्मके उपदेशकोंने दूर दूर जा, परिश्रम पूर्वक जङ्गली मानी जानेवाली अनेक जातियोंको उपदेश दे, स्वमतानुयायी और सभ्य बनानेका प्रयत्न किया है। प्रत्येक भाषामें बाइबिलका अनुवाद प्रकाशित कर नाम मात्रके मूल्यपर बेंचते हुए धर्म प्रचार किया है। इस देशमें मुक्ति फौज और आयरिश प्रेसबिटेशन नामक संस्थायें तन मन धनसे धर्म प्रचार कर रही हैं, यह हमारे विज्ञ पाठकोंसे छिपा न होगा।

इलाही मत ।

—:○:—

विख्यात मुगल सम्राट अकबर धर्मकी चर्चा ध्यान पूर्वक श्रवण करते थे, अतएव उन्हें स्वधर्मकी सत्यतापर आशङ्का उत्पन्न हुई। धर्म पार्थक्यके कारण हिन्दू और मुसलमानोंमें परस्पर विरोध भी दृष्टिगोचर होता था, उसे दूर करनेके लिये उन्हें एक नवीन पंथ स्थापित करनेकी इच्छा हुई और तदनुसार हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई और यहूदी प्रभृति धर्मों के सिद्धान्त सम्मिलित कर ई० स० १५७९ में उसने इलाही मतकी स्थापना की। उसमें जाति-बन्धन न रखकर सबको सम्मिलित होनेकी स्वतन्त्रता दी गयी और उसके धर्म सिद्धान्त इस प्रकार थे—"परमेश्वर एक ही है। उसकी मानसिक पूजा करनी चाहिये, परन्तु निर्बल हृदयके मनुष्योंके लिये कुछ क्रिया या साधन आवश्यक हैं, अतः उन्हें प्राचीन आर्यों की भाँति ईश्वरके प्रताप-दर्शक सूर्य किंवा अग्निकी पूजा करनी चाहिये और उन्हें केवल ईश्वरीय शक्ति सूचक उसके चिह्न स्वरूप मानने चाहियें, ईश्वर स्वरूप नहीं। अपनी विवेक बुद्धिसे स्वयं जो ज्ञान प्राप्त किया जा सके, तदनुसार भक्ति करनी चाहिये। पारलौकिक कल्याण साधनके लिये बुरे मनोविकारोंपर अंकुश रखना चाहिये और मनुष्य जातिका हित हो, ऐसे काम करने चाहियें। किसी मनुष्य द्वारा निश्चित किये हुए धर्मके आधारपर न चलना चाहिये। क्योंकि दुर्गुणोंके वश रहना और भूलें करना, यह मनुष्यका

इलाही मत.



सम्राट अकबर।

पृष्ठ संख्या २१०

स्वाभाविक गुण हैं। पुरोहित, गुरु किंवा सार्वजनिक भक्ति अनावश्यक है। किसी प्रकारका आहार अभक्ष्य नहीं है परन्तु उपवास करना और जितेन्द्रिय रहना आवश्यक है, क्योंकि इनसे मानसिक उन्नति होती है। इसके अतिरिक्त "सलाम आलेकुम" (आप शान्त रहें) के बदले "अल्लाहो अकबर" (अल्ला सबसे बड़ा है) कहनेकी प्रथा प्रचलित की और उसके उत्तरमें 'जल्ल ज लालहु' (उसका प्रकाश प्रकट हो) यह कहना उचित बतलाया। हिन्दू और मुसलमानोंका धर्म एक ही है। यह सिद्ध करनेके लिये एक विद्वानसे फारसी और संस्कृतकी खीचड़ी भाषामें एक अल्लो-पनिषद् भी तैयार कराया।

इस प्रकार अकबरने अपने मतकी स्थापना की, परन्तु उसे मान्य करने लिये किसीको बलात्कार किंवा प्रलोभन द्वारा विवश करना उन्होंने हेय समझा। अतएव कुछ खुशामदी लोगोंको छोड़ विशेष लोगोंने इसका स्वीकार न किया। इसके अतिरिक्त हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इस पंथके विरुद्ध थे अतः अकबरकी जीवन-समाप्तिके साथ ही यह भी समाप्त हो गया।

खीजड़ा किंवा प्रणामी पन्थ ।

इस पंथके स्थापक देवचन्द और प्राणनाथ थे। देवचन्दका जन्म उमरकोट (सिन्ध) में सं० १६५८ में हुआ था। यह जातिके कायस्थ थे। इनके पिताका नाम मनु और माताका नाम कुंवरबाई था, वे पुष्टि मार्गके अनुयायी थे। ग्यारह वर्षकी अवस्थामें देव-चन्दजी देव-सेवामें प्रीति करने लगे। एक समय उनके मनमें कुछ उलझन पैदा हो गयी। उन्होंने जगत क्या है, परमात्मा कैसा है और कहाँ रहता है—इत्यादि बातोंका पता लगाना आव-श्यक समझा और तदर्थ देशाटन करना निश्चित किया। उमरकोटके राजाकी बारातमें लालदास नामक उसका मन्त्री भी कच्छ जा रहा था। वह उसके साथ वहां गये। उस समय जो जो मत पंथ वहां प्रचलित थे, उनका निरीक्षण किया। परन्तु किसी प्रकार भी उनके मनका समाधान न हुआ। उन्होंने संन्यास ग्रहणकर शास्त्रोंका अनुशीलन आरम्भ किया। फिर भी वह कुछ निश्चय न कर सके। भुजनिवासी हरिदासकी प्रेम भक्ति देख, वह भी परमानन्द स्वरूपको प्राप्त करनेकी आशा कर जप तप करने लगे परन्तु इससे भी उन्हें शान्ति न मिली। वहांसे वह जयनगर गये और श्यामसुन्दरके मन्दिरमें कानजी भट्टके साथ रहकर जप तप और ध्यान करने लगे। वहां गांगजी सेठ और प्राणनाथसे सम्वत १६७५ में उनकी मित्रता हो गयी। प्राणनाथ जयनगरके दीवान

पुत्र थे। सम्वत १६१० में वे धवलपुर राज्यके किसी उच्च पदपर नियत हुए। वहां वह अपनी उच्च कोटिकी राजनीतिके कारण प्रजाका प्रेम सम्पादन करनेमें सफल हुए। बादको देवचन्द भी वहाँ गये और उपदेशादिसे प्रेम-भक्तिका प्रचार कर इस पन्थकी स्थापना की।

इस पंथमें प्राणनाथ भी सम्मिलित हुए और उनके प्रयत्नसे अनेक लोग इसके अनुयायी हुए। देवचन्दके स्वर्गवासी होनेपर उनका स्थान प्राणनाथने ग्रहण किया और धर्म प्रचारका काम जारी रक्खा। उनके उपदेशसे काठियावाड़, गुजरात और उत्तर भारतमें भी इसका प्रचार हुआ। अब भी बुन्देलखण्डमें इसके अनुयायी पाये जाते हैं।

यह लोग अपने पंथको प्राणनाथी कहते हैं। इस पंथवालोंने वैष्णव और इस्लाम धर्मके मूलतत्व ग्रहण किये हैं। इसमें मुसलमान भी सम्मिलित हो सकते हैं। स्नान, शौचादिसे पवित्र रह, श्रीकृष्णके बाल स्वरूपका ध्यान करते हैं। मूर्तिको नहीं मानते। तुलसीकी माला धारण करते हैं और वैष्णव धर्मवालोंकी भाँति खड़ा तिलक खींच कर बीचमें कुंकुमकी बिन्दी लगाते हैं। कुलीयम स्वरूप नामक प्राणनाथ रचित ग्रंथको पवित्र मान मन्दिरोंमें उसकी पूजा करते हैं। इस पंथके साधु योग और आत्मज्ञानमें कुशल होते हैं। इनके आचार्य त्यागी होते हैं। इस पंथको चाकला किंवा मेराज (महाराज) पंथ भी कहते हैं।

सन्मार्गपर लानेका जो काम किया वह सवथा सराहनीय है। इस धर्मके अनुशासनका मुख्य ग्रंथ शिक्षापत्री* है। इसमें २१२ श्लोक हैं। पंथानुयायी उसे स्वामी सहजानन्दका लिखा हुआ बतलाते हैं।

इस पंथके अनुयायी साधु और गृहस्थ इन दो भागोंमें विभक्त हैं। यदि ब्राह्मण संसारका त्याग करता है तो वह ब्रह्मचारी कहलाता है और ऐसा ही करनेपर बनिया, राजपूत, पाटीदार इत्यादि साधु कहे जाते हैं। यदि अन्य जातिके लोग त्यागी होकर उनमें सम्मिलित होना चाहते हैं, तो वह शस्त्रपाणि बनाकर साधु सेवा तथा मन्दिरोंकी रक्षा करनेके कार्यपर नियत किये जाते हैं। यह लोग "पाला" कहे जाते हैं। साधु और संन्यासी गेरुवा वस्त्र धारण करते हैं और पाला सफेद वस्त्र पहनते हैं। ब्रह्मचारी दाढ़ी मूंछ नहीं रखते। शिखा, सूत्र और तुलसीकी दोहरी कण्ठी धारण करते हैं। साधु और पाला भी जनेऊको छोड़ कण्ठी चोटी आदि रखते हैं। साधु, पाला और ब्रह्मचारी इन सबोंको ब्रह्मचर्यका पालन करना होता है। किसीको संन्यासकी दीक्षा नहीं दी जाती।

इस सम्प्रदायके मन्दिरोंमें स्त्री पुरुषोंका स्पर्श न हो ऐसा प्रबन्ध किया गया है। कहीं कहीं तो पृथक पृथक मन्दिरोंकी योजना की गई है। आचार्य उन्हीं स्त्रियोंसे सम्भाषण करते हैं जो उनके किसी व्यक्तिगत सम्बन्धमें बद्ध होती है अर्थात् जिनके जन्म मरणपर स्नान सूतक पालन करना पड़ता है। वह स्त्रियोंको चरण स्पर्श भी नहीं

---

* आमोद निवासी एक ब्राह्मणकी रचना बतलाई जाती है।

करने देते। भूल चूकसे किसी स्त्रीके वस्त्रका छोर भी छू जानेपर वह उस दिन निराहार रहकर उसका प्रायश्चित्त करते हैं। वे स्वयं किसी स्त्रीको मन्त्रोपदेश नहीं देते, परन्तु उनकी पत्नियाँ उनकी आज्ञासे स्त्रियोंको मन्त्रोपदेश देती हैं। आचार्योंकी स्त्रियाँ भी स्वजनोंके अतिरिक्त किसी परपुरुषसे नहीं बोलतीं और परदेमें रहती हैं।

इस पंथवाले अपने पंथवालोंको सत्सङ्गी तथा अन्योंको कुसङ्गी कहते हैं, स्वामी सहजानन्दको कृष्णका अवतार मानते हैं, पुष्टि मार्गकी भांति इसमें भी मूर्त्ति पूजादिकी व्यवस्था की गयी है। भक्तिसे मोक्ष मानते हैं। भक्ति भी पुष्टि मार्गके समान ही है परन्तु उसमें रासलीला इत्यादि शृङ्गारिक भावनायें नहीं रक्खी गईं। इस सम्प्रदायमें प्रत्येक जातिके लोग सम्मिलित हैं। अनुयायियोंकी संख्या करीब ढाई लाख है। इनकी मुख्य गद्दियाँ गढड़ा, अहमदाबाद और बड़तालमें हैं। इस सम्प्रदायवाले कुंकुमकी विन्दी युक्त खड़ा तिलक करते हैं और गोलदानेवाली तुलसीकी माला धारण करते हैं।

यह सम्प्रदाय हरिकृष्ण, बलराम, और पुरुषोत्तम इन तीन धर्माचार्य्योंके कारण तीन शाखाओंमें विभक्त हो गया है। इन शाखाओंके सिद्धान्त इस पंथके सिद्धान्तोंसे मिलते जुलते हैं।

राधास्वामी सम्प्रदाय.

इस मतके संस्थापकका जन्म सं० १८१८ में आगरेमें हुआ था। वह स्वामीजीके नामसे प्रसिद्ध हैं। जातिके क्षत्री थे। उन्होंने किसीको गुरु नही बनाया। सन १८७८ में उनका देहान्त हुआ था। उनकी समाधि स्वामी-बाग, आगरेमें है। उसे इस सम्प्रदायवाले पवित्र तीर्थ मानते हैं।

"कबीर धारा अगमकी, सतगुरु देहि लिखाय। उलटि ताहि सुमिरन करो, स्वामी सङ्ग मिलाय" इस साखीके आधारपर इस मतकी स्थापना हुई हो, ऐसा प्रतीत होता है। धारा शब्दको पलट कर उसमें स्वामी शब्द मिलानेसे राधास्वामी होता है। उसीके स्मरणका इस मतमें उपदेश दिया जाता है। परमात्मा सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, आनन्दमय और चैतन्य शक्ति प्रभव है। परमात्मामें उस चैतन्य शक्तिका सदा विकाश होता रहता है। उसका अध्यात्म नाम धारा है। आदि धाराका उच्चारण राधा है और उसके उद्गम शब्दका उच्चारण स्वामी है। अतः राधास्वामी यह परमात्माका नाम है, कृष्णका नहीं। यह धारा ही अध्यात्म तत्वोंका मूल है और उसीसे समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई है। इस सम्प्रदायवालोंने सृष्टिके तीन विभाग माने हैं (१) दयालु देश (२) ब्रह्मांड (३) पिंड। इन तीनोंका उनके धर्म ग्रन्थोंमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वह योग मार्गके मूल तत्वोंसे बिलकुल मिलता जुलता है। इसी मार्गके द्वारा जीव

योगसाधनसे राधास्वामी धाम (मोक्ष) तक पहुंचता है। सृष्टिमें अधर्म किंवा दुष्टताकी वृद्धि होनेपर परमात्मा अवतार ग्रहण करता है। यही इस सम्प्रदायवालोंके सिद्धान्त हैं।

इन लोगोंने मुक्तिके तीन साधन माने हैं (१) राधास्वामी नाम-का स्मरण (२) राधास्वामी रूपका ध्यान (३) आत्मधारा शब्दका श्रवण। प्रथम साधन प्रसिद्ध है। दूसरे साधनमें सत्यङ्गको मुख्य और गुरुको संत माना है। उनके उपदेशको श्रवण करना, उनको मालायें पहिनाकर आपसमें बांट लेना, अन्य पदार्थोंको भी गुरुका प्रसाद बनाकर पवित्र बनाना और बांट लेना, गुरुकी जूंठन गुरुके वस्त्र और गुरुके पादार्ध्यको पवित्र मान, सादर काममें लाना उसके अन्तर्गत है। अनुयायीगण गुरुके चरणमें मस्तक रख प्रणाम भी करते हैं। तीसरा साधन गुरुके नेत्रोंकी ओर देखना और भक्ति पूर्वक आत्म शक्ति द्योतक भजन गाना है। इस सम्प्रदायमें सम्मिलित होते ही गुरु इन तीन साधनोंका रहस्य समझाते हैं और वह रहस्य अन्य लोगोंको न बतला कर गुप्त रखनेका उपदेश देते हैं।

इस सम्प्रदायमें जातिभेद नहीं है। विनय, क्षमा, शान्ति इत्यादि गुणोंका पालन और मांस तथा मादक द्रव्योंका त्याग, इत्यादि विषयोंका गुरु उपदेश देते हैं। इस मतवाले सतसङ्गी कहलाते हैं। कोई भी मनुष्य गृहस्थाश्रम छोड़ कर किंवा जो मनुष्य अपना जीवननिर्वाह न कर सकता हो और राधास्वामी मतके अनुष्ठानमें ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहता हो, किंवा जो पहलेसे ही

किसी मतका साधु हो और वह इसमें सम्मिलित होना चाहता हो, उसे इस सम्प्रदायवाले साधु वर्गमें सम्मिलित कर लेते हैं।

साधुओंके लिये ११ नियम निश्चित किये गये हैं (१) व्यर्थ भ्रमण न करना (२) कहीं जाना हो तो सत्संगकी आज्ञा प्राप्त करके जाना (३) बाहर जाते समय छपा हुआ आज्ञापत्र प्राप्त करना चाहिये। (४) कहीं किसीसे रुपया पैसा न लेना चाहिये (५) सत्संगी लोग अपने यहां निमन्त्रित करें तो केवल मार्गव्यय और भोजन ही ग्रहण करना चाहिये (६) प्रतिदिन सत्संगमें सम्मिलित होना चाहिये (७) सत्संग विषयक कार्य करने चाहिये (८) *

* * * *

(९) परोपकारके निमित्त ही बाहर जाना चाहिये अन्यथा नहीं (१०) युवक और तरुण कुमारिकाओंसे दूर रहना चाहिये (११) गेरुवा वस्त्र धारण करने चाहिये। इन नियमोंके अनुसार आचरण करनेवाले साधु कहलाते हैं। यदि कोई साधु दोसे अधिक अपराध करता है, तो वह साधु समुदायसे निकाल दिया जाता है। वृद्ध स्त्रियां चाहें तो साधु हो सकती हैं। सभी साधुओंके भोजनादिकका प्रबन्ध सत्संगकी ओरसे किया जाता है, अतः उन्हें भिक्षा माँगनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इसका विशेष प्रचार युक्त प्रदेशमें है।

अन्यान्य शाखा सम्प्रदाय।

किसी भी धर्म सम्प्रदाय किंवा मत पंथमें मतभेद होते ही उसके अनुयायियोंने उसमें कुछ रूपान्तर कर अथवा किसीने दोचार मतपंथोंके तत्वोंको एकत्र कर, किसीने विष्ण या शिवके सहस्रा-वधि नामोंमेंसे किसी एकको प्रधान मान कर, किसीने किसी विख्यात भक्तके नामसे, तो किसीने "उदर निमित्तं धृतबहु वेषा" इस नीतिके अनुसार किसी नवीन विषयका प्रतिपादन न कर केवल नाम मात्रके लिये पेटा पन्थोंकी स्थापना की। इस समय छोटे छोटे अनेक मतपन्थ दृष्टि गोचर होते हैं। उन सबोंका विवरण प्राप्त कर यथोचित वर्णन करना बहुत ही कठिन है। फिर भी जो कुछ विवरण मिल सका, उसे संक्षिप्त रूपमें लिख देना हम उचित समझते हैं।

रयदासी-रामानन्दके रयदास नामक एक शिष्यने इसकी स्थापन ाकी थी। वह जातिका चमार था अतः उसके मतका विशेष प्रचार न हो पाया। सिक्खोंके आदि ग्रन्थमें उसके कुछ वचन उद्धृत हैं, किन्तु उसमें उसका नाम रविदास बतलाया गया है। भक्तमालमें उसका चमत्कार पूर्ण जीवन वृत्तान्त अङ्कित है। अन्य ग्रन्थोंमें कहीं कोई उल्लेख नहीं है। चित्तौड़की झाली रानीने उसके निकट दीक्षा ग्रहण की थी। इस मतवाले भी वैष्णवोंकी भांति विष्णु पूजा और नामस्मरणको मोक्षका साधन मानते हैं।

सेनपन्थी—रामानन्दके सेन नामक एक नापित शिष्य

ने इसकी स्थापना की थी। बन्धगढ़के नरेशने उसे अपना गुरु बनाया था। भक्तमालमें तद्विषयक एक आख्यायिका अङ्कित हैं। इस समय इस सम्प्रदायका केवल नाम ही शेष है।

खाकी—यह मत भी रामानन्दी सम्प्रदायका शाखा-स्वरूप माना जाता है। कृष्णदासके कील नामक शिष्यने इसकी स्थापना की थी। किन्तु भक्तमाल प्रभृति ग्रन्थोंमें इसका विवरण नहीं पाया जाता, अतः यह आधुनिक प्रतीत होता है। यह लोग वैष्णव होते हुए भी समस्त पौराणिक देवताओंको पूजते हैं और शैवोंकी भांति जटाजूट रखते हैं। भिक्षाटन ही इनकी जीविका है। कमरमें मूंजकी डोरी और कौपीन धारण करते हैं। कोई कोई वस्त्र भी पहनते हैं। अयोध्याके निकट हनुमानगढ़ीमें इनका प्रधान मठ है। यह लोग अपना अधिकांश जीवय देशाटनमें व्यतीत करते हैं। भस्म लेपन इनका आवश्यक कर्म है। इसी लिये खाकी कहे जाते हैं।

मलूकदासी—मलूकदासने इसकी स्थापना की थी। वे रामानन्दके परम्परागत शिष्य थे। कोई कोई उन्हें कीलका शिष्य बतलाते हैं। यह लोग रामचन्द्रकी उपासना करते हैं और ललाटमें रक्तवर्णकी रेखा अङ्कित करते हैं। भगवद्गीताको प्रामाणिक मानते हैं और गृहस्थ गुरुओंके निकट दीक्षा ग्रहण करते हैं। करामानिकपुर (जिला इलाहाबाद) में इस मतवालोंका प्रधान मठ है। वह स्थान मलूकदासकी जन्मभूमि बतलाया जाता है। उसके अतिरिक्त काशी, इलाहाबाद, लखनऊ, अयोध्या, वृन्दाबन और

जगन्नाथमें भी इनके मठ हैं। लखनऊका मठ आधुनिक है। जगन्नाथमें मलूकदासका शरीरान्त हुआ था अतः वहांके मठका गौरव कुछ विशेष माना जाता है। मलूकदासके निम्नाङ्कित वचन जन समाजमें अति प्रसिद्ध हैं।

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दासमलूका यों कहे, सबका दाता राम॥

दादूपंथी-अहमदाबादके दादू नामक साधुने इस पंथकी स्थापना की थी। दादू कबीरके परम्परागत शिष्य बतलाये जाते हैं। कबीरके कमाल, कमालके जमाल, जमालके विमल, विमलके बुढ्ढन और बुढ्ढनके शिष्य दादू थे। दादू बारह वर्षकी अवस्थामें जन्मभूमिका त्यागकर अजमेरके निकट सम्भर नामक स्थानमें चले गये थे और वहां कई वर्ष रहे। बादको जयपुर और जयपुरसे नरैन गये। वहांसे वहरण नामक स्थानमें जाकर उन्होंने अपनी जीवन यात्रा समाप्त की। इस मतवाले वैष्णवोंकी भांति रामचन्द्रको अपना उपास्य देव मानते हैं किन्तु उनकी प्रतिमा स्थापित नहीं करते। वे उन्हें वेदान्तमत सिद्ध परब्रह्मकी भांति निर्गुण मानते हैं और उनकी प्रतिमा स्थापित करना अविधेय बतलाते हैं। तिलक और कण्ठी नहीं धारण करते, किन्तु जपमाला रखते हैं। यह लोग बावन शाखाओंमें विभक्त हैं। किन्तु किस शाखामें कौन विशेषता है, यह निर्णय करना बड़ाही कठिन है। इनके एक प्रधान दलको विरक्त और दूसरेको वस्त्रधारी कह सकते हैं। विरक्त केवल कौपीन और कमण्डलु रखते हैं तथा भिक्षाटन द्वारा निर्वाह

करते हैं। वस्त्रधारी व्यवसाय द्वारा धनोपार्जन करते हैं। कुछ लोग नागा साधुओंको इसी मतका बतलाते हैं। वे अच्छे सैनिक माने जाते हैं। जयपुर नरेशकी सेनामें प्रायः दश हजार वेतन भोगी नागा सम्मिलित हैं। अजमेर और मारवाड़ प्रभृति स्थानोंमें इस मतका अच्छा प्रचार है। नरैनमें इसका प्रधान मठ है। वहां दादूके कुछ स्मृति चिन्ह और दादू पन्थियोंके प्रामाणिक शास्त्र सुरक्षित हैं। उन्हींकी विहित विधानसे पूजा होती है। फाल्गुन मासमें वहां एक मेला भी होता है। दादू अपने शिष्योंको वेदांत के तत्वोंका उपदेश देते थे।

आचारी-यह रामानुजी वैष्णवोंका एक शाखा सम्प्रदाय है। दक्षिण भारतमें इसका विशेष प्रचार है। यह लोग दूसरेका बनाया हुआ भोजन ग्रहण नहीं करते। देवालयोंमें पित्तल, पाषाण और अष्टधातुकी विष्णु तथा अन्यान्य देवोंकी प्रतिमायें स्थापित करते हैं। यह लोग शङ्ख चक्रादिकी तप्त किंवा शीतल मुद्रा ग्रहण करते हैं। अनेक स्थानोंमें इनके वृहत् देवालय हैं। क्षत्रिय और वैश्योंको भी दीक्षा दी जाती है, किन्तु धर्माचार्य्य ब्राह्मण ही हो सकते हैं।

मीरापंथी-मीराबाईने इस पंथकी स्थापना की थी। वे मेड़ता नरेशकी कन्या थीं और उदयपुरके रानासे उनका विवाह हुआ था। राना शैव थे। उन्होंने मीराको शैव मतावलम्बिनी बनानेकी बड़ी चेष्टा की, परन्तु मीराने वह स्वीकार न किया।

निदान, राणाने उनका परित्याग कर दिया। मीरा गृहबन्धनसे मुक्त हो रणछोड़ नामक कृष्ण मूर्तिकी उपासनामें रत हुईं। कुछ दिन उन्होंने वृंदावन और द्वारिका प्रभृति तिर्थ स्थानोंमें भी व्यतीत किये। इस मतवाले वैरागी रणछोड़को अपना उपास्य देव मानते हैं। डाकोरमें रणछोड़का भव्य मन्दिर है। उदयपुरके मन्दिरमें रणछोड़ और मीराकी एक साथ ही पूजा होती है।

राधावल्लभी-यह पंथ उत्तरीय भारत और गुजरातमें प्रचलित है। कृष्णकी राधावल्लभ रूपमें पूजा की जाती है। अनुयायीगण राधारूप होकर भजन करते हैं। कृष्ण और राधाके कीर्तन गाते हैं तथा भक्तिसे मोक्ष मानते हैं। मुख्य धाम वृंदावन है।

सखोभाव-इसके तत्व भी राधावल्लभी मतानुसार हैं।

जानकीदास-आनन्द प्रदेशान्तर्गत ओड़ ग्राममें इस मतवालोंकी मुख्य गद्दी है। रामकृष्णकी मूर्तिपूजा और नामस्मरणादिसे मोक्ष मानते हैं।

संतराम-सन्त नामक साधुने स्थापित किया था। मुख्य गद्दी नड़ीयाद, उमरेठ और बड़ौदामें है। मूर्तिको नहीं मानते। आत्मज्ञान और योग विद्याको इष्ट मानते हैं। रामायणको विशेष माननीय समझते हैं।

षड्दर्शनी-मारवाड़में प्रचलित हैं। इस पंथमें हिन्दू,

मुसलमान, जैन, ब्राह्मण आदि भी हैं। परस्पर किसी प्रकारका भेद भाव न रखना यही उनका सिद्धान्त है।

पल्टूदासी-नवाब शहादतअलीके राजत्वकालमें अहिरौलाके पल्टूदास नामक साधुने इसकी स्थापना की थी। अयोध्या में इन लोगोंका प्रधान मठ है। यह लोग तुलसीकी माला धारण करते हैं। नासिकाके अग्रभागसे लेकर केशपर्यंत खड़ा तिलक करते हैं। कोई कोई केश रखते हैं और कोई कोई नहीं भी रखते। एक दूसरेसे मिलनेपर सत्यराम कहकर अभिवादन करते हैं। निर्गुण ब्रह्मको मानते हैं अतः मूर्तिपूजा नहीं करते। विष्णुके अवतारोंपर भी विशेष आस्था नहीं रखते। राम नामका स्मरण और योग साधनाको मोक्षका साधन मानते हैं। यह लोग संयुक्तप्रांत और नैपालमें दिखाई देते हैं।

आपापंथी-मल्लारपुरके मुन्नादास नामक सुनारने इसकी स्थापना की थी। अयोध्याके माड़वा नामक ग्राममें इनका प्रधान मठ है। यह लोग नैपाल और युक्तप्रांतमें पाये जाते हैं। तिलक और माला प्रभृति साम्प्रदायिक चिन्होंको धारण करना परमावश्यक नहीं मानते। पल्टूदासियोंकी भांति निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करते हैं और जाति भेदको अनावश्यक समझते हैं। यह लोग एक दूसरेके मिलनेपर बन्दगी साहब कहकर अभिवादन करते हैं।

सत्नामी-सर्दहा (अयोध्या) निवासी जगजीवन नामक क्षत्रियने नवाब आसफुद्दौलाके समयमें इसकी स्थापना की थी। इस पंथवाले ईश्वरको सत्नाम कहते हैं। इसीलिये इनका नाम

सत्नामी पड़ा है। कोटैया ग्राममें इनका प्रधान मठ है। वहां जगजीवनकी समाधि है। प्रतिवर्ष वहां एक मेला भी लगता है। यह भी निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते हैं और ज्ञान प्रकाश, महाप्रलय प्रभृति जगजीवन रचित ग्रन्थोंको प्रामाणिक मानते हैं कहते हैं, कि उपरोक्त पल्टूदासी, आपापन्थी और यह सत्नामी—तीनों संप्रदायवाले गायत्री नामक एक धर्मानुष्ठान करते हैं, उस समय मल मूत्र तथा वीर्य भक्षण करते हैं। यह अनुष्ठान केवल त्यागी ही करते हैं, गृहस्थ नहीं—किन्तु मद्यमांसका व्यवहार करना यह लोग निन्द्य समझते हैं।

बीजमार्गी-यह लोग काठियावाड़में पाये जाते हैं। निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करते हैं और राम तथा कृष्ण प्रभृति नामोंको ब्रह्मके ही नाम मानकर उनका गुणानुवाद करते हैं। अन्यान्य वैष्णवोंकी भांति तिलक और माला धारण करते हैं। मद्य मांसका व्यवहार नहीं करते, किन्तु एक ऐसा अनुष्ठान करते हैं, जिससे इनको वामाचारियोंकी पंक्तिमें रखनापड़ता है। इनके मतानुसार वीर्य ब्रह्म स्वरूप है, क्योंकि उससे शरीर और जीवकी उत्पत्ति होती है। यह लोग शुक्ल चतुर्दशीके दिन वामाचारियोंकी भांति एक चक्र साधना करते हैं। जिस स्थानमें यह कार्य संपन्न होता है, उसे समाजगृह कहते हैं। वहां पञ्चामृतमें वीर्य मिश्रित कर यह लोग सानन्द उसका पान करते हैं।

निरञ्जन—राजपूतानेमें प्रचलित है। रामानन्द सम्प्रदायसे मिलता जुलता है।

इसुवेंदी—पादड़ी लोग यहां आकर संस्कृत पढ़ वेदादिको कुछ कुछ देख, जनेऊ पहन कर ब्राह्मण वेषमें फिरते थे और नवीन वेदके बहाने प्रकारान्तरसे बाइबिल समझाकर क्रिश्चियन धर्मके प्रचारका प्रयत्न करते थे। ऋग्वेदके प्रथम मन्त्र 'अग्निमीड़े' का वर्ण विपर्यास कर ईसुमीड़े—इत्यादि बनाकर बाइबिलको भी वेद ठहराते थे। सम्बत १६०६ में राबर्ट डी० नोबिल नामक एक ईसाई मद्रास प्रान्तमें आया था। उसने कहा था कि रोममें ईसुर्वेद नामक एक पञ्चम वेद है और वह ईश्वरकी ओरसे मुझे प्राप्त हुआ है। आर्यावर्त्तके प्राचीन चार वेदोंसे वह श्रेष्ठ और उनसे उत्तम ज्ञान देनेवाला है। इत्यादि बातें बतला कर युक्तिपूर्वक हजारों मनुष्योंको इसने ईसाई बनाया। उस प्रान्तमें उनके सन्तान अब भी वही मत पालते हैं। क्रिश्चियन पुराण नामक एक पुराण भी दृष्टिगोचर होता है।

विट्ठलभक्त—यह सम्प्रदाय महाराष्ट्रमें प्रचलित है। ईसाकी चौदहवीं शताब्दिमें पुण्डरीकने इसकी स्थापना की थी। पाण्डुरङ्ग और विठ्ठो-बा इनके उपास्य देव हैं। बिठ्ठोबाको यह लोग विष्णुका नवम अवतार मानते हैं, अतः हम इन्हें बौद्ध वैष्णव भी कह सकते हैं। भीमा नदीके तटपर पंढरपुरमें विठ्ठो-बाका एक भव्य मन्दिर हैं। उसे यह लोग अपना तीर्थस्थान मानते हैं। भक्त विजय, हरिविजय, पाण्डुरङ्ग माहात्म्य प्रभृति इनके साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं। यह लोग वैराग्यको परमावश्यक नहीं मानते,

अतः इनमें त्यागी बहुत कम दिखाई देते हैं। वैष्णवोंकी भांति इनके ऊपर गुरुओंका कठोर शासन भी नहीं है। यह लोग जातिभेद नहीं मानते। ललाटमें दो श्वेत रेखायें करते हैं और प्रेम लक्षणा भक्तिको मोक्षका साधन मानते हैं। इस सम्प्रदायमें अनेक ज्ञानी साधु हुए हैं। जिनमें ज्ञानदेव और तुकाराम बहुत ही प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अभंगोंकी रचना की थी। मार्मिक, सरल, रसिक और हृदयस्पर्शी काव्य होनेके कारण उनका दक्षिण भारतमें बड़ा प्रचार हुआ। उनमें जन्मानुसार वर्ण व्यवस्थाका खण्डन और परमात्मा की यथाविधि उपासना न करनेके कारण ब्राह्मण तथा अन्य लोगोंपर मर्म प्रहार किये गये हैं। इसीलिये ब्राह्मणोंने क्रुद्ध होकर उनके ग्रन्थोंको जल समाधि करा दी थी। किन्तु लोगोंको कंठाग्र होनेके कारण अभंगोंका नाश न हो सका। आज भी महाराष्ट्रमें वह उसी प्रेमसे गाये जाते हैं।

चरणदासी—इस पंथके स्थापक चरणदासका जन्म अलवरके निकटवर्ती देहरा नामक ग्राममें हुआ था। वह बाल्यावस्थासे ही दिल्लीमें रहता था। वहीं उसने इस पन्थकी स्थापना की थी। राधाकृष्ण इनके उपास्य देव हैं। अन्यान्य वैष्णवोंकी भांति यह भी गुरु और भक्तिका प्राधान्य स्वीकार करते हैं, किन्तु भक्तिके साथ यह कर्म्मानुष्ठानको भी मोक्षका साधन मानते हैं। भागवत और भगवद्गीता इनके साम्प्रदायिक ग्रंथ हैं। इनके अतिरिक्त रामचरणदास और उनकी बहिन सहजो बाईके लिखे हुए कुछ ग्रंथोंको भी प्रामाणिक मानते हैं। दिल्लीमें इनका प्रधान

मठ है। उसमें चरणदासकी समाधि है। उसके अतिरिक्त वहां पांच छः मठ और भी हैं। गङ्गा और यमुनाकी अन्तर्वेदीमें भी कुछ मठ हैं। सबोंपर साधुओंका अधिकार है। वे ललाटमें एक ऊर्ध्व रेखा धारण करते हैं। पीतवस्त्र और कण्ठी धारण करते हैं। जप-माला रखते हैं और प्रायः भिक्षाटन द्वारा निर्वाह करते हैं।

अनन्तपंथी—यह बरेला और सीतापुर जिलेमें पाये जाते हैं। अनन्त भगवानके उपासक हैं।

आदि वराहोपासक—इस मतके अनुयायी यत्र तत्र पाये जाते हैं। तादादमें बहुत कम हैं। शरीरपर वाराहका चिन्ह धारण करते हैं।

बाबालालका पंथ—सीमाप्रान्तकी ओर प्रचलित है। वेदान्त और सूफी मतको मिलाकर इसकी रचना हुई है। इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मोंके तत्व पाये जाते हैं। मूर्तिपूजा नहीं है। आत्मज्ञानको मुख्य मानते हैं और प्राणायाम आदि योग-क्रियाओंपर प्रेमभाव रखते हैं।

कुवेरभक्त—कुवेर नामक कोली साधुने सारसामें स्थापित किया था। मूर्तिपूजा और भजन कीर्त्तनादिको मोक्षका साधन मानते हैं।

दादूराम—कुछ वर्ष हुए दादूराम नामक चकलासीके एक साधुने डाकोरमें स्थापित किया था। नीच वर्णोंको उपदेश देकर उन्हें जनेऊ पहनाया था। उनके उपदेशसे लोग झूठ न बोलने, मद्य

मांसादिसे दूर रहने, तथा चोरी न करनेकी शपथ करते हैं। मूर्ति पूजा करते हैं और नामस्मरणादि भक्तिसे ही मोक्ष मानते हैं। यह उपरोक्त दादू पन्थियोंसे भिन्न हैं।

कार्मोलिन—इस ईसाई धर्मके पेटापंथकी स्थापना ई० स० १६०७ में हुई थी। यह क्रिश्चियन धर्मके सिद्धान्तोंको मानते हैं।

कृष्णाराम—कृष्णाराम नामक एक ब्राह्मणने अहमदाबादमें सम्वत् १८९५ में एक मन्दिर बनवाकर यह पंथ स्थापित किया था। वह कृष्ण भक्त था, परन्तु उसने कृष्णलीलाके शृङ्गारिक पदोंकी रचना नहीं की। उसे औरोंकी वैसी कवितापर रुचि भी नहीं थी। मूर्त्ति पूजा और नाम स्मरणादि भजन कीर्त्तनादिसे मुक्ति मानते हैं।

खण्डो-बा उपासक—महाराष्ट्रमें प्रचलित है। जेजुरीके मन्दिरमें खण्डो-बाकी मूर्ति है। इस पंथवाले अपनी कन्याओंका विवाह उस मूर्तिके साथ करते हैं। यह देव-विवाहित कन्या मोरली कहलाती हैं। मद्रास प्रान्तमें भी एक ऐसा ही पंथ है। वहाँ मोरलीको "बिमुतानी" कहते हैं। उड़ीसामें भी ऐसा होता है। वहाँ यह कन्यायें "देवदासी" कही जाती हैं।

विष्णुपन्थ—जम्माजी नामक एक विष्णु भक्तने दिल्लीमें स्थापित किया था। इस पन्थके अनुयायी शवका अग्निदाह नहीं करते परन्तु बैठी हुई दशामें खेतमें गाड़ देते हैं। कुरान और हिन्दू शास्त्रके वाक्योंका उच्चारण कर लग्न किया करते हैं।

समर्थ सम्प्रदाय—यह महाराष्ट्रमें प्रचलित है। शिवाजीके राजत्वकालमें रामदास किंवा समर्थ नामक साधुने इसकी स्थापना की थी। वीर शिवाजी इसी पन्थके अनुयायी थे। इस पन्थका मुख्य धर्मग्रन्थ दासबोध है। वह मुमुक्षुओंके लिये विचारणीय है।

चक्रांकित—इस मतका मूल पुरुष कञ्जर जातिका शठकोप नामक एक मनुष्य था। वह सूप बनाकर निर्वाह करता था। ब्राह्मणोंके निकट जब वह धर्मज्ञान प्राप्त करने गया तब ब्राह्मणोंने उसका तिरस्कार किया था। इसीसे उसने स्वतन्त्र पन्थकी स्थापना की थी। इस पन्थवाले शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मके चिन्होंको अग्निमें तपाकर हाथपर छाप लगाते हैं। ललाटपर त्रिशूलके आकारका तिलक करते हैं। कमलगट्टे की माला पहनते हैं और ईश्वरवाचक दासान्तक नाम रखते हैं। मूर्तिपूजा करते हैं और भजन कीर्तनादि नाम-स्मरणसे मुक्ति मानते हैं।

रामसनेही—जयपुरके रामचरण नामक एक रामानन्दी साधुने शाहपुरमें राज्याश्रय प्राप्तकर संवत् १८२४ में इस पन्थकी स्थापना की थी। इनमें उच्च नीचका भेद नहीं है। साधुओंका जूठन खाते हैं। रामनामको महामन्त्र किंवा सूक्ष्मवेद मानते हैं। मूर्ति पूजा नहीं करते। रामरटनमें मुक्ति समझते हैं। गुरुको परमेश्वरसे भी बड़ा मानते हैं और उनका ध्यान धरते हैं। उनका चरणामृत पीते हैं तथा उनकी अनुपस्थितिमें उनके नख किंवा

दाढ़ीके बालको दण्डवत् करते हैं। स्त्रियां पति-सेवासे भी बढ़कर गुरु-सेवाको ही प्रधान धर्म समझती हैं। शाहपुरमें इस मतवालोंका प्रधान मठ है। वहां महन्त रहते हैं। यह मेवाड़ और राजपूतानेमें प्रचलित है।

रामदेव—मारवाड़के खेड़ापा ग्राममें रामदेव नामक धानुकने स्थापित किया था। इसके तत्त्व श्रीरामसनेही सम्प्रदायके समान ही हैं और यह भी मारवाड़में प्रचलित है।

हरिश्चन्द्री—पश्चिमाञ्चलके डोम इसी मतके हैं। वे कहते हैं कि जब हरिश्चन्द्रने डोमके यहां दासत्व किया था, तब इस मतका प्रचार किया था। इसीलिये यह हरिश्चन्द्री मत कहलाता है।

सधन पंथी—सधन नामक एक मांस विक्रेताने इसकी स्थापना की थी। कहते हैं, कि वह इतना दयालु था, कि स्वयं पशुओंको न मारकर दूसरोंसे मोल लेकर मांस बेचता था। एक साधकी कृपासे उसे सद्ज्ञान प्राप्त हुआ था। कुछ निम्न श्रेणीके मनुष्य इस मतका पालन करते हैं।

माधवी पंथ—माधव नामक कान्यकुब्जके एक शास्त्रविशारद पण्डितने इसकी स्थापना की थी। यह लोग बलियान नामक एक यन्त्र अपने पास रखते हैं और यत्र तत्र भ्रमण किया करते हैं। गायन और वादन द्वारा इष्ट देवकी उपासना करते हैं।

चूहड़ पन्थी—कुछ ही दिन पहले, आगरेके एक वणिकने इसकी स्थापना की थी। इनके उपास्य देव श्रीकृष्ण हैं। श्रीनाथके नामसे यह लोग उनकी उपासना करते हैं। कृष्ण नाम कीर्तनको तनमनकी शुद्धि और आत्मकल्याणका साधन मानते हैं। साधनाके समय स्त्री और पुरुष साथ मिलकर नृत्य और गान करते हैं।

हरिव्यासी—यह निम्बार्क सम्प्रदायकी शाखा है। केवल तिलककी भिन्नताके कारण यह अपनेको उनसे पृथक मानते हैं। मूगीपट्टन स्थानमें इनका प्रधान मठ है।

रामप्रसादी—यह रामानन्दी वैष्णवोंकी शाखा है। इनके तिलकमें भी कुछ भिन्नता है। प्रधान मठ गोरखपुर जिलेमें है।

लश्करी—रामानन्दी हैं, किन्तु तिलकमें किञ्चित भिन्नता है। इनका प्रधान मठ अयोध्यामें है।

चतुर्भुजी—यह भी रामानन्दी हैं। तिलकमें कुछ अन्तर है। किसी चतुर्भुज साधुने लोगोंको चमत्कार दिखाकर इसकी स्थापना की थी।

इनके अतिरिक्त हरिदातार प्रभृति और भी अनेक पन्थ प्रचलित हैं। भूत प्रेतको पूजनेवाले, चामुण्डादि देवियोंके उपासक, और वृक्षके ठूंठमें कोई सिन्दूर लगा दे तो उसे भी देव मानकर पूजा करनेवाले मिल सकते हैं। इस प्रकार जहां अनेकानेक पन्थ दृष्टि-गोचर होते हैं वहां कितने पन्थोंका वर्णन किया जाय और कहां कहां खोज की जाय !!

मद्रास हातेमें सुब्रह्मण्य, (कार्त्तिक स्वामी) त्रिवेन्डम, (बालाजी) रङ्गनाथ, (विष्णु) चिदम्बरम् (शिव) और मीनाक्षी-कामाक्षी (पार्वती तथा शक्ति) आदि देव-देवियोंकी प्रतिमायें पूजी जाती हैं। उस हातेमें खास कर शिव, विष्णु और शक्ति यह तीन सम्प्रदाय और उनकी शाखायें प्रचलित हैं परन्तु वह और प्रदेशोंकी अपेक्षा बहुत ही कम हैं।

हम कई बार यह भी कह चुके हैं, कि प्रायः प्रत्येक सम्प्रदायमें त्यागी और गृहस्थ दोनों प्रकारके मनुष्य सम्मिलित हैं। किन्तु उन त्यागियोंमें भी अनेक भेद हैं। भारतके छप्पन लाख साधु न जाने कितनी शाखाओंमें विभक्त हैं। अनेक शाखाओंका नामोल्लेख हम पहले भी कर चुके हैं। यदि हम शैव सम्प्रदायकी दशनामी, दण्डी, हंस, परमहंस, कुटीचक, बहुदुक, कड़ालिंगी, ऊर्ध्व बाहु, योगी, अवधूत नागा, * अलखनामी, अघोरी, दङ्गली, फलाहारी, दूधाधारी प्रभृति शाखाओंका वर्णन और उनके क्रिया-कर्मोंका निरूपण करें, इसी प्रकार यदि वैष्णव वैरागियोंका पूरा पूरा वृत्तान्त अङ्कित करें, तो निःसन्देह पुस्तकका कलेवर बहुत बढ़ जाय और पाठकोंका बहुतसा समय भी नष्ट हो। प्रत्येक सम्प्रदायके साथ उसकी शाखाओंका कुछ वर्णन दे दिया गया है। पाठकोंको वही सारभूत समझकर सन्तोष करना चाहिये।

---

* नागा वैष्णव और शैव दोनों प्रकारके होते हैं।

सौर सम्प्रदाय.

भारतमें शैव, शाक्त वैष्णव, सौर और गाणपत्य यह-पांच सम्प्रदाय एक समान माने गये हैं ।+ प्रथम तीन सम्प्रदायोंका तो इस समय भी अच्छा प्रचार है, किन्तु शेष दोनोंका सम्प्रति बहुत ही कम प्रचार है।

सूर्य आर्य-कुलके एक प्रधान और आदि देवता है। सम्प्रति जो सूर्यको ही अपना इष्टदेव मानते हैं, उन्हें सौर कहते हैं। यह लोग गलेमें स्फटिक माला और ललाटमें रक्त चन्दनका तिलक धारण करते हैं। रविवार और संक्रान्तिके दिन नमक नहीं खाते और बिना सूर्य भगवानका दर्शन किये जलपान करना भी पाप समझते हैं। वर्षाकालमें इन लोगोंको बड़ा कष्ट होता है। शायद ऐसे ही कठिन नियमोंके कारण यह नि:शेष हो रहा है।

यद्यपि सूर्य कहनेसे दृश्यमान सूर्य मण्डलका ही बोध होता है, किन्तु धर्मग्रंथोंमें उनके हस्त पादादियुक्त मनुष्याकार स्वरूपका वर्णन पाया जाता है :—

रक्ताम्बुजासनमशेष गुणैक सिन्धुं ।
भानुः समस्त जगतामधिपं भजामि ॥

+ शैवानि गाणपत्यानि शाक्तानि वैष्णवानि च ।
साधनानिच सौराणि चान्यानि यानि कानिचित ॥
श्रुतानि तानि देवेश त्वद्वक्त्रान्निः सृतानिच ॥
तन्त्रसार तृतीय परिच्छेद ।

पद्मद्वयाभयवरद्धतंकराब्जै ।
माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम् ॥

अर्थात् रक्ताम्बु आसन, अशेष गुण सागर, चतुर्भुज, कमलद्वय धारी, अभय, माणिक्य मौलि, अरुण वर्ण और त्रिनेत्र सूर्य भगवान-की मैं वन्दना करता हूं।

कहीं कहीं रथ, श्वेत अश्व, और अरुण सारथी सहित उनके रथारूढ़ स्वरूपका भी वर्णन हैं। भारतमें पहले उनकी मन्त्रों द्वारा उपासना होती थी। बादको प्रतिमा पूजनका प्रचार हुआ। प्रसिद्ध चीन देशीय यात्री हुएनसङ्गने मुलतानमें एक सूर्य मन्दिर और सूर्य प्रतिमा देखी थी। शङ्कर दिग्विजयमें भी सौर सम्प्रदायका विवरण अङ्कित है। हर्ष चरित्र नामक ग्रंथ देखनेसे भी इस बातका पता चलता है, कि श्रीहर्षके पिता प्रभाकरवर्द्धनने सूर्य मन्त्र ही ग्रहण किया था। यह सब ईसाकी सातवीं और आठवीं शताब्दिकी बातें हैं। जिस समय मुसलमानोंने यहां पदार्पण किया, उस समय भी सूर्य पूजाका प्रचार था। उन्होंने एक सूर्य-प्रतिमाके गलेमें गोमांस लटकाया था।*

उत्कल प्रदेशमें किसी समय सूर्योपासनाका विशेष प्रचार था। ब्रह्मपुराणमें तद्विषयक विस्तृत विवरण अङ्कित है। कोनार्क नामक स्थानमें एक भग्नावस्थ पुरातन सूर्यमन्दिर अद्यापि दृष्टिगोचर होता

* Journal Asiatique, Tom 8 th. October 1846. P. P. 298-299.

है। उसकी लङ्गोरनरसिंह नामक राजाने ई० स० १२४१ में प्रतिष्ठा की थी। +

यवद्वीपमें हिन्दुओंकी अनेकानेक देव मूर्तियाँ अद्यापि विद्यमान हैं। वहाँके ऐसिस्टंट रेसीडेण्टने एक बार अपने उद्यानमें अनेक मूर्तियाँ एकत्र की थीं। उनमें सप्ताश्व योजित सूर्य भगवान्के कितने ही रथ भी थे। ×

इन बातोंसे ज्ञात होता है, कि भारतमें एक दिन सौर सम्प्रदायका भली भाँति प्रचार था, किन्तु इस समय स्वतंत्र सूर्योपासकोंका प्रायः अभाव है। नवग्रह पूजन और सन्ध्या बन्दनादिके समय अब भी उनकी पूजा होती है और अर्घ्यदान किया जाता है। वेदोंमें सूर्यको ही विष्णु कहा है अतः हम यह कह सकते हैं, कि प्रकारान्तरसे सूर्य पूजा अब भी प्रचलित है। सम्भव है, कि वैष्णव सम्प्रदायके प्रबल हो उठनेपर ही यह निःशेष हुआ हो। "हंसः" यह बीजमन्त्र और "ओम् आदित्याय विद्महे मार्त्तण्डाय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्" यह सूर्य भगवानकी गायत्री है।

+ Asiatique Researches Vol. XV P. 327.

× Jourual of the Indian Vrchipelegd Vol. III no IX.

गणपति उपासक।

यद्यपि यह सम्प्रदाय भी पञ्च महासम्प्रदायोंमें गिना गया है, किन्तु सम्प्रति स्वतन्त्र गणपति उपासक भारतमें कहीं भी नहीं दिखाई देते। हिन्दू मात्र अपने अपने इष्ट देवोंकी उपासना करते हुए गणेशको सिद्धिदाता और विघ्न विनाशक मानकर उनकी अर्चना करते हैं। प्रत्येक शुभ कार्यको करते समय सर्व प्रथम गणेश हीकी पूजा की जाती हैं। सम्भव है, कि कभी स्वतंत्र रूपसे गणेशकी उपासना होती हो और कुछ लोग उन्हींको अपना इष्टदेव मानते हों। महाराष्ट्रमें अब भी गणपतिकी उपासना अधिक परिमाणमें होती हैं। गणेश जन्मसे लेकर दश दिन पर्यन्त वहाँ जो उत्सव मनाया जाता है, उसे देखनेसे विश्वास होता है, कि कभी यह लोग अवश्य गाणपत्य थे। इसके अतिरिक्त यह भी सुना गया है, कि एक ऐसा भी जन समुदाय हैं, जो वामाचारियोंकी भाँति तन्त्रोक्त विधिसे गणपतिकी उपासना करता है। उन्हें उच्छिष्ट गणपति उपासक कहते हैं।



नवीन काल ।

—:❀:—

ईसाकी अट्ठारहवीं शताब्दिसे अद्यपर्यन्त !

हम देख चुके, कि प्रत्येक धर्म किस प्रकार अनेकानेक शाखा सम्प्रदायोंमें विभक्त हो गया और किस प्रकार मत मतान्तरोंकी वृद्धि हुई । मूर्ति पूजादि कारणोंसे हिन्दू और मुसलमानोंमें विरोध भाव तो था ही, परन्तु इन मत मतान्तरोंके कारण स्वयं हिन्दुओंमें भी विरोध भाव और अनैक्यको वृद्धि हुई । एक पंथवाले अन्य पंथवालोंको नास्तिक, कुसंगी, मायावादी, पाखण्डी इत्यादि कहकर तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने लगे । धर्मज्ञानके अभावसे दम्पतियोंमें क्लेश होने लगा और अनाचारकी वृद्धि हुई । साथ ही अनेक प्रकार की कुप्रथायें भी प्रचलित हुईं ।

शुभाशुभ प्रसङ्गोंपर जाति बन्धुओंको भोज देनेमें सैकड़ों रुपये खर्च होने लगे । बाल लग्नने तो सारे देशको चौपट ही कर दिया । परदेश गमन बन्द हो गया और मृत्युके बाद भी धनहानि करनेवाली विचित्र प्रथायें प्रचलित हुईं । इस प्रकार हिन्दू संसार हानिकर प्रथाओंका घर बन गया और हिन्दुओंमें दारिद्र, अनैक्य, अन्ध श्रद्धा, दुराचार और दुर्गुणोंकी वृद्धि हुई । कर्म, ज्ञान और भक्तिका सत्य स्वरूप छिप गया और उनका स्थान जड़ भक्तिने ग्रहण किया । अपने अपने पंथ और धर्मगुरुओं द्वारा निश्चित की हुई मूर्तियोंके भोग श्रृङ्गारादिके लिये धनादिकी सहायता देना, मन्दिर निर्माण करना

गुरुको धनादिसे प्रसन्न रखना, विविध तीर्थस्थलोंमें जाकर वहांके पुरोहितोंको संतुष्ट करना, व्रत उपवासादि करना, ईश्वरके बतलाये हुए अवतारोंके विविध नामोंका जप करना, साधु * नामधारी भिक्षुकोंको दान देना, छाप और तिलक लगाना, बस इतने ही कामोंमें भक्तिका समावेश हो गया। ऐसी ही भक्तिसे पापका नाश और मोक्षको प्राप्ति होती है, यह माना जाने लगा। लोगोंकी इस बातपर दृढ़ श्रद्धा हो गयी कि जड़ भक्ति ही सब कुछ है। पंथोंके आचार्योंने "स्वधर्मे निधनंश्रेय परधर्मो भयावहः" इस गीता वाक्यके सत्यार्थको ताकपर रख, उससे अपने मत पंथकी दीवारोंको पुष्ट करनेमें उपयोग किया। "दैवे रुष्टाः गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन" इत्यादि बताकर कितने ही धर्माचार्योंने आर्य प्रजाको अन्धकूपमें ढकेल दिया।

इतना ही नहीं, वे राज ठाटसे रहने और स्वेच्छाचार करने लगे। उन्होंने अपने अनुयायियोंको "दासोहं" का ऐसा पाठ पढ़ाया कि सारा देश दासताकी श्रृङ्खलामें जकड़ गया। पुराणकालमें अनाचार और अन्ध श्रद्धाके मूल इतने पुष्ट हो गये, कि उनका उच्छेद करना कठिन हो गया। आर्य प्रजा अवनतिके दलदलमें अधिकाधिक फँसती गयी! परन्तु परम कृपालु परमात्माने उसकी ओर दया दृष्टि की। समयने पलटा खाया। जनसमाजमें नवीन

---

* भारतमें छप्पन लाख साधुओंका पालन पोषण होता है। ईश्वर ही जाने, कि उनमें साधु पदके योग्य कितने हैं।

भाव जागरित हुआ। जनताने एक नवीन युगमें प्रवेश किया। अत: हम उस युगको नवीनकाल कहना उचित समझते हैं।*

ब्रह्मसमाज।

—:*:—

इस समाजके संस्थापक राजा राममोहनरायका जन्म ई० सन् १७७२ में बङ्गालके राधानगरमें हुआ था। उनके पिताका नाम रामकंठ राय था। उन्होंने महेश नामक अध्यापक द्वारा गणित और स्कूलमें बङ्गला, अरबी और फारसी भाषाकी शिक्षा प्राप्त की थी। अरबी और फारसीके अध्ययनसे उन्हें मूर्ति पूजाके प्रति अश्रद्धा हो गयी। उनका ध्यान एकेश्वरकी ओर आकर्षित हुआ। बादको वह पटना और काशी गये और वहाँ जाकर उन्होंने संस्कृत-अध्ययन किया। साथ ही कुरान भी देख डाला। उन्हें पुराण किस्से कहानियोंके संग्रह प्रतीत हुए। १६ वर्षकी अवस्थामें "मूर्ति पूजा निषेध" नामक ग्रंथ प्रकाशित कर इन्होंने मूर्ति पूजाका विरोध

---

* समय समय पर देशकालानुसार धर्मोंकी स्थापना होती है। इस युगमें जिन धर्मोंकी सृष्टि हुई, वे समय और लोक रुचिके अनुकूल अवश्य हैं, किन्तु उनमें युरोपीय सभ्यताकी गन्ध आती है। किसी न किसी अंशमें वे विदेशी रंगमें रंगे हुए हैं। इसीलिये शायद इनका विशेष प्रचार नहीं हो पाया।

ब्रह्म समाज।



राजा राममोहन राय।

पृष्ठ संख्या ३४२

किया। ऐसा करनेपर उन्हें जाति बहिष्कृत होना पड़ा। उनके पिताने भी क्रुद्ध हो, उन्हें घरसे निकाल दिया।

इस घटनाके बाद वह भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें भ्रमण करने लगे। तिब्बत भी गये। यहाँ और वहाँके विविध पंथोंका अवलोकन किया। इतनेमें माताके आग्रहसे उनके पिताने उन्हें घर लौट आनेके लिये पत्र लिखा। पत्र पाकर वह लौट आये। घर आकर धर्मशास्त्रोंके साथ साथ अंग्रेजीका भी अध्ययन करने लगे। ई० स० १८०३ में उनके पिताका देहान्त हुआ। कुछ दिनोंके बाद वह रङ्गपुरके कलेक्टरके आफिसमें सिरिश्तेदार नियत हुए। उन्होंने नौकरी करते हुए भी धर्म-ग्रन्थोंका अध्ययन न छोड़ा। ई० स० १८१४ में स्वदेश बन्धुओंको नवजीवन दान करनेके लिये धर्म-प्रचारमें आयुष्य व्यतीत करना स्थिर किया। तदनुसार नौकरीको जलांजलि दी और बङ्गलामें वेदान्तका अनुवाद कर पुस्तकें बिना मूल्य वितरित कीं। उपनिषदोंका भी अनुवाद प्रकाशित किया और बाइबिलका अध्ययन किया। धर्मोन्नतिके बिना नीति, राज्य आदि किसी विषयमें उन्नति न होगी, यह सोचकर एक सरल सम्प्रदाय-की स्थापनाका उन्होंने विचार किया। उन्होंने क्रिश्चियन और हिन्दू धर्मका मंथनकर कुछ अंश निकाला और एक पुस्तक प्रकाशित की। बादको कुछ विचारवान और विद्वान तथा बाबू प्रसन्नकुमार और द्वारिकानाथ टागोर प्रभृति धनीमानी मनुष्योंकी सहायता प्राप्त कर ई० स० १८१८ में ब्रह्म समाजकी स्थापना की।

"परमात्मा एक है और वह निरञ्जन निराकार है। परमात्मा

से जीव भिन्न है। अतः जीवको ईश्वरकी प्रेम पूर्वक स्तुति और भक्ति करनी चाहिये! सबमें आत्मभाव रखना चाहिये। मूर्ति पूजा और जाति भेद त्याग करना चाहिये। सर्वत्र समान भावसे नीति-युक्त आचरण करना चाहिये।" इत्यादि सिद्धान्त निश्चित कर सभी प्रकारके लोगोंको सम्मिलित होनेका अधिकार दिया। उन्होंने प्रति बुधवारको सायंकाल सभाकर व्याख्यान द्वारा धर्म-नीतिका उपदेश देना स्थिर किया। शनैः शनैः जनता भी इसका स्वीकार करने लगी।

ई० स० १८२८ में सती प्रथाको बन्द करनेका कानून रचा गया, वह भी इन्हींके प्रयत्नका फल था। ई० स० १८३१ में वह इङ्गलैण्ड गये। वहीं सन १८३३ में उनका देहान्त हुआ। उनके पुत्र रामप्रसादने विवाह अवस्थाकी नवीन योजना की। कुछ काल तक देवेन्द्रनाथ टागोर इस समाजका काम देखते रहे। ई० स० १८५८ में केशवचन्द्र सेनने इस मतको स्वीकार दिया। सन १८६२ में वे इसके आचार्य नियत हुए। वे बाललग्नके शत्रु, पुनर्लग्नके पक्षपाती, पुनर्जन्म तथा जाति भेदको मिथ्या माननेवाले मूर्तिपूजाके कट्टर-विरोधी थे। उनकी वक्तृत्व शक्ति अत्युत्तम थी। उन्होंने सन १८६६ में भिन्न भिन्न जातिके अनेक स्त्री पुरुषोंके व्याह कराये, विधवा विवाह करानेको उद्यत हुए। यह बात देवेन्द्रनाथको पसंद न आई। वहींसे इस समाजकी दो शाखायें हो गयीं—आदि ब्रह्म-समाज और भारतवर्षीय ब्रह्मसमाज। अब केशवचन्द्रने प्रचारार्थ भारतके प्रत्येक भागमें भ्रमण करना आरम्भ किया। बम्बईमें

अनेक व्याख्यान दिये, फलतः कितने ही हिन्दुओंने उसका स्वीकार किया और प्रार्थना समाजकी स्थापना की, जो अद्यापि वहां विद्य-मान है। अहमदाबाद, राजकोट और पूना आदि स्थानोंमें भी उसकी शाखायें हैं।

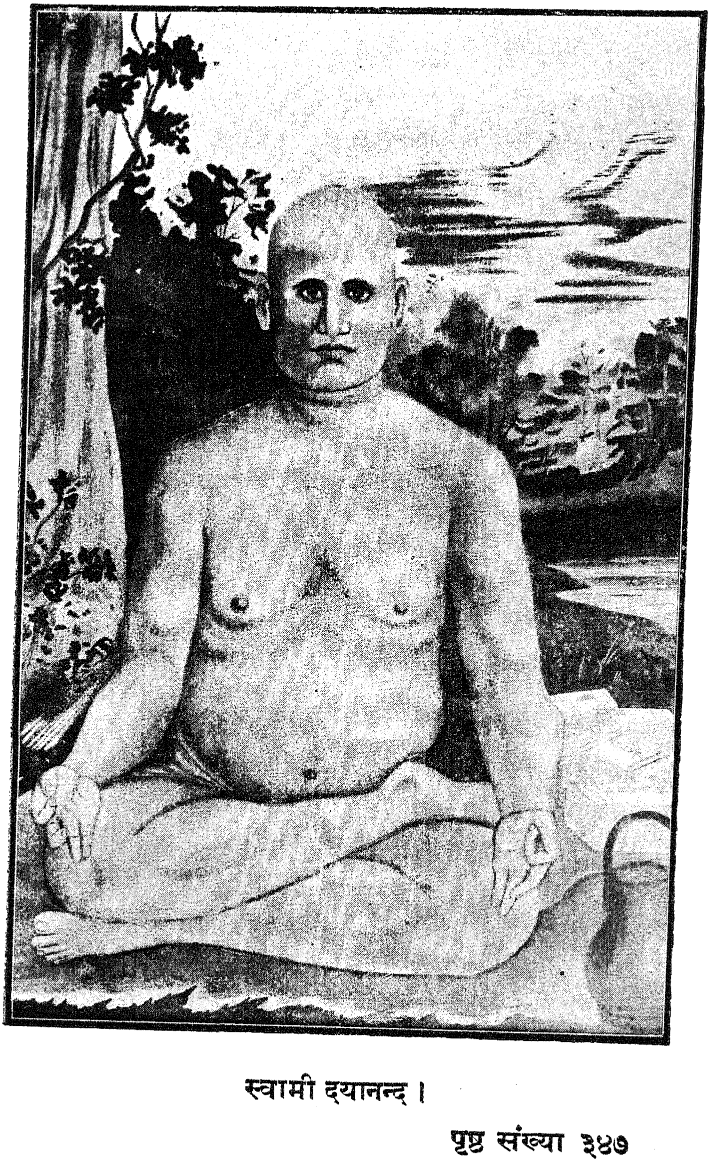
सन १८७० में वह ब्रह्मसमाजके प्रचारार्थ इङ्गलैण्ड गये और वहां धर्म सम्बन्धी वक्तृतायें सुनाकर लोगोंको मुग्ध कर दिया। पं० मोक्षमूलरने उनसे साक्षात किया और महारानी विक्टोरियाने भी अपने राज प्रसादमें उन्हें भोज दिया। इस प्रकार लण्डनमें भी ब्रह्मसमाजकी स्थापना कर वह भारत लौट आये। सन १८७८ में वह अपनेको ईश्वर प्रतिनिधि बतलाने लगे। बाल लग्नके विरोधी होनेपर भी उन्होंने अपनी १३ वर्षीया पुत्रीका विवाह कूचविहारके महाराजसे कर दिया। इन बातोंसे उनका मान घट गया और साधारण ब्रह्मसमाज नामक एक तीसरी शाखाकी स्थापना हुई। सन १८८४ में केशवचन्द्र सेन की मृत्यु हुई और उनका पक्ष निर्बल पड़ गया।

इस समाजवाले पुनर्जन्म और कर्म जैसे सिद्धान्तोंको नहीं मानते, परन्तु अपनी बुद्धिसे सत्य प्रतीत होनेवाले ही वेदादि शास्त्रों के तत्त्व माना करते हैं। इस कारणसे यह केवल प्रार्थना ही करनेवाली समाज कही जा सकती है। इस समाजमें क़रीब ६ हजार मनुष्य सम्मिलित हैं।

प्रार्थना समाजके अनुयायी जाति सुधारक Reformer कहे जाते हैं। हिन्दुओंमें जो अनिष्टकारक प्रथायें प्रचलित हैं उनके वह

कट्टर विरोधी हैं। शिक्षापर सद्भाव रखते हैं। परन्तु उनपर पाश्चात्य विद्याका प्रभाव इतना पड़ गया है कि उनके स्त्री बच्चे स्वतन्त्र रूपसे विचरण करते हैं और विधवा विवाहका समर्थन करते हैं। सामाजिक बन्धन बिलकुल न माननेके कारण उनपर फैशनका भूत बुरी तरह सवार हो गया है। वह किसी जातिके मनुष्यसे खानपान सम्बन्ध रखनेमें दोष नहीं मानते। कितनी ही हानिकर वस्तुओंका व्यवहार करने लगते हैं। कहीं कहींसे अना-चार होनेकी आवाज़ भी सुनाई दी है! हिन्दू प्रजाको कुप्रथाओंके जालसे मुक्त करनेके लिये वे प्रसन्न करते हैं और उपदेश देनेमें शूरता प्रदर्शित करते हैं। परन्तु स्वयं तदनुसार आचरण नहीं करते। जब तब अपनी बातोंपर वे आप ही पानी फेर दिया करते हैं। यही कारण है, कि उनके उपदेशका प्रभाव बहुत ही कम पड़ता है। इस समाजसे भी सन १९१४-१५ में आर्यन ब्रदरहुड नामक अंकुर फूट निकला है। उसके अनुयायी सरे आम चाहे जिस जातिवालेके साथ एक पंक्तिमें बैठ, भोजन करना बुरा नहीं मानते।

आर्य समाज ।



स्वामी दयानन्द ।

पृष्ठ संख्या ३४७

आर्यसमाज ।

इस समाजके संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीका जन्म ई० स० १८२४में हुआ था। काठियावाड़के मोरवी राज्यका टङ्कारा नामक ग्राम इनकी जन्मभूमि बतलाई जाती है। उनका जन्म नाम मूलशङ्कर और उनके पिताका नाम अम्बाशङ्कर था। जातिके वे औदीच्य ब्राह्मण थे। आठ वर्षकी अवस्थामें उनका उपनयन संस्कार हुआ। तबसे वह संस्कृतका अध्ययन करने लगे। एक समय शिवरात्रिके दिन शिवलिंगपर पूजादि कर यवाक्षत चढ़ाये गये। वह खानेके लिये उसपर चुहियां दौड़ मचाने लगीं। यह दृश्य देखकर उनकी मूर्तिपरसे आस्था उठ गई। धर्म तथा ईश्वरके सत्य स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये वह सोलह वर्षकी अवस्थामें गृहसे चुपचाप भाग निकले। साधु सन्तोंका समागम करते हुए वह सिद्धपुर गये। वहीं उन्हें खोजते हुए उनके पिता भी जा पहुंचे। उन्होंने क्रुद्ध हो उनके गैरिक वस्त्र फाड़ डाले। तुम्बी फेंक दी और उन्हें घर चलनेके लिये बाध्य किया। परन्तु मार्गमें अवसर बचाकर वह पुनः भाग निकले। फिर उनके पिताने बड़ी चेष्टा की किन्तु वे उनका पता न लगा सके। लाचार, कर्मको दोष देते हुए घरमें बैठ रहे।

स्वामी दयानन्दने इस प्रकार गृह त्याग किया। यत्र तत्र भ्रमणकर वे काशी गये और वहां ब्रह्मचारियोंकी भाँति वेदाध्ययन करने लगे। कुछ कालके बाद उन्होंने सुना, कि चांदोद (गुजरात)

में सन्यासियोंका एक सम्मेलन होनेवाला है, अत: वे वहां गये। वहीं ज्वालापुरीके निकट योग विद्या सीखो, और स्वामी पूर्णानन्दने उन्हें संन्यास शिक्षा दी, उनका नाम दयानन्द सरस्वती रक्खा। उस समय उनकी अवस्था २३ वर्षकी थी। अब विशेष ज्ञान प्राप्त करनेकी अभिलाषासे यह देशाटन करने लगे। मार्गमें उनको अनेक साधु संन्यासी मिले, परन्तु कोई उनके मनको शांत न कर सका। घूमते हुए वह मथुरा पहुंचे। वहां स्वामी वीरजानन्दसे साक्षात हुआ। उनके निकट रहकर, दयानन्दने सात वर्ष पर्यंत वेद भाष्य, न्याय निरुक्त, षट्दर्शन और उपनिषदोंका अध्ययन किया और विविध मत पन्थोंके धर्म ग्रंथोंका अवलोकनकर अच्छी कुशलता प्राप्त की। देशाटन करते समय विविध मतोंके अनुयायी उनके आचार्य, उपदेशक तथा त्यागियोंसे उनकी भेंट हुई थी और मूर्ति-पूजा और उसको लेकर होनेवाली अनीति, अनाचार, दम्भ और पाखंडका उन्हें अनुभव हुआ था। वह जातिभेद, बालविवाह, प्रवास प्रतिबन्ध आदि हानिकारक प्रथाओंसे भलीभाँति परिचित हो चुके थे। स्वामी विरजानन्दके प्रश्नोत्तर करनेपर वह समझ गये, कि जबतक वेद धर्मका प्रचार न होगा, तब तक आर्योंकी उन्नति न होगी। अतः उनके आदेशानुसार वेद धर्मके प्रचारार्थ वह कटिबद्ध हो मैदानमें आ पड़े। उन्होंने ता० १७-११-१८६९ के दिन काशीमें राजा जयकृष्णके सभापतित्वमें ८-९ सौ पण्डितोंकी सभामें वादाविवादकर मूर्त्तिपूजाको वेद विरुद्ध सिद्ध कर वेद धर्मकी नींव डाली। "यतोभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः"

वैशेषिक दर्शनोक्त इस धर्म स्वरूपको ध्यानमें रख, वेद विरुद्ध मत-मतान्तर और प्रथाओंके अनिष्ट जालका नाश कर, सबको वेद धर्मकी छत्र छायामें एकत्र करनेके लिये वह कटिवद्ध हो उपदेश देने लगे।

"परमात्मा निराकर और सर्व व्यापक है। वह अवतार नहीं लेता। मूर्तिपूजा व्यर्थ है। जीव और ईश्वर भिन्न हैं। बाल लग्न करना पाप है। ब्रह्मचर्यका पालन हो उन्नतिका मूल हैं। यज्ञादि इष्ट हैं। पुनर्जन्म होता है। वर्ण व्यवस्था गुण कर्मानुसार माननी चाहिये। मोक्षके लिये वेदकालकी भांति कर्म ज्ञान और भक्तिकी आवश्यकता है। वर्णाश्रमके अनुसार आचारण करना चाहिये। द्विज मात्रको नित्यकर्म और सोलह संस्कार करना चाहिये। पुनर्विवाहइष्ट नहीं हैं, परन्तु जिसका मनपर अंकुश न रह सके, उसे आपद् धर्म समझ नियोग* करना चाहिये। यज्ञमें पशु हिंसाका विधान नहीं है। पुराणोंमें असम्भवित और वेद विरुद्ध बातें लिखी हुई हैं, अतः उनको पूर्ण रूपेण प्रमाणिक न मानना चाहिये। सभी सत्य विद्या और धर्मका

* ऋग्वेदमें नियोगका विधान है। पृथ्वीके प्रत्येक भाग और प्रत्येक जातिमें यह पुराणकालके आरंभ तक प्रचलित था। (देखो एन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका आ०-११ पृ० ५११) परन्तु लोगोंमें इन्द्रिय सुखकी लालसाको बढ़ते देख अनाचार और व्यभिचारकी वृद्धि होनेकी आशंकासे पुराणकालके पंडितोंने यह प्रथा बन्द कर दी थी, तथापि प्रकारान्तसे अनेक जातियोंमें वह आज भी प्रचलित है।

मूल वेद है। अतएव वही माननीय है। मनु महाराजके बतलाये हुए धर्मके दश लक्षणोंको ध्यानमें रख, तदनुसार आचार विचार रखने चाहिये। वेद विरुद्ध और हानिकर प्रथाओंके वश न होना चाहिये। कन्या-विक्रय करनेवाले वाले पापी हैं। वेदके आज्ञानुसार आचरण करना ही धर्म है। समाजके १० नियम* मान्य करनेवाला प्रत्येक मनुष्य वह चाहे जिस जातिका हो, योग्य शुद्धि संस्कार करनेपर, समाजमें सम्मिलित हो सकेगा। आधुनिक शिक्षा त्रुटिपूर्ण है, अतः प्राचीन प्रणालीपर गुरुकुलोंकी स्थापनाकर, औद्योगिक और धार्मिक शिक्षा देनी चाहिये।" यह उनके मुख्य सिद्धान्त हैं। इनको देखनेसे ज्ञात होता है, कि स्वामी दयानन्दके हृदयमें आर्याभिमान भरा हुआ था। जनतामें ऐक्य स्थापितकर आर्योंका गत गौरव पुनः प्राप्त करना—यही उनका प्रधान उद्देश्य था।

---

*—(१) सर्वविद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है। (२) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र सृष्टिकर्ता है। उसीकी उपासना करनी चाहिये। (३) वेद सत्य विद्याओंका भाण्डार है। उसका पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है। (४) सत्यके ग्रहण तथा असत्य के त्यागमें सर्वदा तत्पर रहना चाहिये। (५) सभी कार्य धर्मानुसार अर्थात सत्यासत्यका विचारकर, करने चाहियें (६) संसारका उपकार अर्थात् शारीरिक, मानसिक और सामाजिक उन्नति करना इस समाजका

वह भारतके प्रत्येक भागमें भ्रमण कर जोर शोरके साथ धर्म प्रचार करने लगे। प्रत्येक मतपंथवालोंके साथ वादाविवाद कर वेदको ही श्रेष्ट सिद्ध करने लगे। उन्होंने ता० १—३—१८७५ के दिन बम्बईमें आर्य समाजकी स्थापना कर सत्यार्थ प्रकाश और वेदोंका भाष्य लिखना आरम्भ किया। साथ ही पूना, संयुक्त प्रान्त, पञ्जाब और भारतके प्रत्येक भागमें भ्रमणकर आर्य समाजकी स्थापना की। सन १८७७ में चांदापुरमें सर्व धर्मवालोंकी महासभामें वादाविवादकर अन्य धर्मों पर कितनी ही पुस्तकें प्रकाशित कीं और वेद धर्मकी जड़ मजबूत की।

सन् १८७८ में न्यूयार्ककी थियोसाफ़िकल सोसायटीके साथ पत्र व्यवहार हुआ। उसके अगुवाओंने सहारनपुरमें जाकर उनसे साक्षात किया और उनके साथ रहकर धर्म प्रचार करनेकी इच्छा व्यक्त की। परन्तु कुछ ही दिनोंमें मतभेद हो जानेके कारण वह उनसे पृथक हो गये।

बादको स्वामीजी राजपूताना गये और वहाँके नरेशोंको उपदेश दे, वेश्याओंका नृत्य बन्द कराया। अन्तमें जोधपुराधीशका निम-

---

प्रधान उद्देश्य है। (७) सबके साथ प्रीति पूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार करना चाहिये। (८) अविद्याका नाश और विद्याकी बृद्धि करनी चाहिये। (९) प्रत्येक मनुष्यको अपनी उन्नतिसे सन्तुष्ट न रहना, परन्तु सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनी चाहिये (१०) सबको सभी सामाजिक हितकारी नियमोंके पालनमें परतन्त्र और प्रत्येक हितकारी नियममें स्वतन्त्र रहना चाहिये।

न्त्रण प्राप्तकर वह जोधपुर गये और वहां चार मास पर्यंत विविध विषयोंपर व्याख्यान देते रहे। जिन लोगोंकी जीविका मूर्ति पूजापर निर्भर थी, वह स्वामीजीके विरुद्ध हो चुके थे। उनमेंसे कितने ही उन्हें फंसाने और मार डालनेकी चेष्टामें लगे हुए थे। ईश्वर कृपासे अबतक वह बचते रहे थे। स्वामीजीके वाक्य प्रहारके प्रभावसे जोधपुराधीशने नन्हीजान नामक वेश्याको निकाल दिया था। उसे इनका विनाश करानेकी दुष्ट बुद्धि उत्पन्न हुई। स्वामीजीके मूर्ति पूजक विरोधियोंने उसका साथ दिया। एक भीषण षड्यन्त्रकी रचना हुई। उस वेश्याने स्वामीजीके लिये भोजन बनानेवाले जगन्नाथ नामक रसोइयेको प्रलोभन दे, उसके द्वारा उन्हें कांचका बारीक चूर्ण दूधके साथ पिला दिया। महर्षिको पीछेसे यह ज्ञात हुआ और उन्होंने आबू जा चिकित्सा करायी, परन्तु कोई लाभ न हुआ। वह अजमेर गये और वहीं सम्बत् १९७९ की दीपावलीके दिन, इस आर्यावर्त्तके भानुका अस्त हो गया!

इस प्रकार देशके प्रत्येक भागमें भ्रमणकर व्याख्यान और उपदेशोंसे मतमतान्तर रूपी जालको छिन्न भिन्नकर वेदको पुनः जीवन दे, सत्य प्रकाश करनेमें प्राणार्पणकर उन्होंने अक्षय कीर्ति प्राप्त की। जन समाजमें दीर्घकालसे मूर्त्ति पूजा प्रचलित है और अनेक लोगोंकी जीविका उसीपर निर्भर है। स्वामीजी उसके कट्टर विरोधी थे। यह तथा ऐसे ही अन्य कारणोंसे लोग उनके विरुद्ध थे। इसलिये वह जैसी चाहिये, वैसी सफलता नहीं प्राप्त-कर सके और उनकी संस्थामें विशेष लोगोंने योग नहीं दिया, फिर

भी जो लोग उसमें सम्मिलित हैं, वे बहुत कुछ काम कर रहे हैं। सुशिक्षाका भली भांति प्रचार होनेपर, जब जनतामें विचार बुद्धि जागरित होगी और उसमें सत्यासत्यकी तुलना शक्ति आवेगी, तब वह और भी अग्रसर होनेकी चेष्टा करेंगे।

इस समाजकी स्थापनासे लोगोंमें धर्मबुद्धि और विचार शक्ति जागरित हुई है। आंग्ल शिक्षा प्राप्त लोगोंकी वेद परसे आस्था उठ गई थी, परन्तु अब वह वेदको मानने और स्वधर्मको पालने लगे हैं। लोगोंका परधर्मी होना बन्द हो चला है और धर्मभ्रष्ट लोगोंका शुद्धि-संस्कार कर उन्हें अपनानेका प्रयत्न होने लगा है। गोरक्षिणी सभाय और अनाथालय स्थापित हुए हैं। बाल विवाहादि हानिकारक प्रथाओंका जोर दिन प्रति दिन कम होने लगा है और वैवाहादिक प्रसङ्गोंपर वेश्याओंका नृत्य बन्द हो चला है। उनके वाक्य प्रहारोंसे प्रत्येक धर्मके आचार्यों को जागरित होकर, शास्त्रोंका अध्ययन करनेके लिये वाध्य होना पड़ा है।

अभी आर्य समाजको अनेक काम करने बाकी हैं।* वेद-भाष्यका काम अपूर्ण रह गया है। कितने ही केवल नाम मात्रके

---

* महर्षिने निरुक्तके आधारपर वेदभाष्य किया है। पौराणिक विद्वान कहते हैं, कि आधुनिक सभ्यतापर वेदोंका प्राधान्य स्थापित करनेके लिये स्वामीजीने वेद वाक्योंको खींचतान कर बुद्धि विलास किया है। ऐसा कह कर वह उन्हें येनकेन प्रकारेण नीचा दिखानेका प्रयत्न करते हैं। किन्तु बाबू अरविन्द घोषका कथन है, कि महर्षि दयानन्दकी प्रतिष्ठा तो अवश्य करनी पडगी, क्योंकि इधर वे ही ऐसे मनुष्य हुए, जिन्होंने वेदकी सत्य-कुन्जी दिखलाई है।

समाजी वन व्यर्थ ही खण्डन मण्डन किया करते हैं। इससे विरोध भाव बढ़ता है। महार्षिके आदेशानुसार जो प्रतिदिन पंच महायज्ञादि नित्य कर्म और संस्कारादि विधि करते हों तथा समाजके सिद्धान्तोंको पूर्णरूपसे पकड़ रखनेवाले हों, उन्हींको समाजमें सम्मिलित करना चाहिये। इस समाजके कितने ही मनुष्य पुनर्लग्नका समर्थन करते हैं और खानपानमें स्वेच्छाचारसे काम लेते हैं। यह समाजके नियम विरुद्ध हैं। अतः उनका पक्ष न लेना चाहिये।

इस समय इस संस्थाके करीब ४ लाख अनुयायी हैं और उनमें दिन प्रति दिन वृद्धि होती जाती हैं। अनेक अन्य मतानुयायी भी इसे आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। कितने ही इसके सिद्धान्तोंको अन्तःकरणसे मानते हैं। किन्तु जाति बन्धुओंके भयसे प्रकट रूपसे उसमें योग नहीं देते।

इस समाजमें भी पञ्जाबकी ओर मांस पार्टी और अन्न पार्टी यह दो भेद हैं, ॐ मांसाहारी आर्य गिने ही नहीं जा सकते। न मालूम वह अपने आपको आर्य कैसे कहते हैं।

गुण कर्मानुसार जाति व्यवस्थाका प्रबन्ध करनेके लिये कुछ समयसे बम्बईमें आर्यमण्डल नामक एक संस्था स्थापित हुई है, परन्तु अद्यापि उसका कोई कार्य दृष्टिगोचर हुआ।

ॐ कालेज पार्टी और गुरुकुल पार्टी।

सत्य सोधक समाज।

इस समाजके * स्थापक ज्योतिराव फुलेका जन्म ई० स० १८२९ में हुआ था। देशमें प्रचलित विविध मतपंथोंके महाजालमें फँसी हुई जनतापर धर्मके नामपर अत्याचार होता देख, उन्होंने सन् १८६८ में, पूना शहरमें इसकी स्थापना की थी। परमेश्वर निराकार है। उसकी भक्तिसे ही मुक्ति प्राप्त होती है। वह अवतार नहीं लेता। मूर्ति पूजा व्यर्थ है। वेद पुराणादिकी स्वार्थी लोगोंने स्वार्थके निमित्त रचना की है। अतएव उनको सर्वथा सत्य न मानना चाहिये, परन्तु उनका जो अंश बुद्धिको सत्य प्रतीत हो, वह मान लेना चाहिये। जातिभेद व्यर्थ है। कोई ऊँच या नीच नहीं है, अतएव प्रत्येक मनुष्यके साथ मातृभाव रख, परस्पर विवाह सम्बन्ध करना चाहिये। धर्म क्रिया भी परस्पर करा देनी चाहिये। उन्होंने धार्मिक गुलामगीरी नामक ग्रंथ लिखा है। उसके अतिरिक्त अन्यान्य धार्मिक पुस्तकें भी इस समाजने प्रकाशित की हैं। इस सम्प्रदायके अनुयायी महाराष्ट्र और बिहारमें पाये जाते हैं।

देव समाज।

कानपुर जिलेके सत्यानन्द अग्निहोत्रीने लाहोरमें देवगुरुकी उपाधि धारण कर इस समाजकी स्थापना की है। शिक्षा प्रचार और बन्धुभाव स्थापित करना इसका प्रधान उद्देश्य है।

---

* पंचमहल (गुजरात) में इस नामकी एक समाज है, परन्तु वह आर्य समाजकी शाखा है।

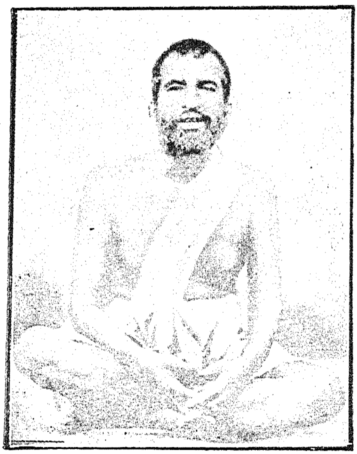
रामकृष्ण मिशन ।

कलकत्तामें स्वामी रामकृष्ण परमहंस नामक एक योगी हुए हैं। उनका जन्म ता० २०-२२-१८३३ ईसवीमें कामापुकर नामक ग्राममें हुआ था। उनके शिष्य समुदायने इस मिशनकी स्थापना की है। इन स्वामीजीका जीवन वृत्तान्त चमत्कार पूर्ण है। उनमें दश वर्षकी अवस्थासे ही धर्मानुरागके चिह्न प्रकट हुए थे। वे किसी योगी या संन्यासीको देखते ही उसके पास जा बैठते थे। वे किसी विशेष धर्मानुकूल आचरण न करते थे। किसी समय कालीका भजन करते, किसी समय अल्लाका नाम लेते, किसी समय हनुमान बन, रामराम कहते तो किसी समय स्त्रीका वेश धारण कर भैरवकी उपासना करते और सब स्त्रियोंको भगवती मान, नमस्कार करते थे। कामधामसे बिलकुल विरक्त थे। बहुधा भजन करते करते समाधिस्थ हो जाते थे।

स्वामीजीकी इस अद्भुत भक्तिको देख, अनेक लोग उन्हें अपना गुरु मानते थे। इनमें नरेन्द्रनाथ बी० ए० का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने २३ वर्षकी अवस्थामें संन्यास ग्रहण कर विवेकानन्द नाम धारण किया। परमहंसका स्वर्गवास होनेपर, उनकी धर्मध्वजाको विवेकानन्दने उठा लिया। उन्होंने कलकत्तामें वराह-नगरके पास आलम बजारमें एक मठकी स्थापना कर वहां निरंतर धर्म-चर्चा करना स्थिर किया और सारे देशमें भ्रमण कर व्याख्यान द्वारा सदुपदेश दे कीर्ति सम्पादित की। अमेरिका जाकर विविध

भारतका धार्मिक इतिहास

रामकृष्ण मिशन.



रामकृष्ण परमहंस।

पृष्ठ संख्या २५६

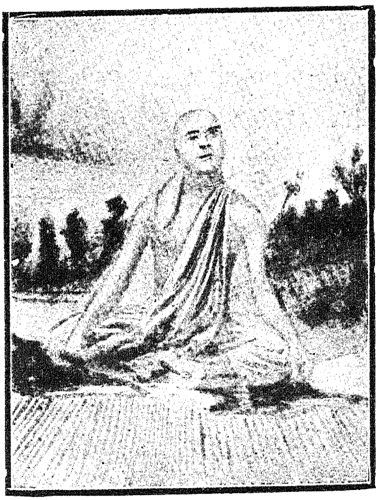
स्थानोंमें करीब एक हजार व्याख्यान दिये और वेदान्त सोसायटी-की स्थापना कर लाखों मनुष्योंको आर्य धर्मावलम्बी बनाया। इस मिशनका मुख्य धर्म सिद्धान्त यह है, कि 'ज्ञान दान देनेमें अधीर न हो। सर्व प्रथम ज्ञान सम्पादन करनेका प्रयत्न करो। ईश्वरके रूप और गुणके वितण्डावादमें न पड़ो। ईश्वरका भजन करो। उसके सम्मुख अपने हृदयका परदा खोल दो। उसका दैवी प्रकाश तुम्हें पावन करेगा। मतमतान्तर और मन्दिरादिकी विशेष परवाह न करो। उनका कोई मूल्य नहीं है। मूल्यवान वस्तु तो मनुष्यमें सतका तत्व है। मनुष्य उसको जितने अधिक परिमाणमें प्राप्त कर सके, उतना ही अच्छा है। प्रथम उस तत्वका सम्पादन करो। किसी पर आक्षेप न करो, क्योंकि प्रत्येक मत पंथमें कुछ न कुछ तो भला होता ही है। धर्मका अर्थ केवल शब्द नाम या भिन्न भिन्न मतोंका समुदाय नहीं है, परन्तु अध्यात्मिक स्थितिका संपादन करना ही धर्म है। इस बातको अपने जीवन द्वारा सिद्ध कर दो" इसके अतिरिक्त आर्य धर्म शास्त्रोंका पालन करना यह भी उनका सिद्धान्त है। इस देशमें करीब २०००० मनुष्य इस सम्प्रदायके अनुयायी हैं। काशीमें रामकृष्ण सेवाश्रम और पाठशाला इस सम्प्रदायवालोंके आधीन हैं।

स्वामी रामतीर्थका वैदिक मत.

पञ्जाब प्रदेशान्तर्गत जिला गुजरान वालेके एक छोटे गांवमें एक अति गरीब ब्राह्मणके यहां ई० स० १८७४ में स्वामी रामतीर्थका जन्म हुआ था। उनके पिताका नाम हीरानन्द था। जन्म होनेके तीसरे दिन उनकी माताका देहान्त हो गया था। उन्हें बाल्यावस्थासे ही विद्यापर इतना अनुराग था कि वे अर्द्ध रात्रि पर्यन्त पढ़ा लिखा करते थे और तेलके लिये अन्न भी बेंच डालते थे। वे २० वर्षकी अवस्थामें एम० ए० और ४ वर्षके बाद प्रोफे- हुए। सन् १८९८ के बाद एक वर्ष पर्यन्त अरण्यमें उन्होंने एकान्त जीवन व्यतीत किया। फिर तृष्णाका त्याग कर ६ वर्षकी अवस्थामें संन्यासी हुए। उन्होंने सूफी मतका अध्ययन किया था। अमेरिकाके सोल्जरोंके साथ ४० मील दौड़नेकी बाजी वह सहजमें जीत गये थे और गंगोत्री, यमुनोत्री तथा बद्रीनारायणके हिम-आच्छादित गिरि शृङ्गोंपर केवल एक कमली और साधारण वस्त्रके साथ प्रवास किया था। वह कहते थे, कि वे मैं अनुभव सिद्ध धर्मको मानता हूं। उन्होंने अमेरिका तथा जापान इत्यादि देशोंमें व्याख्यान दे, वहांके लोगोंको हिन्दू धर्मका बोध दिया था और बहुतोंको अपना अनुयायी बनाया था। टेहरी (गढ़वाल) के पास एक दिन गङ्गास्नान करते समय पैर फिसल जानेसे उनका देहान्त हो गया। उनके अनुभव सिद्ध उपदेश पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। लोग उन्हें बड़े भावसे पढ़ते हैं। उन्होंने किसी मतकी स्थपना

भारतका धार्मिक इतिहास

रामतीर्थका वैदिक मत.



स्वामी रामतीर्थ ।

पृष्ठ संख्या ३५८

करनेका प्रयत्न नहीं किया, तथापि बहुत लोग उन्हें अपना गुरु मानते हैं। हरिद्वारसे डेढ़ मील पर उन्होंने रामाश्रम नामक एक वाचनालय खोल रक्खा है। वहां तीर्थयात्रादिके निमित्त जाते आते पहुंच जानेवाले साधुओंको भोजन भी दिया जाता है।

श्रेय साधक अधिकारी वर्ग।

बड़ौदामें गुजरातके नागर ब्राह्मण श्रीमान नरसिंहाचार्यने वि० सं० १९३८ में इस धार्मिक संस्थाकी स्थापना की थी। इसमें विद्वान कोटिके मनुष्य भी सम्मिलित हैं। इस पंथवाले मूर्त्ति-पूजा और जाति भेदको मानते हैं। ईश्वरका अवतार स्वीकार करते हैं। प्राणायाम आदिक योग शास्त्रकी बातोंपर विशेष भाव रखते हैं। उसके द्वारा वे सिद्धिका प्राप्त होना मानते हैं। यह लोग पुरातन पौराणिक कथाओंको अध्यात्मिक रूप देकर उन्हें श्रेयस्कर बतलानेकी चेष्टा करते हैं। जनेऊ पहनते हैं। नई रोशनीवाले शिक्षितोंके विचार उन्हें पसन्द नहीं आते। तत्व ज्ञानको प्रधान मानते हैं। नरसिंहाचार्यको भगवान कहते हैं और इस समय उनके पुत्र उपेन्द्रको भी वैसाही मानते हैं। नरसिंह जयन्ती तथा गुरु पौर्णिमाके दिन बड़ा भारी समारम्भ करते हैं। उस दिन इस मतके सभी मनुष्य एकत्र हो धर्म क्रिया करते हैं। इस संस्थाकी ओरसे गुजराती भाषामें, प्रातःकाल आदिक ५-६

मासिक पत्र प्रकाशित होते हैं उनके द्वारा मुमुक्षुओंको विचारने योग्य धर्म ज्ञानका उपदेश दिया जाता है। करीब २००० मनुष्य इस संस्थामें योग देते हैं। यह लोग भक्तिसे मुक्ति मानते हैं।

प्रियतम धर्म सभा।

इस सभाके स्थापक लारखाना निवासी सारस्वत ब्राह्मण प्रियतमका जन्म वि० सं० १९२० में हुआ था। सम्बत १९४३ के क़रीब उन्होंने उपरोक्त नामकी एक धर्म सभा सिंध प्रदेशान्तर्गत शिकारपुरमें स्थापित की थी। इसमें योग देने वालोंके लिये १४ नियम निश्चित किये गये हैं। राम नामका स्मरण करना (२) विद्या पाठ पढ़ना व पढ़ाना (३) देश और समाजका सुधार करना (४) विधिवत् श्राद्ध व तर्पण करना (५) मांसादि अशुद्ध और मदिरादि मादक पदार्थोंका त्याग करना (६) सत्य बोलना (७) श्रद्धा पूर्वक मूर्ति पूजा करना (८) बाल विवाह न करना (९) वेद पुराणादि हिन्दू शास्त्रोंको मानना (१०) चोरी आदि दुष्कर्म न करना (११) विधवाओंसे ब्रह्मचर्य पालन कराना (१२) अपने ही समान सबका सुख दुःख समझना (१३) अच्छी बातोंका प्रचार करना (१४) कोई भी कार्य युक्ति और सृष्टि विरुद्ध न करना। यह उनके मुख्य नियम हैं। यही धर्म सिद्धान्त हैं। हिन्दूमात्र इस पन्थमें सम्मिलित हो सकते हैं। इस धर्मसभाके

थियोसोफिकल सोसाइटी.



मेडेम ब्लेवेट्सकी।

पृष्ठ संख्या ३६१

सदस्य चन्देके रूपमें सभाको कुछ आर्थिक सहायता देते हैं। निर्बाचन प्रणाली द्वारा सदस्यगण १८ सदस्योंको कार्यकर्ता निर्वाचित करते हैं। उन्हें धर्म सभाके प्रत्येक कार्यकी व्यवस्था करनी पड़ती है। यह निर्वाचन साल भरमें एक ही बार होता है। इस सभाकी ओरसे एक स्कूल, एक कन्या-पाठशाला, एक गौशाला, एक लाइब्रेरी इत्यादिका सञ्चालन होता है। शिकारपुर व उसके समीपवर्ती जिलाओंके क़रीब २००० मनुष्य इसमें सम्मिलित हैं।

थियोसोफिकल सोसायटी।

मेडम ब्लेवेट्स्की नामक एक रशियन स्त्रीको एक महात्माके समागमसे योग सिद्धिपर आस्था उत्पन्न हुई थी। वह अमेरिका गई थी। वहां कर्नल आलकोट नामक गृहस्थसे उसका परिचय हुआ। उसने कर्नलको समझाया, कि योग सिद्धिके सम्मुख अन्य सभी बातें निर्मूल्य हैं। कर्नल साहबको यह बात जँच गई और उन दोनोंने आत्मविद्याकी खोज करनेके लिये सन १८०५ में वहीं न्यूयार्क नगरमें थियोसोफिकल सोसायटीकी स्थापना की! विशेष खोज करनेपर उन्हें ज्ञात हुआ, कि योग विषयक जो ग्रंथ आर्य्यधर्ममें हैं वह और कहीं नहीं है। अतः सन १८७८ में उन्होंने आर्य्य समाजके संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्दसे पत्र व्यवहार किया। स्वामीजीके उपदेश पूर्ण उत्तरसे वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और ता० २२-५-१८७८ के दिन सोसायटीके अधिवेशनमें

स्वामीजीको आचार्य माननेका प्रस्ताव भी पास हुआ। फिर वे दोनों अध्यात्म ज्ञान प्राप्त करनेके लिये सर्वस्व वहीं छोड़ भारत, आये। यहां स्वामीजीके साथ रहकर वे भी धर्म प्रचार करने लगे। परन्तु अवतारवाद और महात्माओंके मिलन आदि विषयों में स्वामीजीको सम्मत होते न देख, वे उनसे पृथक हो गये और मद्रासके अदियार ग्राममें सोसायटीका केन्द्र नियतकर वह स्वतन्त्र रूपसे धर्म प्रचार करने लगे।

इस समय इस सभाका सभापतित्व * एनीबेसेंट नामी विदुषी स्त्रीके अधीन है। बम्बईमें ता० ५-४-१८ के दिन हिन्दू पारसी आदि क़रीब ५० प्रतिष्ठित सज्जनोंने इनसे भेंट की थी। उस समय जो प्रश्नोत्तर हुए थे, उनसे इस सोसायटीके धर्म तत्वों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अतः हम यहां मिसेज बेसेण्टके कथनका सारांशही उद्धृत करना उचित समझते हैं।

अन्यान्य धर्मों की भांति थियोसोफी का मत भी एक साधारण धर्म है। आचार विचार सदा शुद्ध रखने चाहिये। प्राचीन भारतमें ब्रह्म विद्या तथा गुह्य विद्याओंका अस्तित्व था, उन्हें पुनर्जीवित करनेके लिये सोसायटी उद्योग करती है। सांसारिक बातोंसे अलिप्त रहनेपर ही अध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। जबतक मुक्त स्थिति नहीं प्राप्त होती तब तक सभी विकारोंको अनुभव करना, जीवात्माका कर्तव्य है। इसीलिये उसे पृथक

* सात सात वर्षोंके लिये सभापतिका निर्वाचन होता है। एनीबेसेंट ही तीन वारसे बराबर निर्वाचित होती चली आई हैं।

पृथक योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। समस्त संसार पुरुष और प्रकृतिके योगसे उत्पन्न हुआ है। यह दोनों अनादि हैं। अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है। परन्तु, संसारोत्पत्तिके लिये उसे पुरुष तथा प्रकृतिका द्वैत रूप प्राप्त होता है। वेदान्तमें श्राद्ध विधि नहीं है, परन्तु मृत मनुष्योंका जीवात्मा पुनर्जन्म होने तक स्वकर्म बन्धनोंसे कर्मलोकमें रुका रहता है। उसके उद्धार कार्यमें श्राद्ध से बड़ी सहायता पहुंचती है! मन्त्रोंकी ध्वनिमें गति, रङ्ग और रूप है। अतः उनमें अनेक प्रकारका सामर्थ भी है। मन्त्रोंका प्रयोग यथाविधि एकाग्रचित्तसे ध्यान पूर्वक नहीं किया जाता, अतः मन्त्र सिद्ध नहीं होते। दूसरोंको, उनका कल्याण हो इसलिये, उनका दोष दिखानेसे जो दुःख उत्पन्न होता है उसमें पाप नहीं है परन्तु दोष न दिखाना पाप है। धर्मशास्त्र (खास कर पुराणों) में जहां तहां रूपक या कथाके रूपमें विचार प्रदर्शित किये गये हैं। हमको चाहिये, कि उन प्रसङ्गोंपर शब्दार्थको छोड़ रहस्य जाननेकी चेष्टा करें। मनुष्यके विचारानुसार उसके कर्म होते हैं। और कर्मके अनुसार उसका भाग्य नियत होता है। अतएव मनुष्य ही अपने भाग्यका विधाता है। भाग्यके भरोसे आलसी होकर बैठे रहना मूर्खता है। ईश्वर जगतके कल्याणार्थ अवतार लेता है और महात्मागण भी गुप्त प्रकारसे विद्यमान हैं, इत्यादि। उपरोक्त सिद्धान्त देखनेसे दो एक विवादग्रस्त विषयोंको छोड़ इस संस्थाके उद्देश्य और कार्य अत्युत्तम प्रतीत होते हैं परन्तु इस सोसायटीके अन्तर्गत एक गुप्त मण्डल

है। उस मण्डलवालोंकी बातोंसे जनतामें शङ्का और भ्रम फैल गया है। उनकी धारणा है कि इस सोसायटीके अगुवाओंको कुटहुमी लालसिंह नामक महात्मा बार बार मिलकर धर्म उपदेश दे जाते हैं। बुद्ध, कृष्ण, इसूक्राइस्ट, जरथोस्त, मैत्रेय इत्यादि नाम और शरीर धारण करनेवाले महात्मा पृथक पृथक रूपमें मूल एक ही आत्मा थे। उसी आत्माने इस समय मद्रासके एक थियोसोफिस्ट पेन्शनर नारायण ऐयरके यहां पुत्र रूपमें जन्म लिया है, जिसका नाम इस समय जे कृष्णामूर्त्ति है। वह संसार भरको उपदेश देगा। यह उसके पूर्व महा जन्मोंका कर्त्तव्य है"। इत्यादि उपरोक्त कृष्णामूर्त्तिको अक्सफोर्डके विश्व विद्यालयमें पढ़ाकर ग्रेज्युएट बनानेके लिये ई० १९११ में उसके पिताको समझाकर एनीबेसेण्ट उसे इङ्गलैण्ड ले गई थीं, परन्तु लेड बीटरको अतिरिक्त वे अन्य किसीकी संरक्षतामें उसे रखना न चाहती थीं, अतः यहां लौटाल लाईं, और योग्य व्यवस्था कर पुनः लेड बीटरके साथ इङ्गलैण्ड भेजा।

कुछ ही दिनोंमें गुप्त मण्डलकी धारणाओंके विषयमें सोसायटीके अनुयायियोंमें मतभेद हो गया। बड़ा वादाविवाद और चकचक होने लगी। कृष्णामूर्तिके पिताने भी अपने पुत्रको स्वाधीन बनानेके लिये एनीबेसेण्टपर मद्रासकी हाईकोर्टमें दावा कर दिया। ता० १५-४-१९१३ के दिन लड़का उसके पिताको सौंप देना चाहिये और लेडबीटर बड़ा ही अनीतिमान पुरुष है, इस आशयका निर्णय हुआ। तबसे इस संस्थाका मान घट गया और लोगोंका दिल

इसपरसे हट गया। उपरोक्त कृष्णामूर्तिने छात्र अवस्थामें ही महात्माओंकी प्रेरणासे "एट दी फीट आफ दी मास्टर" नामक एक अंग्रेजी पुस्तक लिख डाली थी। एनीबेसेण्ट अपने आपको बतलाती हैं, कि मैं पूर्व जन्ममें एक भारतीय महिला थी !!

गुप्त मण्डलकी धारणाओंपर गड़बड़ी मचनेके बाद, सोसायटीके सञ्चालकों द्वारा स्पष्टी करण किया गया, कि "गुप्त मंडलकी बातें सोसायटीके सभी अनुयायी माननेके लिये बाध्य नहीं हैं।" इससे पुनः शान्ति स्थापित हो गई।

इस सोसायटीकी ओरसे अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। वे प्रायः ज्ञानका भण्डार और विचारकोंके लिये धर्म रहस्यका ज्ञान बतलानेवाले हैं। इस सोसायटीमें योग देनेवाले इच्छानुसार धर्म या मतपन्थ पाल सकते हैं। उस सोसायटीकी ओरसे किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं किया जाता। अतः केवल भारतमें ही २५००० के क़रीब मनुष्य इसके अनुयायी हैं। भारतमें १५० से अधिक तथा युरोप अमेरिका आदि देशोंमें भी* इसकी अनेक शाखायें विद्यमान हैं।

—:+:—

* सत्यकी खोज करते हुए जो योग्य प्रतीत हो उसे ग्रहण करना, यही इस सोसायटीके अनुयायियोंका मत है। अतएव वे प्राचीन तथा अर्वाचीन धर्म और सायन्सका सूक्ष्म अभ्यास करते हैं। यद्यपि इस सोसायटीवाले आर्य धर्मकी ही महत्ता स्वीकार करते हैं, तथापि अन्य धर्मोंके तत्वोंको निरानिर असत्य नहीं मानते। वे उन्हें भी युक्ति पूर्वक आर्य धर्मके तत्वोंसे अभिन्न बतलाकर सर्व धर्मोंकी एकता सिद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं।

आनन्दसभा ।

इस नामकी एक सभा धामपुर जिला बिजनोरमें विद्यमान है। कानपुर, पुखरायां और काल्पी इत्यादि स्थानोंमें उसकी शाखायें हैं। उसके संस्थापक जामनगर निवासी एक ब्राह्मण हैं। इन्होंने साधु हो अपना नाम मुक्ताश्रमी आनन्ददेव रक्खा है। इस सभाके सिद्धान्त यह हैं :—

सभाके प्रत्येक सदस्यको नित्य एकान्तमें बैठ, सर्वात्मा अंतर्यामी आनन्ददेवको अपनेसे अभिन्न देखना चाहिये। देव मन्दिरमें सभी तीर्थ हैं। आनन्ददेव रचित रामायण, आनन्द विलास इत्यादि पुस्तकोंका पठन पाठन करना। मनको शुद्ध रखना। रामचन्द्रकी भक्ति करना, गायोंकी रक्षा करना और मादक द्रव्योंका त्याग करना। नाच खेलसे दूर रहना। पुत्रीका १४ तथा पुत्रका २० वर्षकी अवस्थामें विवाह करना। प्रतिमास प्रति सप्ताह एक सभा करना तथा उसमें कुरीतियोंके निवारणार्थ एवम् कौशलकला की वृद्धि और प्रेम प्रचारके लिये विचार करना। सभामें प्रत्येक सदस्यको एक मुट्ठी अन्न ले जाना चाहिये और उसे एकत्र कर साधु सन्तोंको खिलाना चाहिये। प्रत्येक सदस्यको अपनी आयसे प्रति रुपया आध आना सभामें देना चाहिये। शुभाशुभ प्रसङ्गोंपर जो निरर्थक व्यय होता है, वह नहीं करना चाहिये, परन्तु वह धन सभाको दे देना चाहिये। सभा उस एकत्रित धनसे आनन्ददेव रचित पुस्तकें खरीद, लोगोंमें वितरण करेगी।

फ्रीमैसन।

इस नामका एक सम्प्रदाय विद्यमान है। कहते हैं, कि इसमें समस्त संसारके अच्छे अच्छे श्रीमान, अमीर उमराव, राजे महाराजे, और विचारक विद्वान सम्मिलित हैं। इस सम्प्रदायकी सभी वृत्तियां गुप्त रक्खी जाती हैं। सुनते हैं, कि इसमें सम्मिलित होनेकी इच्छा रखनेवालोंका जब इस सम्प्रदायके दो सदस्य "यह मनुष्य सम्प्रदायमें सम्मिलित करने योग्य है और यह सम्मिलित किया जायगा तो यथानियम आचरण करेगा तथा हमें पूर्ण विश्वास है कि सम्प्रदायकी कोई भी बात कहीं प्रकाशित न करेगा" इस आशयका प्रमाण पत्र देते हैं तब वह सम्मिलित:किया जाता है। सम्प्रदायका रहस्योद्घाटन न करनेके लिये उसे शपथ करनी पड़ती है। यह सम्प्रदाय कब और कैसे संयोगोंमें स्थापित हुआ, इसका स्थापक कौन है, इत्यादि बातें मालूम नहीं हो सकीं। फिर भी ईसाकी सोलहवीं शताब्दिमें यह स्थापित हुआ हो, ऐसा प्रतीत होता है। केवल इतना ही ज्ञात हो सका है, कि इस सम्प्रदायवाले परस्पर भ्रातृभाव रखते हैं और सुख दुःखमें एक दूसरेको पूर्ण रीतिसे सहायता देते हैं। यही उनका मुख्य सिद्धान्त समझना चाहिये। यह भी मालूम हुआ है, कि इनमें कितनी ही डिग्रियां (धर्मानुष्ठान) नियत हैं। मार्क मास्टर्स नामक तीसरी डिग्रीमें अग्निकी प्रार्थना भी करते हैं।

उपसंहार.

—:*:—

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः॥

यजुर्वेद, १९-७७

अर्थात्—प्रजापति (दृष्ट्वा) सोच कर सत्य और असत्य यह दो रूप भिन्न करता आया है। अनृतमें अश्रद्धाको और सत्यमें श्रद्धाको धारण करता है। कहनेका तात्पर्य यह है, कि प्रत्येक मनुष्यको सदा सर्वदा सत्यपर ही श्रद्धा रखनी चाहिये, असत्यपर कभी नहीं।

यह इतिहास यहीं पूर्ण होता है। अब उपसंहारमें क्या लिखें? वास्तवमें यह एक ऐसा गहन, विवादग्रस्त और कठिन विषय है, कि इसका किसीने अन्त नहीं पाया। परस्पर लड़ते लड़ते शताब्दियाँ बीत गयीं, प्रमाण और युक्तियाँ समाप्त हो गयीं, किन्तु क्या कोई सर्वमान्य निर्णय हो सका? ऐसी दशामें इस विषयपर किसी प्रकारकी सम्मति प्रदर्शित करना व्यर्थ है। फिर भी, इतना तो हम अवश्य कहेंगे, कि देश, काल, लोक रुचि और समय संयोगोंके कारण जो कुछ शुद्धि वृद्धि एवम् रूपान्तर हुआ है, उसे यदि हमें छोड़ दें, तो समस्त धर्मोंके मूलतत्व प्रायः समान ही प्रतीत होंगे।

इस इतिहासका मनन करनेपर हमारे पाठकोंको विश्वास होगा, कि "वेदोऽखिलो धर्म मूलम्" यह सूत्र बिलकुल ठीक है।*

अधिकांश पाठकोंके हृदयमें यह प्रश्न भी उत्पन्न होगा, कि कौन धर्म ग्राह्य और कौन धर्म अग्राह्य है। इस प्रश्नको हल करनेके लिये कवि शिरोमणि कालीदासकी निम्नाङ्कित उक्तिका मनन करना चाहिये :—

* डा० वेलेंटाइन लिखते हैं कि संस्कृत भाषा ही सर्व भाषाओंकी माता है। स्केफल साहब लिखते हैं, कि संस्कृतके समान पूर्ण भाषा संसारमें और है ही नहीं। मि० डबल्यू० सी० टेलरका मत है, कि युरोपकी समस्त भाषायें संस्कृतसे ही निकली है। इन बातोंसे प्रमाणित होता है, कि संस्कृत ही सर्वापेक्षा प्राचीन भाषा है। अच्छे अच्छे विद्वानोंने अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया है, कि सर्वोत्तम संस्कृत भाषामें वेद ही एक मात्र धर्मग्रन्थ है। वेद धर्म परसे खाल्डियन धर्म और खाल्ड़ियन परसे असीरियन धर्मकी स्थापना हुई थी। जार्ज स्मिथ और डाक्टर साइन्सके कथनानुसार असीरियन धर्मके आधार पर यहूदी धर्मके केबाला और केबालाके आधार पर बाइबिलकी रचना हुई है। ईसामसीहने भारतसे ही धर्मशिक्षा प्राप्त कर क्रिश्चियन धर्मकी स्थापना की थी। क्रिश्चियन धर्मकी शिक्षा प्राप्त कर हजरत महम्मद पैगम्बरने इस्लाम धर्मकी नींव डाली थी। उनका "लाइलाहइल्लल्लाह" यह सूत्र आर्य धर्मके एको ब्रह्म का अनुवाद मात्र है। जरथोस्ती धर्मकी स्थापना भी वेद मन्त्रोंके आधार पर हुई थी। कितने ही प्रधान धर्म तो वेद धर्मके रूपान्तर हैं ही। अन्यान्य सभी मतपन्थ और शाखासम्प्रदाय वेद धर्मके शाखा स्वरूप हैं। फ्रीमैसन-वाले भी अग्निकी स्तुति करते हैं। इन बातोंसे प्रमाणित होता है, कि वेद ही सब धर्मोंके मूल हैं।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं।
न चापिनूनं नवमित्य वद्यम्॥
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते।
मूढ़ः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः॥

अर्थात्—पुराना सभी अच्छा नहीं होता और नवीन सभी बुरा नहीं होता। सत्पुरुष परीक्षा करनेके बाद ग्रहण करते हैं और मूर्ख दूसरोंका कहा हुआ मान लेते हैं।

इस उक्तिको ध्यानमें रख, सत्यासत्यका निर्णय कर, सत्यका स्वीकार और असत्यका परित्याग करना चाहिये। जो ऐसा करे उसको धन्य है, क्योंकि ग्राहक शक्तिकी परीक्षा इसीमें है।

सर्वमान्य तथा सर्व पूज्य सत्यको केवल एक ही होना चाहिये और है। उसपर देश या कालका प्रभाव नहीं पड़ सकता। तीनों कालोंमें सर्वत्र वह एक ही रूपमें रहता है। उसके लिये कुछ भी सम विषम नहीं है, सत्य स्वयं ऐसी वस्तु है, जो सूर्य प्रकाशवत् आप ही आप प्रकाशित हो जाती है। यदि वास्तविक सत्य ग्रहण किया जाय, तो जितना विरोध भाव है, वह नाश हो जाय। सत्यको जहां हो वहांसे और जिस रूपमें हो उसी रूपमें ग्रहण करना बुद्धिमानोंका काम है।*

---

* कुछ ही दिन हुए, युरोपियनोंने हमारे तीन तत्व स्वीकार किये हैं। (१) शाकाहार (२) उपवास (३) शवका अग्निसंस्कार। सारासारका विचार न कर हम लोग विदेशियोंके वेश और दुर्गुणोंका अनुकरण करते हैं, उनकी

वह परम कृपालु परमात्मा हमारे देश बन्धुओंको सत्यासत्यकी निर्णयको बुद्धि प्रदान करे—इस प्रार्थनाके साथ हम उपसंहार समाप्त करते हैं और चाहते हैं, कि हमारे सहृदय पाठक हमारी इस अनधिकार चेष्टा एवम् दोष त्रुटियोंके लिये हमें क्षमा प्रदान करें—इत्योम् ।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्मेश्वरो यस्मिन्ततसर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

अथर्ववेद, ११-६-१

यह सम्पूर्ण जगत जिसके वश है, जिसमें सबकी स्थिति है, जो सबका एक मात्र स्वामी है । उस जगत्प्राण रूप परमात्माको नमस्कार है ।

समाप्त

बुद्धि और सद्गुणोंका नहीं । हमें इस बात पर विचार करना चाहिये, कि अन्ध अनुकरण उन्नतिका नहीं बल्कि अवनतिका द्योतक है ।